THE

HISTORY OF THE BIKANER STATE

PART I.

BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA RĀI BAHĀDUR
SĀHITYA-VĀCHASPATI
Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt., (Hony.)

PRINTED AT THE VEDIC YANTRALAYA,
AJMER.

First Edition. } 1939 A. D. { *Price Rs. 6.*

व्यास एण्ड सन्स,
अजमेर.

बीकानेर राज्य का इतिहास

पहला भाग

ग्रन्थकर्त्ता
महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डॉक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्० (ऑनरेरी)

बाबू चांदमल चंडक के प्रबंध से
वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में छपा

प्रथम संस्करण } वि० सं० १९९६ { मूल्य रु० ४
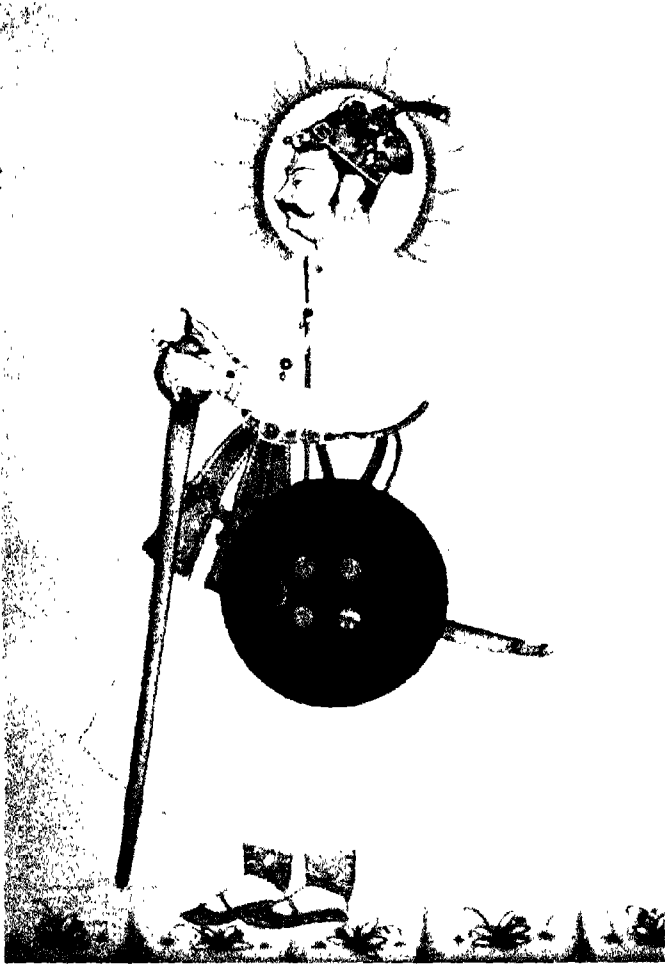
राव बीका

परम पितृभक्त

अदम्य साहसी

बीकानेर राज्य के संस्थापक

वीरवर राव बीका

की

पवित्र स्मृति को

सादर समर्पित

भूमिका

इतिहास के द्वारा हमें किसी देश अथवा जाति की अतीत कालीन संस्कृति और उसके उत्थान एवं पतन के क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। इतिहास सभ्यता और उन्नति का द्योतक तथा पूर्वजों की कीर्ति का अमर स्तंभ है। वह अतीत का आभास देकर वर्तमान का निर्माण और भविष्य का पथ-प्रदर्शन करता है। जिस देश अथवा जाति में जितनी अधिक जागृति है, उसका इतिहास भी उतना ही अधिक उन्नत एवं पूर्ण होना चाहिए। थोड़े शब्दों में कह सकते हैं कि इतिहास जीवन और जागृति का प्रमाण है।

विशाल महाद्वीप एशिया के दक्षिणी भाग में स्थित भारतवर्ष सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से संसार के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस देश ने प्राचीन काल में कितनी ही जातियों का उदय और अन्त देखा है। इसके वक्षःस्थल पर कितने ही राष्ट्र बने और बिगड़ चुके हैं। राजपूताना इसी देश का एक प्रसिद्ध प्रदेश है, जिसका इतिहास की दृष्टि से अपना अलग स्थान है। इसे हम भारत की वीरभूमि कहें तो अयुक्त न होगा। कर्नेल टॉड के शब्दों में "राजस्थान में कोई छोटा-सा राज्य भी ऐसा नहीं है, जिसमें 'थर्मापिली' जैसी रणभूमि न हो और न कोई ऐसा नगर है, जहाँ 'लियोनिडास' जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।" यहाँ की भूमि का अणु-अणु वीरों के रक्त से सिंचित है और अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता है। यहां का इतिहास जिस प्रशंसनीय वीरता, अनुकरणीय आत्मोत्सर्ग, पवित्र त्याग और आदर्श स्वातंत्र्य-प्रेम की शिक्षा देता है, वैसा अन्य किसी स्थान का नहीं। यह वस्तुतः खेद का विषय है कि परिस्थिति वश अथवा राजपूताने के निवासियों में इतिहास-प्रेम की कमी होने के कारण यहां का इतिहास पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं रह सका, जिससे बहुधा प्राचीन शृंखलाबद्ध इतिहास बहुत कम मिलता है।

एक समय था, जब भारतवासी अपने देश के इतिहास के प्रति उदासीन रहते थे। सत्य वृत्त के अभाव में सुनी-सुनाई अतिरंजित कहानियां ही इतिहास का स्थान लिये हुए थीं, पर गत शताब्दी में इस दिशा में विशेष उन्नति हुई है। 'राजस्थान' का विस्मृत गौरव प्रकाश में लाने का श्रेय कर्नल टॉड को ही है। उसके बहुमूल्य ग्रन्थ 'राजस्थान' के द्वारा क्रमशः यूरोप एवं भारत के अनेक विद्वानों का ध्यान राजपूताने की ओर आकृष्ट हुआ। उनके अनवरत उद्योग, अपूर्व अध्यवसाय तथा विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धानों के फलस्वरूप इस वीर-भूमि का प्राचीन गौरव-पूर्ण इतिहास, जो पहले अन्धाकारावृत था अब बहुत कुछ प्रकाश में आ गया और आता जाता है। शनैः-शनैः लोगों की रुचि भी इतिहास की ओर बढ़ती जा रही है। फलतः आज हमारे साहित्य की श्री-वृद्धि करने के लिए छोटे-बड़े कई इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ हमें अपने पूर्वजों के वीरतापूर्ण कार्यों, रहन-सहन, आचार-विचार और रीति-रिवाज आदि का परिचय मिलता है।

राजपूताने में इस समय सब मिलाकर छोटी-बड़ी इक्कीस रियासतें हैं। इनमें से सात प्रमुख रियासतों का इतिहास कर्नल टॉड के ग्रन्थ में आया है। मेवाड़ के सीसोदियों के पश्चात् राजपूताने में रणबंका राठोड़ों का गौरवपूर्ण स्थान है। अब भी उनका राज्य राजपूताने के एक बड़े भाग में फैला हुआ है। वर्तमान राठोड़ों का मूल पुरुष राव सीहा कन्नौज की तरफ़ से वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इधर आया और उसके वंशजों ने पीछे से धीरे-धीरे इधर अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंशधर राव जोधा ने राठोड़ राज्य को दृढ़ किया और जोधपुर बसाया, जिससे उस राज्य का नाम जोधपुर हुआ। बीकानेर राज्य का संस्थापक राव जोधा का पुत्र बीका था, जो आदर्श पितृभक्त होने के साथ ही अत्यन्त वीर, नीतिज्ञ और कुशल शासक था। उसने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर जोधपुर राज्य से अपना स्वत्व त्याग दिया और उत्तर की तरफ़ जाकर अपने लिए जांगल देश विजय किया। अपने बाहुबल से जिस विशाल

राज्य की स्थापना उसने की, उसका गौरव अब तक अक्षुण्ण बना हुआ है और उसके वंशधर अब तक उसके स्वामी हैं।

यह राज्य राजपूताने के उस भाग में बसा हुआ है, जहां रेगिस्तान अधिक है और पानी की बहुधा कमी रहती है। यही कारण है कि प्राचीन-काल में विदेशियों का ध्यान इस ओर कम ही गया और उन्होंने इसे विजय करने में विशेष उत्साह न दिखलाया। मरहटों के प्रभुत्व का काल राजपूताने के लिए बड़े संकट का समय था। मरहटों के आतंक से राजपूताना के कितने ही राज्य भयभीत रहते थे और उन्हें उनके आक्रमणों से बचने के लिए धन आदि की उनकी मांगें सदा पूरी करनी पड़ती थीं, परन्तु अपनी अनुकूल प्राकृतिक बनावट के कारण बीकानेर राज्य मरहटों के आक्रमण से सदा बचा रहा और यहां के शासकों को कभी उन्हें चौथ (खिराज) आदि कर देना न पड़ा। उन्होंने मुसलमान बादशाहों को कभी खिराज न दिया और इस समय भी अंग्रेज़ सरकार उनसे किसी प्रकार का खिराज नहीं लेती, जब कि भारत के अधिकांश राज्यों को प्रतिवर्ष निश्चित रक़म देनी पड़ती है।

मुग़ल शासकों ने इस राज्य को विजय करने की अपेक्षा यहां के शासकों से मेल रखना ही अच्छा समझा। उनके साथ का बीकानेर के राजाओं का मैत्री-सम्बन्ध बड़े ऊंचे दर्जे का था, जो उन(मुग़लों)के पतन तक वैसा ही बना रहा। अंग्रेज़ों का अधिकार भारतवर्ष में स्थापित होने पर बीकानेर के शासकों ने इस प्रबल शक्ति से मेल करना उचित समझ उनसे सन्धि करली, जिसका पालन अब तक होता है।

यह राज्य सदा से उन्नतिशील रहा है। वैसे तो पिछली कई पीढ़ियों से ही यहां उन्नति के लक्षण दृष्टिगोचर होते रहे हैं, पर वर्तमान बीकानेर नरेश के राज्यारम्भ से ही इस राज्य में जो परिवर्तन एवं उन्नति हुई है वह विशेष उल्लेखनीय है। इनके उद्योग से नहरों का प्रबन्ध होकर बीकानेर राज्य का बहुतसा उत्तर-पश्चिमी भाग सरसब्ज़ हो गया है। जगत्प्रसिद्ध 'गंगा नहर' के निर्माण को हम बीकानेर राज्य के वर्तमान

इतिहास की एक युगान्तरकारिणी घटना और महाराजा साहब का भगीरथ प्रयत्न कह सकते हैं। इसके द्वारा राज्य को आर्थिक लाभ होने के साथ ही प्रजा की स्थिति में भी बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। पहले बीकानेर राज्य में गमनागमन के मार्ग सुगम न थे। सफ़र ऊंटों-द्वारा होता था, जिसमें खतरा विशेष था और समय भी अधिक लगता था। अब राज्य के प्रायः प्रत्येक प्रधान भाग में रेल्वे लाइन बन गई है और मोटरें तो हर जगह आती जाती हैं। फलतः आवागमन में बड़ी सुविधा हो गई है, जिससे राज्य की बहुत कुछ व्यापारिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति हुई है।

इस उन्नतिशील राज्य का इतिहास विलक्षण क्रांति और वीरों के त्याग एवं बलिदान की गाथाओं से पूर्ण है, जिनके बल पर भारतवासी आज भी अपना मस्तक उन्नत कर सकते हैं। अंग्रेज़ों के भारत में आने के पूर्व यहां का कोई क्रमबद्ध इतिहास न था। आज से लगभग सौ से अधिक वर्ष पूर्व कर्नल जेम्स टॉड ने 'राजस्थान' नामक बृहद् ग्रन्थ लिखा, जिसमें इस राज्य का संक्षिप्त इतिहास दिया है; पर उसमें कितनी ही घटनाएं सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखी होने से सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। जोनाथन स्कॉट्, बोइलो, विलियम फ्रैंकलिन, एल्फ़िन्स्टन, हर्बर्ट कॉम्प्टन, जॉर्ज टॉमस आदि विदेशी विद्वानों ने यथाप्रसंग अपने ग्रन्थों में बीकानेर राज्य का कुछ परिचय दिया है, पर उससे किसी घटना विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है। हाँ, पाउलेट और अर्स्किन के गैज़ेटियरों से यहां के इतिहास का अच्छा परिचय मिलता है।

बीकानेर के नरेशों में अधिकांश स्वयं विद्वान् और विद्याप्रेमी हुए हैं। उनके रचे हुए अनेक ग्रन्थ अब भी उपलब्ध हैं और उनके आश्रय में बने हुए संस्कृत और भाषा के ग्रन्थों का मैंने इतना बृहद् संग्रह बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में देखा कि मैं मुग्ध हो गया। इस संग्रह के कई ग्रन्थों में संवत् सहित बीकानेर के राजाओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक वृत्त दिये हैं, जो इतिहास के लिए बहुमूल्य हैं। इनमें बीठू सूजा-रचित 'राव जैतसी रउ छन्द' (भाषा) तथा 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं

काव्यम्' (संस्कृत) प्राचीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पहले में राव बीका से लगाकर राव जैतसी और दूसरे में राव बीका से महाराजा रायसिंह तक की घटनाओं का वर्णन है।

इस राज्य की सब से पहली क्रमबद्ध ख्यात महाराजा रत्नसिंह के आदेशानुसार उसके समय में सिंढायच दयालदास ने लिखी थी जिसमें राव बीका से लेकर महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का सविस्तर इतिहास दिया गया है। दयालदास बड़ा योग्य और विद्वान् व्यक्ति था। उसे इतिहास से बहुत प्रेम था। उसने बड़े परिश्रम से पुरानी वंशावलियों, पट्टे, बहियों, शाही फ़रमानों और राजकीय पत्र-व्यवहारों आदि के आधार पर अपनी ख्यात की रचना की, जिससे यह बीकानेर के इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इसमें कई फ़ारसी फ़रमानों की नागरी अक्षरों में प्रतिलिपि तथा अंग्रेज़ी मुरासिलों के अनुवाद भी दिये हैं। दयालदास का लिखा हुआ दूसरा तद्विषयक ग्रन्थ 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' है। यह निर्विवाद है कि इन दोनों ग्रन्थों को लिखते समय दयालदास ने बहुत छान-बीन की, पर बीकानेर के राजाओं के स्मारक एवं अन्य संस्कृत लेखों का उपयोग उसने बिलकुल न किया, जिससे कहीं-कहीं संवतों में ग़लती रह गई हैं। 'देश दर्पण', 'जोधपुर राज्य की बृहद् ख्यात' और कविराजा बांकीदास के 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थों में भी बीकानेर राज्य का बहुत कुछ इतिहास मिलता है। इनमें कहीं-कहीं विभिन्नता पाई जाती है, जो स्वाभाविक ही है, क्योंकि ख्यातों आदि में उनके लेखकों के आश्रयदाताओं का ही अधिक प्रशंसात्मक वर्णन रहता है। बीदावतों की ख्यात में भी बीकानेर राज्य का इतिहास है, पर इसमें बीदावतों का ही वर्णन अधिक विस्तार से लिखा गया है और कहीं-कहीं कई बातों का अनुचित श्रेय भी उन्हीं को दिया है।

बाहर के लेखकों में मुंहणोत नैणसी की ख्यात दयालदास की ख्यात आदि से अधिक प्राचीन है और वह इतिहास-क्षेत्र में अधिकांश प्रामाणिक मानी जाती है, पर उसमें बीकानेर के पहले नरेशों का कुछ विस्तृत वर्णन

और शेष महाराजा गजसिंह तक के केवल नाम, राज्यारोहण और मृत्यु के संवत् तथा उनकी राणियों और पुत्रों के नाम ही मिलते हैं, जिनमें से बहुतसा अंश पीछे से बढ़ाया गया है। महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास-कृत 'वीर विनोद' नामक बृहद् ग्रन्थ में शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, फ़रमानों, फ़ारसी-तवारीख़ों आदि से सहायता ली गई है, जिससे उसकी उपयोगिता स्पष्ट है। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने बीकानेर के कुछ राजाओं के जीवन चरित्र लिखे थे जो अलग-अलग प्रकाशित हुए हैं। मुंशी सोहनलाल के 'तवारीख़ बीकानेर' और कुंवर कन्हैयाजू के 'बीकानेर राज्य का इतिहास' में बीकानेर के राजाओं का वर्तमान समय तक का इतिहास दिया है, जो संक्षिप्त होते हुए भी उपयोगी है। उर्दू भाषा में लिखे हुए पिछले इतिहासों में उपयोगिता की दृष्टि से 'वक़ाये राजपूताना' का उल्लेख किया जा सकता है।

फ़ारसी तवारीख़ों में भी बीकानेर राज्य का इतिहास यथा-प्रसंग आया है, परन्तु उनमें कहीं-कहीं जातीय एवं धार्मिक पक्षपात की मात्रा देख पड़ती है। तारीख़ फ़िरिश्ता, अकबरनामा, मुंतख़बुत्तवारीख़, जहांगीरनामा बादशाहनामा, मआसिरे आलमगीरी, औरंगज़ेबनामा आदि फ़ारसी-ग्रन्थों में यथा-प्रसंग बीकानेर के महाराजाओं का हाल दर्ज है। इस सम्बन्ध में शाही फ़रमानों और निशानों का उल्लेख, जो मेरे देखने में आये हैं और जिनकी संख्या ८३ है, आवश्यक है। इनसे कितनी ही ऐसी घटनाओं का पता चलता है, जिनका ख्यातों अथवा फ़ारसी तवारीख़ों में उल्लेख तक नहीं है। बीकानेर के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

अंग्रेज़ी भाषा की अन्य पुस्तकों में एचिसन की 'ट्रीटीज़ एंगेज्मेंट्स एण्ड सनद्ज़' तथा मुंशी ज्वालासहाय की 'लॉयल राजपूताना' से क्रमशः अंग्रेज़ सरकार के साथ की बीकानेर के राजाओं की संधियों और ग़दर के समय किये गये उनके वीरता-पूर्ण कार्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। स्वर्गीय डॉक्टर टेसिटोरी ने थोड़े समय में ही इस राज्य में भ्रमणकर जो-जो प्राचीन वस्तुएं संग्रह कीं और जो-जो शिलालेख पढ़े, वे भी इस राज्य

के इतिहास के लिए बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

किसी भी राज्य का प्रामाणिक इतिहास लिखने में वहां के प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों से सब से अधिक सहायता मिलती है, परन्तु खेद का विषय है कि यही साधन यहां सब से कम उपलब्ध हुए। शिलालेखों में यहां अधिकांश मृत्यु स्मारक लेख ही मिले हैं, जिनसे मृत्यु संवत् ज्ञात होने के अतिरिक्त और कुछ भी ऐतिहासिक वृत्त नहीं जान पड़ता। राज्य भर में कुछ छोटी प्रशस्तियां तो मिलीं, किन्तु बीकानेर-दुर्ग के एक पार्श्व में लगी हुई महाराजा रायसिंह की विशाल प्रशस्ति जैसी अन्य कोई प्रशस्ति यहां नहीं मिली। संभवतः इस अभाव का कारण यहां पत्थरों की कमी हो। ताम्रपत्र और सिक्के भी यहां से कम ही मिले हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में, जो दो भागों में समाप्त होगा, बीकानेर राज्य के संक्षिप्त भौगोलिक परिचय के अतिरिक्त, राव बीका से लेकर वर्तमान समय तक के बीकानेर के राजाओं का विस्तृत और सरदारों आदि का संक्षिप्त इतिहास है। राव बीका से पूर्व का इस प्रदेश का जो इतिहास शोध से ज्ञात हुआ, वह भी संक्षिप्त रूप से प्रारंभ में लिखा गया है। इसकी रचना में मैंने शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, ख्यातों, प्राचीन वंशावलियों, संस्कृत, फ़ारसी, मराठी और अंग्रेज़ी पुस्तकों, शाही फ़रमानों तथा राजकीय पत्र-व्यवहारों का पूरा-पूरा उपयोग किया है। मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा बीकानेर राज्य का प्राचीन गौरव प्रकाश में आयगा और यहां का वास्तविक इतिहास पाठकों को ज्ञात होगा।

यह इतिहास सर्वांगपूर्ण है, यह तो मैं कहने का साहस नहीं कर सकता, पर इसमें आधुनिक शोध को पूरा-पूरा स्थान देने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जिन व्यक्तियों आदि के नाम प्रसंगवशात् इतिहास में आये, उनका जहां तक पता लगा आवश्यकतानुसार कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार से परिचय (टिप्पण में) दिया गया है। अनीराय सिंहदलन जैसे प्रसिद्ध वीर व्यक्ति का, जिसका इतिहास में अन्यत्र विशद वर्णन आने की संभावना नहीं है, परिचय कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है।

भूल मनुष्य-मात्र से होती है और मैं भी इस नियम का अपवाद नहीं हूं। फिर इस समय मेरी वृद्धावस्था है और नेत्रों की शक्ति भी पहले जैसी नहीं रही है, जिससे, संभव है, कुछ स्थलों पर त्रुटियाँ रह गई हों। आशा है, उदार पाठक उनके लिए मुझे क्षमा करेंगे और जो त्रुटियां उनकी दृष्टि में आवें उनसे मुझे सूचित करेंगे तो दूसरी आवृत्ति में उचित सुधार किया जा सकेगा।

अन्त में मैं वर्तमान बीकानेर-नरेश मेजर जेनरल राजराजेश्वर नरेन्द्र शिरोमणि महाराजाधिराज श्रीमान् महाराजा सर गंगासिंहजी साहब बहादुर की उदारता एवं इतिहासप्रेम की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। वस्तुतः यह आपकी ही उदारतापूर्ण सहायता का फल है कि यह इतिहास अपने वर्तमान रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। श्रीमान् महाराजा साहब ने न केवल शाही फ़रमानों एवं निशानों के अनुवाद मुझे भिजवाने की कृपा की, बल्कि बीकानेर बुलाकर बृहद् राजकीय पुस्तकालय का भी पूरा-पूरा उपयोग करने का मुझे अवसर प्रदान किया। इससे मुझे प्रस्तुत इतिहास तैयार करने में बड़ी सहायता मिली और कई एक इतिहास सम्बन्धी नये और महत्वपूर्ण वृत्त ज्ञात हुए, जिनका अन्यत्र पता लगना अति कठिन था। इस उदारता के लिए मैं श्रीमानों का बहुत आभारी हूं।

मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का, जिनके ग्रन्थों से इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता मिली है, अत्यन्त अनुगृहीत हूं। उनके नाम यथाप्रसंग टिप्पण में दे दिये गये हैं। विस्तृत पुस्तक सूची दूसरे भाग के अंत में दी जायगी। इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अपने पुत्र प्रो० रामेश्वर ओझा, एम० ए० तथा निजी इतिहास-विभाग के कार्यकर्ता चिरंजीलाल व्यास एवं नाथूलाल व्यास से पर्याप्त सहायता मिली है, अतएव इनका नामोल्लेख भी करना आवश्यक है।

अजमेर,
जन्माष्टमी
वि० सं० १९९४

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

राठोड़ों से पूर्व का प्राचीन इतिहास

तीसरा अध्याय

राव बीका से पूर्व के राठोड़ों का संक्षिप्त परिचय

चौथा अध्याय

राव बीका से राव जैतसी तक

पांचवां अध्याय

राव कल्याणमल से महाराजा सूरसिंह तक

विषय	पृष्ठांक

विषय पृष्ठांक

छठा अध्याय

महाराजा कर्णसिंह से महाराजा सुजानसिंह तक

सातवां अध्याय

महाराजा जोरावरसिंह से महाराजा प्रतापसिंह तक

विषय | पृष्ठांक

विषय पृष्ठांक

चित्र-सूची

बीकानेर राज्य का इतिहास

पहला भाग

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

बीकानेर राज्य का पुराना नाम 'जांगलदेश'[1] था। इसके उत्तर में कुरु और मद्र देश थे, इसलिए महाभारत में जांगल नाम कहीं अकेला[2] और नाम कहीं कुरु और मद्र देशों के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। महाभारत में बहुधा ऐसे देशों के नाम समास में दिये हुए पाये जाते

---

(१) जांगलदेश के लक्षण ये बतलाये गये हैं—

जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो उसको जांगल देश जानना चाहिये (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः । स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादिसंयुतः ॥) (शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२९)।

भावप्रकाश में लिखा है—जहां आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी (खेजड़ा), कैर, बिल्व, आक, पीलु और बेर के वृक्ष हों उसको जांगल देश कहते हैं (आकाशशुभ्रउच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः । शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कंधुसंकुलः ॥······देशो वातालो जांगलः स्मृतः) वही; पृ० ५२९)।

इन लक्षणों से सामान्य रूप से राजपूताना के बालूवाले प्रदेश का नाम 'जांगलदेश' होना अनुमान किया जा सकता है।

(२) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ।

हैं, जो परस्पर मिले हुए होते हैं, जैसे 'कुरुपांचालाः[1]', 'माद्रेयजांगलाः[2]', 'कुरुजांगलाः[3]' आदि। इनका आशय यही है कि कुरु देश से मिला हुआ 'पांचाल देश,' मद्र देश से मिला हुआ 'जांगल देश[4]' कुरु देश से मिला हुआ 'जांगल देश' आदि। बीकानेर के राजा जांगल देश के स्वामी होने के कारण अब तक 'जंगलधर बादशाह' कहलाते हैं, जैसा कि उनके राज्य-चिह्न के लेख से पाया जाता है[5]।

(महाभारत; भीष्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक ५६—कुंभकोणं संस्करण)।

पैऽयं राज्यं महाराज कुरुवस्ते स जाङ्गलाः ॥

(वही; उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो० ७)।

(१ और २) तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ॥

(वही; भीष्मपर्व, अ० ६, श्लो० ३१)।

(३) तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोऽस्मि कुरुजांगलान् ॥

(वही; वनपर्व, अ० १०, श्लो० ११)।

ततः कुरुश्रेष्ठमुपैत्य पौराः प्रदक्षिणं चक्रुरदीनसत्वाः।
तं ब्राह्मणाश्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरुजाङ्गलानाम् ॥
स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्नः सहैव तैर्भ्रातृभिर्धर्मराजः।
तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघं कुरुजाङ्गलानाम् ॥

(वही; वनपर्व, अ० २३, श्लो० ५-६)।

(४) मद्र देश—पंजाब का वह हिस्सा, जो चनाब और सतलज नदियों के बीच में है।

(इंडियन ऐंटिकेरी; जि० ४०, पृ० २८)।

इस समय बीकानेर राज्य (जांगल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश से नहीं मिलता, परन्तु संभव है कि प्राचीनकाल में या तो मद्र देश की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो या जांगल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र देश से जा मिलती हो।

(५) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न में 'जय जंगलधर बादशाह' लिखा रहता है।

राठोड़ों के अधिकार से पूर्व बीकानेर का दक्षिणी हिस्सा, जो वर्त्तमान जोधपुर राज्य के उत्तर में है, 'जांगलू' नाम से प्रसिद्ध था, वह सांखले परमारों के अधीन था और उसका मुख्य नगर 'जांगलू' कहलाता था तथा अब तक वह स्थान उसी नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीनकाल में जांगल देश की सीमा के अन्तर्गत सारा बीकानेर राज्य और उसके दक्षिण के जोधपुर राज्य का बहुत कुछ अंश था। मध्यकाल में उस देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर[1] थी, जिसको इस समय नागोर[2] कहते हैं और जो

---

(१) अहिच्छत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरों का होना हिन्दुस्तान में पाया जाता है। उत्तरी पांचाल देश की राजधानी अहिच्छत्र थी, जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्त्संग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' में किया है (बील; बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑव् दि वेस्टर्न वर्ल्ड; जि० १, पृ० २००)। जैन लेखक जांगलदेश की राजधानी अहिच्छत्र बतलाते हैं (इं० ऐं०; जि० ४०, पृ० २८)। कर्नल टॉड के गुरु यति ज्ञानचन्द्र के संग्रह (मांडल, मेवाड़) में मुझे एक सूची २५ देशों तथा उनकी राजधानियों की मिली, जिसमें भी जांगलदेश की राजधानी अहिच्छत्र लिखी है। भैरवमत्ति के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिच्छत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपिं० इं०; जि० ३, पृ० २३५)। इसी तरह और भी अहिच्छत्र नाम के नगरों का उल्लेख मिलता है (बंबई गैज़ेटियर; जि० १, भा० २, पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(२) जोधपुर राज्य के नागोर नगर को जांगलदेश की राजधानी अहिच्छत्रपुर मानने का पहला कारण तो यह है कि नागोर 'नागपुर' का प्राकृत रूप है। नागपुर का अर्थ-'नाग का नगर' और अहिच्छत्रपुर का अर्थ-'नाग है छत्र जिस नगर का'-है। 'नाग' और 'अहि' दोनों एक ही आशय (सांप) के सूचक हैं। संस्कृत-लेखक नामों का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणों में विशेषकर हस्तिनापुर नाम मिलता है, परन्तु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १।८।४५; ४।३१।३०; १०।५७।८) या 'गजाह्वय-पुर' (भागवत, १।६।४८; १।१५।३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिए 'नागसाह्वयपुर' (७।१।८; १४।६५।२०) और 'नागपुर' ५।१४७।५। नामों का प्रयोग मिलता है, क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनों एक ही अर्थ के सूचक हैं। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० ११७० ता० ५ फरवरी) के बीजोल्यां (उदयपुर राज्य) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामंत का अहिच्छत्रपुर में राज करना लिखा है (विग्र-

अब जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है। जांगलदेश के उत्तरी भाग पर राठोड़ों का अधिकार होने के बाद जब से उसकी राजधानी बीकानेर स्थिर हुई तब से उक्त राज्य को बीकानेर राज्य कहने लगे।

स्थान और क्षेत्रफल

बीकानेर राज्य राजपूताने के सब से उत्तरी हिस्से में २७° १२′ और ३०° १२′ उत्तर अक्षांश और ७२° १२′ से ७५° ४१′ पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल २३३१७ वर्ग मील है[1]।

सीमा

बीकानेर राज्य के उत्तर में पंजाब का फ़ीरोज़पुर ज़िला, उत्तर-पूर्व में हिसार ज़िला और उत्तर पश्चिम में भावलपुर राज्य; दक्षिण में जोधपुर, दक्षिण पूर्व में जयपुर और दक्षिण पश्चिम में जैसलमेर राज्य; पूर्व में हिसार और लोहारू के परगने तथा पश्चिम में भावलपुर राज्य है। इसकी सबसे अधिक लम्बाई खक्खां (Khakhan) से सारूंडा तक और चौड़ाई रामपुरा से बल्लर के कुछ आगे तक बराबर अर्थात् लगभग २०८ मील है।

पर्वत-श्रेणियां

इस राज्य में केवल सुजानगढ़ को छोड़कर और कहीं पर्वत-श्रेणियां नहीं हैं। ये पर्वत-श्रेणियां दक्षिण में जोधपुर और जयपुर की सीमाओं के निकट स्थित हैं। इनमें से मुख्य गोपालपुरा के पास की पहाड़ी समुद्र की सतह से

श्रीवत्सगोत्रेभूदहिच्छत्रपुरे पुरा। सामंतोनंतसामंतः पूर्णतल्ले नृपस्ततः ॥ (श्लोक १२)। पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य से पाया जाता है—'वासुदेव (सामंत का पूर्वज) शिकार को गया जहां एक विद्याधर की कृपा से शाकंभरी (सांभर) की झील उसको नज़र आई (सर्ग ४)।' इससे पाया जाता है कि सांभर की झील चौहानों की मूल राजधानी अहिच्छत्रपुर से बहुत दूर न थी, ऐसी दशा में नागोर ही अहिच्छत्रपुर हो सकता है।

(१) पाउलेट ने क्षेत्रफल २३५०० (पा० गै०; पृ० ६१) और अर्सकिन ने २३३११ (बीकानेर राज्य का गैज़ेटियर; पृ० ३०६) वर्गमील दिया है। इस अन्तर का कारण यह है कि गुंजाल का हिस्सा दो मील मुरब्बा और दासिया के तीन गांवों के बदले में दो नवीन गांव बीकानेर राज्य में मिल जाने से वर्ग मीलों की संख्या बढ़ गई है।

१६५१ फ़ुट ऊंची है अर्थात् आसपास की समतल भूमि से इसकी ऊंचाई केवल ६०० फ़ुट के क़रीब ही है।

राज्य का दक्षिणी और पूर्वीभाग बागड़¹ नाम की विशाल मरुभूमि का और कुछ उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी भाग भारत की मरुभूमि का अंश है।

जमीन की बनावट

राज्य का केवल उत्तर-पूर्वी भाग ही उपजाऊ है। राज्य का अधिकांश हिस्सा रेत के टीलों से भरा है, जो २० फ़ुट से लेकर कहीं-कहीं सौ फ़ुट तक ऊंचे हो जाते हैं। यह कहा जा सकता है कि एक प्रकार से यहां की भूमि सूखी और किसी प्रकार ऊजड़ ही है। वर्षा ऋतु में घास उग आने पर यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने योग्य होता है। एलफिन्स्टन ने, जो ई० स० १८०८ में काबुल जाते समय इस राज्य से गुज़रा था, लिखा है—"राजधानी (बीकानेर) से थोड़ी दूर पर ही भूमि का ऐसा सूखा भाग मिलता है जैसा कि अरेबिया के सबसे ऊजड़ हिस्सों में। लेकिन बरसात में या ठीक उसके बाद ही इसकी काया पलट हो जाती है। यहां कि भूमि उस समय उत्तम हरी घास से ढककर एक विशाल चरागाह बनजाती है।"

नदियां

यहां पर सालभर बहनेवाली नदी एक भी नहीं है। केवल दो नदियां ऐसी हैं, जो वर्षा ऋतु में बीकानेर राज्य में प्रवेशकर इसके कुछ हिस्सों में जल पहुंचाती हैं।

काटली—यह वास्तव में जयपुर राज्य की सीमा में बहती है। उक्त राज्य के खंडेला के पास की पहाड़ियों से निकलकर उत्तर की तरफ़ शेखावाटी में लगभग साठ मील तक बहती हुई यह नदी बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। अच्छी वर्षा होने पर यह राजगढ़ तहसील के दक्षिणी हिस्से में १० से १६ मील (वर्षा न्यून या अधिक होने के अनुसार) तक बहकर रेतीले प्रदेश में लुप्त हो जाती है।

(१) 'बागड़' शब्द गुजराती भाषा के 'वगड़ा' से मिलता हुआ है, जिसका अर्थ 'जंगल' अर्थात् कम आबादीवाला प्रदेश होता है। अब भी डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्य तथा कच्छ का एक भाग 'बागड़' कहलाता है।

घग्गर (हाकड़ा)—इसका उद्गम-स्थान सिरमोर राज्य के अन्तर्गत हिमालय पर्वत के नीचे का ढलुआ भाग है। पटियाला राज्य और हिसार ज़िले में बहकर यह टीबी के निकट बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। यह प्राचीन काल में इस राज्य के उत्तरी भाग में बहती हुई सिन्धु (Indus) नदी से जा मिलती थी[1], पर अब यह वर्षा ऋतु को छोड़कर सदा सूखी रहती है और इस समय भी यह हनुमानगढ़ के पश्चिम एक दो मील से अधिक आगे नहीं जाती।

जब सदर्न पंजाब रेल्वे के अरवाल नामक स्टेशन के पास बांध बांधकर इस नदी से एक नहर निकाली गई तो बीकानेर राज्य में इसका पानी आना बन्द हो गया। राज्य-द्वारा इसकी कई बार शिकायत होने पर ई० स० १८९६ में अंग्रेज़ सरकार और राज्य के सम्मिलित खर्चे से धनूर झील के निकट ओटू (Otu) नामक स्थान में बांध बांधकर उससे दोनों तरफ़ नहरें ले जाने का प्रबन्ध हुआ। ये नहरें ई० स० १८९७ में बनकर सम्पूर्ण हुई। बीकानेर की सीमा के भीतर उत्तर एवं दक्षिण की तरफ़ की नहरों की लम्बाई ५३½ मील है। इन नहरों के बनवाने में कुल छः लाख रुपये ख़र्च हुए, जिसमें से लगभग आधा बीकानेर राज्य को देना पड़ा। अधिकांश पानी अंग्रेज़ी अमलदारी में ले लिये जाने से राज्य के भीतर की सिंचाई का औसत कम रहा। फिर भी बार-बार लिखा-पढ़ी होने के फल-स्वरूप ई० स० १९३१ में राज्य की पहले से अधिक अर्थात् ७११२ एकड़ भूमि घग्गर नहर-द्वारा सींची गई थी।

नहरें

राजपूताने के राज्यों में केवल बीकानेर में ही नहरों-द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया गया है। घग्गर (हाकड़ा) की नहर का उल्लेख ऊपर आ चुका है।

पश्चिमी यमुना नहर—पहले इस नहर का एक अंश 'फ़ीरोज़शाह

(१) इसके प्राचीन सूखे मार्ग का अब भी पता चलता है। पहले यह राज्य में प्रवेश करने के बाद सूरतगढ़, अनूपगढ़ आदि स्थानों के पास से होती हुई भावलपुर राज्य के मिनचिनाबाद इलाक़े से गुज़रकर सिन्धु से जा मिलती थी।
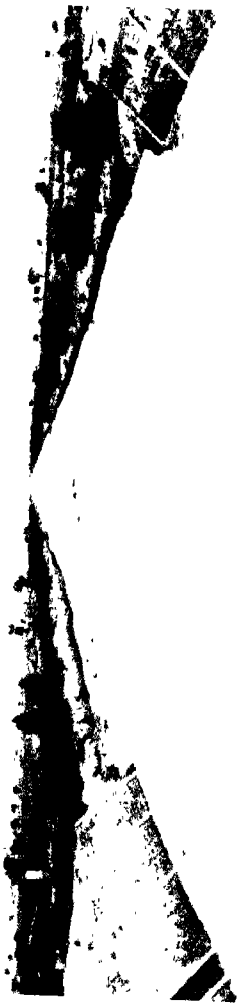
गंग नहर

नहर' के नाम से प्रसिद्ध था, जिससे बीकानेर राज्य में २० मील तक सिंचाई का कार्य होता था। बीच में इस राज्य में इस नहर का पानी आना बन्द कर दिया गया। बहुत प्रयत्न करने के बाद भादा तहसील की ४६० एकड़ भूमि इससे सींची जाने की अनुमति पंजाब सरकार ने दी है।

गंग नहर—कई वर्षों की लिखा पढ़ी के बाद पंजाब, भावलपुर और बीकानेर राज्यों के बीच सतलज नदी से नहर काटकर बीकानेर राज्य में लेजाने के सम्बन्ध में ई० स० १९२० ता० ४ सितम्बर (वि० सं० १९७७ भाद्रपद वदि ६) को एक इक़रारनामा हुआ, जिसके अनुसार नहर बनकर सम्पूर्ण होने पर ई० स० १९२७ ता० २६ अक्टोबर (वि० सं० १९८४ कार्तिक सुदि १) को भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड इर्विन-द्वारा बड़े समारोह के साथ इसका उद्घाटन करवाया गया।

गंगनहर फ़ीरोजपुर कैंटोन्मेंट के पास सतलज से निकाली गई है और पंजाब में होती हुई खखां के पास यह बीकानेर राज्य में प्रवेश करती है। राज्य में प्रवेश करने के बाद शिवपुर, गंगानगर, ज़ोरावरपुर, पद्मपुर, रायसिंहनगर और सरूपसर के पास होती हुई यह अनूपगढ़ तक आई है तथा इसकी शाखा-प्रशाखाएं पश्चिमी भाग में दूर-दूर तक फैली हुई हैं। मुख्य नहर की लम्बाई फ़ीरोजपुर से शिवपुर तक ८५ मील है और राज्य के भीतर की प्रमुख नहर तथा इसकी शाखा-प्रशाखाओं की कुल लम्बाई ५९९ मील है। इसके बनवाने में राज्य के लगभग ३ करोड़ रुपये खर्च हुए हैं। आरम्भ की पांच मील की लम्बाई को छोडकर शिवपुर तक (८० मील) यह नहर सीमेंट से पक्की बनी हुई है। सीमेंट से पक्की बनी हुई इतनी लम्बी नहर संसार में दूसरी कोई नहीं है। ई० स० १९३०-३१ में खरीफ़ और रबी की सम्मिलित फ़सलों में ३५१२४७ एकड़ भूमि इसके द्वारा सींची गई थी। इसके बन जाने से राज्य का कितना एक उत्तरी प्रदेश उपजाऊ हो गया है, जिससे राज्य की आय में भी पर्याप्त वृद्धि हो गई है। वर्तमान नरेश महाराजा सर गंगासिंहजी का यह भगीरथ प्रयत्न राज्य के लिए बड़ा लाभदायक हुआ है, क्योंकि इससे प्रजा का हित होने के साथ

ही राज्य को प्रति वर्ष अनुमान तीस लाख रुपये खर्च निकालकर आय बढ़ी है। नहर-द्वारा सींची जानेवाली पड़त भूमि का मालिकाना हक़ आदि बेचने की आय अनुमान साढ़े पांच करोड़ रुपये कूंती गई है, जिसमें से ई० स० १९३१ तक ढाई करोड़ से कुछ अधिक रुपये वसूल हो चुके हैं।

झीलें बीकानेर राज्य में बड़ी झील कोई नहीं है। मीठे और खारे पानी की छोटी छोटी झीलें नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—गजनेर—बीकानेर से २० मील दक्षिण-पश्चिम में यह मीठे पानी की झील उल्लेखनीय है। इसमें पश्चिम के ऊंचाईवाले प्रदेश से आया हुआ वर्षा का पानी जमा होता है और इसकी लंबाई चौड़ाई क्रमशः १/२ और १/४ मील है। इसका जल रोगोत्पादक है। ऐसा प्रसिद्ध है कि महाराजा गजसिंह के समय जोधपुरवालों की चढ़ाई होने पर उस(गजसिंह)ने इसमें विष डलवा दिया था, जिसका प्रभाव अब तक विद्यमान है और लगातार कुछ दिनों तक इसका जल सेवन करने से लोग बीमार पड़ जाते हैं। इसके पास ही महाराजा साहब के भव्य महल, मनोहर-उद्यान और शिकार की ओदियां (Shooting Boxes) बनी हुई हैं। यहां भड़-तीतर आदि पक्षियों की शिकार अधिकता से होती है। इस तालाब से कुछ दूर दूसरा बांध बांधा गया है, जिसमें से आवश्यकता होने पर जल इस झील में लेने की व्यवस्था की गई है।

२—कोलायत—गजनेर से १० मील दक्षिण-पश्चिम में कोलायत नामक पवित्र स्थान में एक और छोटी झील है, जो पुष्कर के समान पवित्र मानी जाती है। यह भी वर्षा के जल पर निर्भर है और कम वर्षा होने पर सूख भी जाती है। इसके किनारों पर मंदिर, धर्मशालाएं और पक्के घाट बने हुए हैं। यहां पर कपिलेश्वर मुनि का आश्रम था ऐसा माना जाता है और इसी से इसका माहात्म्य अधिक बढ़ गया है। कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर होनेवाले मेले में नेपाल आदि दूर दूर के स्थानों के यात्री यहां आते हैं।

३—छापर—सुजानगढ़ ज़िले की इस खारे पानी की झील से पहले नमक बनाया जाता था, जो अंग्रेज़ सरकार के साथ के ई० स० १८७९

(वि० सं० १९३५) के इक़रारनामे के अनुसार अब बंद कर दिया गया है। यह लगभग छः मील लम्बी और दो मील चौड़ी झील है, परन्तु इसकी गहराई इतनी कम है कि उष्णकाल के प्रारम्भ में ही बहुत कुछ सूख जाती है।

४—लूणकरणसर—राजधानी से पचास मील उत्तर-पूर्व में खारे पानी की यह दूसरी झील है। यहां भी पहले नमक बनता था, पर अब वह बन्द है।

इनके अतिरिक्त दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में मढ़ गांव के पास एक तालाब थोड़े समय पूर्व ही बनाया गया है, जिससे ५५० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है। पिलाप गांव के पास भी नया तालाब बनाया गया है, जो गंगसरोवर कहलाता है। इस झील से कई हज़ार बीघा ज़मीन की सिंचाई होती है और वहां वर्तमान महाराजा साहब के नाम पर गंगापुरा नामक नवीन गांव बस गया है। कोड़मदेसर के तालाब का बांध नये सिरे से ऊंचा बनाया गया है और उसमें दो जगहों से जल लाने की नई व्यवस्था की गई है तथा वहां सुन्दर महल भी है।

यहां की जल-वायु सूखी, परन्तु अधिकतर आरोग्यप्रद है। गर्मी में अधिक गर्मी और सर्दी में अधिक सर्दी पड़ना यहां की विशेषता है।

जल-वायु

इसी कारण मई, जून और जुलाई मास में यहां 'लू' (गर्म हवा) बहुत ज़ोरों से चलती है, जिससे रेत के टीले उड़-उड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लग जाते हैं। उन दिनों सूर्य की धूप इतनी असह्य हो जाती है कि यहां के देशवासी भी दोपहर को घर से बाहर निकलते हुए भय खाते हैं। कभी-कभी गर्मी बहुत बढ़ने पर लोगों की अकाल मृत्यु भी हो जाती है। बहुधा लोग घरों के नीचे के भाग में तहखाने बनवा लेते हैं, जो ठंढे रहते हैं और गर्मी की विशेषता होने पर वे उनमें चले जाते हैं। कड़ी ज़मीन की अपेक्षा रेता शीघ्रता से ठंढा हो जाता है, इसलिए गर्मी के दिनों में भी रात के समय यहां ठंढक रहती है।

शीतकाल में यहां इतनी सर्दी पड़ती है कि पेड़ और पौधे बहुधा

पाले के कारण नष्ट हो जाते हैं। ई० स० १८०८ के नवम्बर (वि० सं० १८६५ मार्गशीर्ष) मास में जब मॉनस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन काबुल जाता हुआ इधर से होकर गुज़रा था, उस समय सर्दी के कारण उसका बहुत नुक़सान हुआ। केवल एक दिन में नाथूसर में उसके तीस सिपाही बीमार पड़ गये और बीकानेर में एक सप्ताह में ४० आदमी अकाल मृत्यु के शिकार हुए। इसी प्रकार लेफ्टिनेंट बोइलो (Boileaw) ने, जो ई० स० १८३५ (वि० सं० १८९१-९२) में यहां आया था, शीतकाल में कड़ी सर्दी का अनुभव किया। उसने देखा कि फ़रवरी मास में भी तालाबों की सतह पर बरफ़ जम गई थी और उसके खेमे के बर्तनों का पानी भी जम गया था। मई में उसने तथा उसके साथियों ने कड़ी गर्मी का अनुभव किया, परन्तु इस अवस्था में भी उसके साथ का एक भी आदमी बीमार न पड़ा।

उष्णकाल में बीकानेर राज्य में गर्मी कभी-कभी १२३° डिगरी तक पहुंच जाती है और सर्दी में ३१° डिगरी तक घट जाती है।

कुएं

बीकानेर में रेगिस्तान की अधिकता होने से कुएं और छोटे-छोटे तालाबों का महत्व बहुत अधिक है। जहां कहीं कुआं खोदने की सुविधा हुई अथवा पानी जमा होने का स्थान मिला, आरम्भ में वहां पर ही बस्ती बस गई। यही कारण है कि बीकानेर के अधिकांश स्थानों के नामों के साथ 'सर' जुड़ा हुआ मिलता है, जैसे कोड़मदेसर, नौरंगदेसर, लूणकरणसर आदि। इससे आशय यही है कि उन स्थानों में कुएं अथवा तालाब हैं। कुओं के महत्व का एक कारण यह भी है कि पहले जब भी इस देश पर आक्रमण होता था, तो आक्रमणकारी कुओं के स्थानों पर अपना अधिकार जमाने का सर्व-प्रथम प्रयत्न करते थे। अधिकतर कुएं यहां ३०० या उससे अधिक फ़ुट गहरे हैं, जिनका पानी बहुधा सुस्वादु और स्वास्थ्यकर है। डाक्टर मूर को नाटवा नामक गांव में कुआं खुदवाते समय ४०० फ़ुट नीचे पानी मिला था। कुछ स्थानों में कुएं बहुत कम गहरे अर्थात् २० फ़ुट गहरे हैं। जयपुर राज्य की सीमा की तरफ़ पानी बहुधा अच्छा और आरोग्यप्रद मिलता है।

जैसलमेर को छोड़कर राजपूताने के अन्य राज्यों की अपेक्षा बीकानेर राज्य में सब से कम वर्षा होती है, जिसका कारण राज्य में पहाड़ों का अभाव है। ई० स० १६१२-१३ से लगाकर १६३१-३२ के बीच राज्य की वर्षा का औसत १० इंच से कुछ अधिक रहा है। सब से अधिक जलवृष्टि बीकानेर के पूर्वी और दक्षिण पूर्वी भागों में भादरा, चूरू और सुजानगढ़ के आस-पास होती है। यहां का औसत १३ और १४ इंच के बीच है। इनके निकटवर्ती नौहर, राजगढ़, रतनगढ़ आदि स्थानों में औसत ११ और १२ इंच के बीच रहता है। राजधानी तथा राज्य के मध्यवर्ती भाग में वर्षा का औसत १० और ११ इंच के बीच है। सुदूर पश्चिमी हिस्से में अनूपगढ़ के आस-पास वर्षा सब से कम होती है। अधिक से अधिक यहां वर्षा ७ और ८ इंच के बीच होती है। शेष स्थानों में औसत ६ और १० इंच के बीच है। ई० स० १६१२ और १६३२ के बीच सब से अधिक वर्षा ई० स० १६१६-१७ में सुजानगढ़ में क़रीब ४० इंच और सब से कम वर्षा ई० स० १६१७-१८ में अनूपगढ़ में आधे इंच से कुछ अधिक हुई थी।

वर्षा

वर्षाकाल में बीकानेर राज्य का प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ जाता है। पानी बरस जाने पर अधिकांश स्थानों में हरियाली हो जाती है, जो देखते ही बनती है।

राज्य का अधिकांश हिस्सा अर्वली पर्वत के उत्तर और उत्तर-पश्चिम में फैली हुई अनुपजाऊ तथा जलविहीन मरुभूमि का ही एक अंश है। इसी प्रकार दक्षिणी, मध्यवर्ती एवं पश्चिमीय भाग रेतीली भूमि का मैदान है, जिसके बीच में जगह-जगह रेत के टीले हैं, जो कहीं-कहीं बहुत ऊंचे हो गये हैं। राजधानी के दक्षिण-पश्चिम में मगरा नाम की पथरीली भूमि है जहां अच्छी वर्षा हो जाने पर किसी प्रकार अच्छी पैदावार हो जाती है। इसके उत्तर अर्थात् अनूपगढ़ के दक्षिण-पश्चिम में एक विशाल भू-भाग है, जिसे 'चितरंग' कहते हैं। कुदरती क्षार बहुतायत से होने के कारण यह भूमि भी खेती के

भूमि और पैदावार

योग्य नहीं है। फिर भी यहां सज्जी और लाणा के पौधे अधिकता से होते हैं। घग्गर से परे राज्य का सब से उपजाऊ भाग मिलता है, क्योंकि उधर की भूमि क्रमशः उत्तर की तरफ़ अधिक समतल और कम रेतीली होती गई है। अनूपगढ़ और सूरतगढ़ के उत्तर की भूमि एक प्रकार की चिकनी मिट्टी की बनी है, जिसको लोग 'बग्गी' कहते हैं। 'काठी' भूमि हनुमानगढ़ के ऊपरी भाग से हिसार तक फैली हुई है। इसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए है और जल सोखने में अच्छी होने के कारण ठीक सिंचाई होने पर यहां उत्तम पैदावार हो सकती है। नोहर और भादरा तहसीलों की भूमि काफ़ी समतल और उपजाऊ है। राज्य के पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में मुख्य रेगिस्तान है।

राज्य के अधिकांश भागों में केवल एक ही फ़सल खरीफ़ की होती है और मुख्यतः बाजरा, मोठ, जवार, तिल और कुछ रुई की खेती की जाती है। रबी की फ़सल अर्थात् गेहूं, जौ, चना, सरसों आदि की पैदावार पहले सूरतगढ़ निज़ामत के उत्तरी और रिणी निज़ामत के पूर्वी भागों में ही सीमित थी, परन्तु अब हाकड़ा तथा गंगनहर के आ जाने से उधर दोनों फ़सलें होने लगी हैं। नहर से सींची जानेवाली भूमि में पंजाब की भांति गन्ना, रुई, गेहूं, मक्का आदि भी अब पैदा होने लगे हैं।

खरीफ़ की फ़सल यहां प्रमुख गिनी जाती है, क्योंकि अन्न इत्यादि के लिए लोग इसी पर निर्भर रहते हैं और इस फ़सल का औसत भी रबी की फ़सल से कई गुना अधिक है। यहां के गांव एक दूसरे से काफ़ी दूरी पर बसने के कारण एक बार खरीफ़ की फ़सल न होने से विशेष नुक़सान नहीं होता, जब तक कि उसके पहले भी लगातार कई बार कहत न पड़ चुका हो।

बाजरा यहां की मुख्य पैदावार है, जो यहां बहुतायत से और अच्छी जात का होता है। इसके बाद मोठ है। गेहूं सुजानगढ़ के आस पास वर्षा के जल से तर होजानेवाली 'नाली' में और नहरों के क्षेत्रों में

होता है। कई स्थानों में कपास और सन की खेती होती है और भाद्रा, सुजानगढ़ तथा राजगढ़ की तहसीलों में हलकी जात का तमाखू भी पैदा होता है।

यहां के प्रमुख फल मतीरा (तरबूज) और ककड़ी हैं। मतीरा यहां अच्छी जाति का और बहुतायत से होता है तथा मौसिम के समय जानवरों तक को खिलाया जाता है। बड़े मतीरे तो वृत्त में ३ या ४ फुट तक के होते हैं। अब नहरों के आ जाने से जल की सुविधा हो जाने के कारण नारंगी, नींबू, अनार, अमरूद, केले आदि फल भी पैदा होने लगे हैं। शाकों में मूली, गाजर, प्याज आदि सरलता से उत्पन्न किये जाते हैं।

फल

बीकानेर राज्य में कोई सघन जंगल नहीं है और जल की कमी के कारण पेड़ भी यहां कम हैं। साधारणतया यहां 'खेजड़ा' (शमी) के वृत्त बहुतायत से होते हैं। उसकी फलियां, छाल तथा पत्तियां चौपाये खाते हैं। भीषण अकाल पड़ने पर कभी-कभी यहां के निर्धन लोग भी उन्हें खाते हैं। 'जाल' के वृत्तों की भी यहां विशेषता है, जो हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ की तरफ़ बहुतायत से होते हैं। सूड़सर और कई अन्य जगहों में नीम, शीशम तथा पीपल के पेड़ भी मिलते हैं। राजधानी में भी बेर और नीम आदि के पेड़ हैं। रेत के टीलों पर बबूल के पेड़ पाये जाते हैं, जिनका हनुमानगढ़ के पास घग्गर नदी के सूखे स्थल में करीब दस मील लम्बा और दो से चार मील तक चौड़ा एक विशाल जंगल है। रतनगढ़ आदि के आस-पास रोपड़ा के वृत्त हैं। इसकी लकड़ी अच्छी होती है और पक्के मकानों के बनाने में काम में आती है।

जंगल

छोटी जाति के पौधों में फोग, बूई, आक आदि का नाम लिया जा सकता है, जो स्वतः ही उग आते हैं। इनकी लकड़ी जलाने तथा झोंपड़ियां बनाने के काम में आती है। तहसील सूरतगढ़ एवं अनोपगढ़ में एक और पौधा अपने-आप उग आता है, जिसको 'सज्जी' कहते हैं। इसको

जलाकर अर्क निकालने से सज्जी बनती है। उससे निकला हुआ सोड़ा निम्न श्रेणी का होता है।

थोड़ी सी वर्षा हो जाने पर भी यहां घास अच्छी उग आती है। हनुमानगढ़ एवं सूरतगढ़ में घास अच्छी, बड़ी और कई प्रकार की होती है, जिनको 'सेवण', 'धामन' आदि कहते हैं। सुजानगढ़ में 'गंठील' घास अधिक होती है। राज्य भर में, प्रधानतया दक्षिणी भाग में, 'भुरट' नाम की चिपटनेवाली घास बहुतायत से उत्पन्न होती है। इसी 'भुरट' नाम की घास की अधिकता के कारण पिछली फ़ारसी तवारीखों आदि में कहीं कहीं बीकानेर के नरेशों को 'भुरटिया' भी लिखा मिलता है। इसका कारण यह है कि बादशाह औरंगज़ेब महाराजा कर्णसिंह से नाराज़ था, जिससे वह उसे 'भुरटिया' कहा करता था। अतएव यह शब्द कुछ समय तक बीकानेर के राजाओं के लिए प्रचलित हो गया था। अकाल के दिनों में लोग इसके बीजों को पीसकर उनसे रोटी बनाते हैं। राज्य में और भी कई प्रकार की घास होती है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। वर्षा-ऋतु में तरह-तरह की घास उग आने के कारण ही बीकानेर के प्राकृतिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है।

घास

इस राज्य में पहाड़ और जंगल न होने के कारण शेर, चीते, रींछ आदि भयङ्कर जन्तु तो नहीं हैं, पर जरख, रोभ (नीलगाय) आदि प्रायः मिल जाते हैं। राज्य भर में घास अच्छी होती है, जिससे गाय, बैल, भैंस, घोड़े, ऊंट, भेड़, बकरी आदि चौपाये सब जगह अधिकता से पाले जाते हैं। ऊंट यहां का बड़े काम का जानवर है और सवारी, बोझा ढोने, जल लाने, हल चलाने आदि का कार्य उससे लिया जाता है। जंगली पशुओं में अनूपगढ़ और रायसिंह-नगर के तहसीलों में कभी-कभी गोरखर (जंगली गधा) भी मिल जाते हैं। हिरन यहां बहुतायत से पाये जाते हैं। छापर, सुजानगढ़, सूरतगढ़ और हनुमानगढ़ तहसीलों में अथवा जहां कहीं भी पानी सुलभ है, वहां इनकी

जंगली जानवर और पशु पक्षी

संख्या अधिक है। इनकी दो जातियां—चीखले और काले—हैं। चीखले सब ही जगह होते हैं और काले उपरोक्त स्थानों में। इनका शिकार करना राज्य की ओर से वर्जित होने के कारण ही इनकी तादाद दिन-दिन बढ़ती जा रही है। घग्गर के बहाव तथा गजनेर के पास दोनों जातियों के हिरन और चीतल भी मिलते हैं। बीकानेर राज्य में सूअर और भेड़िये भी पाये जाते हैं, जो कभी-कभी बहुत हानि पहुंचाते हैं। भेड़िये को मारनेवाले को राज्य की तरफ़ से इनाम भी दिया जाता है। छोटे जानवरों में लोमड़ी, ख़रगोश, सांप आदि अधिक संख्या में हैं।

पक्षियों में भूरे रंग के तीतर, गोडावण (Bustard), बटबड़ (Sand-grouse) आदि पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त बड़ी बटबड़ (Imperial Sand-grouse), बटेर (Quail), चाय (Snipe), कुंज, तिलोर (Houbara) आदि पक्षी भी मिल जाते हैं। सर्दी के मौसिम में कोलायत और गजनेर के तालाबों में दूर-दूर से जंगली बतखें आ जाती हैं। तहसील हनुमानगढ़ में नाली के किनारे कुंज (क्रौंच) आदि कई प्रकार के पक्षी होते हैं, जिनका शिकार किया जाता है।

प्रायः समस्त देश कच्छ की खाड़ी से उड़कर आनेवाले रेत के टीलों से भरा हुआ है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। यहां पहाड़ियों का अभाव है तथापि कोलायत और गजनेर की रेतीली सतह के नीचे से पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े, चूने के कंकड़ तथा कई प्रकार की मिट्टी मिल जाती है, जो मकान बनवाने के काम में आती है। मीठा चूना भी रियासत के बहुत से भागों में मिल जाता है। इसके लिए सरदारशहर, जामसर आदि स्थान उल्लेखनीय हैं तथा यह राजधानी के आस-पास भी मिलता है। यह वहां मिलनेवाली एक प्रकार की चिकनी मिट्टी को जलाकर बनाया जाता है। दक्षिण-पश्चिम के मढ़ और पलाना नामक गांव में तथा गजनेर के पास मुल्तानी मिट्टी पाई जाती है। इसकी उत्पत्ति यहां लगभग १००० टन है, जिसमें से ८५० टन पंजाब आदि स्थानों में बिक्री के लिए भेज दी जाती है। लोग इसे सिर

खानें

धोने के काम में लाते हैं। पंजाब में इसके सुन्दर बर्तन आदि भी बनते हैं। कहते हैं कि एक शताब्दी पूर्व कच्छ की औरतें अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए कभी-कभी इसे खाया करती थीं। राजधानी से १४ मील दक्षिण-पश्चिम में पलाना में कोयला निकाला जाता है। ई० स० १८९६ (वि० सं० १९५३) में वहां एक कुआं खोदते समय इस खान का पता लगा था और ई० स० १८९८ (वि० सं० १९५५) में यहां से कोयला निकालने का कार्य प्रारम्भ हुआ। तब से इस व्यवसाय की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रही है। यहां का कोयला हलकी जाति का होता है और प्रधानतया राज्य के 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट' द्वारा काम में लिया जाता है तथा कुछ पंजाब को भी भेजा जाता है। इस खान से लगभग २५० मनुष्यों की जीविका चलती है।

राजधानी से ४२ मील पूर्वोत्तर में दुलमेरा नामक स्थान के निकट लालरंग का अत्युत्तम पत्थर पाया जाता है, जिसके मुलायम होने के कारण इसपर खुदाई का काम अच्छा होता है। राज्य के लालगढ़ नामक भव्य महल, 'विक्टोरिया मेमोरियल क्लब' आदि कई भवनों तथा शहर के भीतर के श्रीमंतों के कई सुन्दर मकानों का निर्माण इसी पत्थर से हुआ है। यह पत्थर भावलपुर, भटिंडा आदि स्थानों को भी भेजा जाता है। सुजानगढ़ तहसील में भी एक प्रकार का पत्थर निकलता है, परन्तु उतना अच्छा न होने के कारण वह केवल स्थानीय व्यवहार में ही आता है।

महाराजा गजसिंह के राजत्वकाल (ई० स० १७५३=वि० सं० १८१०) में बीदासर के निकट दड़ीबा गांव में तांबे की खान का पता चला था,[1] जिसकी खुदाई उसी समय आरम्भ कर दी गई थी, परन्तु यह खान लाभदायक सिद्ध न होने के कारण बाद में बन्द कर दी गई।

(१) टॉड ने दो तांबे की खानों का राज्य में पता चलना लिखा है। एक बीरमसर में तथा दूसरी बीदासर में। इनमें से पहली लाभदायक न होने से और दूसरी तीस वर्ष में खत्म हो जाने पर बन्द कर दी गई।

बीकानेर और हनुमानगढ़ यहां के प्रधान क़िले हैं। इनके अति-

किले

रिक्त राज्य में और भी कई जगह छोटे-छोटे क़िले (गढ़) हैं।

राज्य के सुदूर उत्तरी भाग में बड़े नाप की 'सदर्न पंजाब रेल्वे' केवल तीन मील तक बीकानेर राज्य की सीमा में होकर निकली है। जोधपुर

रेल्वे

और बीकानेर के बीच ई० स० १८६१ (वि० सं० १९४८) के दिसम्बर मास में अंग्रेज़ सरकार के साथ किये गये इक़रारनामे के अनुसार छोटे नाप की रेल बनाकर खोली गई थी। ई० स० १९२४ (वि० सं० १९८१) से बीकानेर स्टेट रेल्वे जोधपुर स्टेट रेल्वे से अलग हो गई है। जोधपुर स्टेट रेल्वे के स्टेशन मेड़ता रोड' से उत्तर में चीलो जंक्शन से बीकानेर स्टेट रेल्वे शुरू होती है और यह चीलो जंक्शन से बीकानेर, दुलमेरा, सूरतगढ़ और हनुमानगढ़ होती हुई भटिंडा तक चली गई है। इसकी कुल लम्बाई लगभग २५० मील है, जिसमें से क़रीब ३३ मील पंजाब की सीमा में पड़ती है। हनुमानगढ़ जंक्शन से एक शाखा गंगानगर, रायसिंहनगर और सरूपसर होती हुई सूरतगढ़ को गई है। सरूपसर से एक टुकड़ा अनूपगढ़ को गया है। इस हिस्से की रेल की लंबाई लगभग १६३ मील है। बीकानेर से दूसरी लंबी लाइन रतनगढ़, चूरू और सादुलपुर होकर हिसार तक गई है। रतनगढ़ से एक शाखा सुजानगढ़ तक जाकर जोधपुर स्टेट रेल्वे से मिल गई है एवं रतनगढ़ से दूसरी शाखा सरदारशहर तक गई है। हनुमानगढ़ से एक शाखा नौहर और भाद्रा होती हुई सादुलपुर में हिसार जानेवाली लाइन से मिली है। इस लाइन की लंबाई लगभग १११ मील है। बीकानेर से एक शाखा गजनेर होकर श्रीकोलायतजी तक बनवा दी गई है। बीकानेर राज्य के भीतर छोटे नाप की रेल्वे लाइन की कुल लंबाई लगभग ८२० मील है। इस समय सादुलपुर से रेवाड़ी तक १२५ मील लंबी रेल्वे-लाइन निकालने

(१) फुलेरा जंक्शन से कुचामन रोड तक बी० बी० एण्ड० सी० आई० और वहां से मेड़ता रोड तक जोधपुर स्टेट रेल्वे है।

3

का राज्य का और भी विचार है। रेल-गाड़ियां बनाने और उनकी मरम्मत के लिए राजधानी बीकानेर में एक बड़ा कारखाना है, जिसमें १००० आदमी काम करते हैं।

सड़कें

राजधानी के आस-पास और शहर से गजनेर तथा उसके आगे श्रीकोलायतजी के समीप एवं शिवबाड़ी व देवीकुंड तक पक्की सड़कें बनी हुई हैं। कच्ची सड़कें बहुधा राज्य भर में सर्वत्र हैं, जो चौमासे को छोड़कर अन्य मौसमों में मोटर तथा अन्य गाड़ियों की आमद-रफ्त के लिए काम देती हैं।

जनसंख्या

इस राज्य में मनुष्य गणना अब तक छः बार हुई है। यहां की जन-संख्या ई० स० १८८१ में ५०६०२१; ई० स० १८६१ में ८३१६५५; ई० स० १६०१[1] में ५८४६२७; ई० स० १६११ में ७००६८३; ई० स० १६२१ में ६५६६८५ और ई० स० १६३१ में ६३६२१८ थी, जिसमें ५०११५३ मर्द और ४३५०६५ औरतें थीं। इस हिसाब से प्रत्येक वर्ग मील पर ४१ मनुष्यों की आबादी का औसत आता है।

धर्म

यहां मुख्यतः वैदिक (ब्राह्मण), जैन, सिक्ख और इस्लाम धर्म के माननेवालों की संख्या अधिक है। ईसाई, आर्यसमाजी और पारसी धर्म के अनुयायी भी यहां थोड़े बहुत हैं। वैदिक धर्म के माननेवालों में शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक भेद हैं, जिनमें से यहां वैष्णवों की संख्या अधिक है। जैन धर्म में श्वेताम्बर, दिगम्बर और थानकवासी (ढूंढ़िया) आदि भेद हैं, जिनमें थानकवासियों की संख्या ज्यादा है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों के दो भेद शिया और सुन्नी हैं। इनमें से इस राज्य में सुन्नियों की संख्या अधिक है। मुसलमानों में अधिकांश राजपूतों के वंशज हैं, जो मुसलमान हो गये हैं और उनके यहां अब तक कई हिन्दू रीति-रिवाज प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त

(१) इस वर्ष में जन-संख्या में इतनी कमी होने का कारण ई० स० १८६६-१६०० (वि० सं० १६५६) का भीषण अकाल था।

वहां अलखगिरि[1] नाम का नवीन मत भी प्रचलित है तथा विसनोई[2] नाम का दूसरा मत भी हिन्दुओं में विद्यमान है।

---

(१) यह धर्म लालगिरि नाम के एक चमार व्यक्ति ने चलाया था, जो बीकानेर राज्य के सुलखनिया स्थान का रहनेवाला था। पांच वर्ष की अवस्था में इसे एक नागा ने लेजाकर धोखे से अपना चेला बना लिया था। पन्द्रह वर्ष बाद लौटने पर जब उसे उसके नीच जाति के होने का प्रमाण मिला तो उसने लालगिरि का परित्याग कर दिया। ई० स० १८३० (वि० सं० १८८७) में लालगिरि बीकानेर आया और वह क़िले के पश्चिमी फाटक के पास कुटी बनाकर बारह वर्ष तक वहां रहा। महाराजा रत्नसिंह के तीर्थ यात्रा के लिए जाने पर वह भी उसके साथ गया। वहां से लौटने पर उसने अपनी जन्म-भूमि में एक अच्छा कुआं खुदवाया और उसके बाद बीकानेर में आकर 'अलख' की उपासना का प्रचार करने लगा। कुछ ही दिनों में उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। उसका प्रधान शिष्य लच्छीराम था, जिसने बीकानेर में 'अलख-सागर' नाम का कुआं बनवाया। उपासना के सम्बन्ध में महाराजा की आज्ञा न मानने के कारण लालगिरि राज्य से निकाल दिया गया, तब वह जयपुर जाकर रहने लगा और उसके शिष्य उसकी आज्ञानुसार भगवा वस्त्र पहनने लगे। महाराजा सरदारसिंह ने जब इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ता देखा तो उसने इसके माननेवालों को राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी, जिसपर बहुतों ने इस मत का परित्याग कर दिया, परन्तु लच्छीराम दृढ़ रहा। ई० स० १८६६-६७ (वि० सं० १९२३) में लच्छीराम के पुत्र मानमल के मंत्री पद पर नियुक्त होने पर इस धर्म का फिर ज़ोर बढ़ा और लालगिरि भी बीकानेर लौटकर स्वतन्त्रता के साथ इसका प्रचार करने लगा। अलखगिरि मत के अनुयायी बहुधा साधु के वेष में रहते और भिक्षा से जीवन निर्वाह करते हैं, परन्तु कई गृहस्थ भी हैं। ये जैन तीर्थंकरों की उपासना तो नहीं करते पर अपना धर्म उससे मिलता-जुलता होने के कारण अपने को जैनों की शाखा मानते और जैन तीर्थंकरों का आदर करते हैं।

(२) विसनोई मत के प्रवर्तक जांभा नामक सिद्ध का वि० सं० १५०८ (ई० स० १४५१) में पीपासर में जन्म होना माना जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसको जंगल में गुरु गोरखनाथ मिला, जिससे उसको सिद्धि प्राप्त हुई। वह परमार जाति का राजपूत था। उसने अकाल के समय बहुतसे जाटों आदि को अन्न देकर पोषण किया। उसने बीस तथा नव (उन्तीस) बातों की अपने अनुयायियों को शिक्षा दी, जिससे वे 'विसनोई' कहलाने लगे।

उसके शिष्य सिद्धान्तरूप से उसकी बतलाई हुई बीस और नव (उन्तीस)

ई० स० १९३१ (वि० सं० १९८७) की मनुष्यगणना के अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है—

हिन्दू ७९४३२६; इनमें ब्राह्मण धर्म को माननेवाले ७२११२६, आर्य (आर्यसमाजी) ३१२५, ब्राह्मो और देवसमाजी ३३, सिक्ख ४०४६९

बातों को मानते हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—

रजस्वला होने पर स्त्री पांच दिन तक अलग रहे ।

प्रसव होने पर पुरुष स्त्री से एक मास तक दूर रहे और स्त्री आग, जल आदि को न छुए ।

परस्त्री-गमन और लालच न करे ।

रसोई अपने हाथ की बनाई हुई खावे और जल छानकर पिये ।

झूठ कभी न बोले । चोरी न करे । हरा वृक्ष न काटे । किसी प्रकार की जीव हिंसा न करे । मद्य न पिये और नशामात्र न करे ।

अमावास्या का व्रत रक्खे । विष्णु की भक्ति करे । प्रतिदिन अग्नि में घी डाल-कर हवन करे । पांच समय ईश्वर का स्मरण करे और संध्या समय आरती करे । नील से रंगा हुआ वस्त्र न पहने आदि ।

उसके उपदेशों का फल यह हुआ कि जाटों के अतिरिक्त इतर जातियों के बहुत से लोग भी आकर उसके अनुयायी होने लगे । गुरु नानक की भांति उसने भी हिन्दू और मुसलमानों में ऐक्य स्थापित करने के लिए मुसलमानी धर्म की कुछ बातें अपने यहां जारी कीं, यथा—

मरने पर शव को गाड़ा जावे ।

सारा सिर मुंडावे और चोटी न रक्खे ।

मुंह पर दाढ़ी रक्खे ।

जांभा की मृत्यु वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में होना बतलाते हैं । बीकानेर राज्य के तालवे गांव में उसकी मृत्यु होने पर रेत के धोरे में (जहां वह रहता था) उसके शव को गाड़ा गया । उस जगह उसकी स्मृति में एक मंदिर बना है और प्रति वर्ष फाल्गुन वदि १३ के आस-पास वहां मेला होता है, जिसमें दूर-दूर से बिसनोई आकर सम्मिलित होते हैं । वे लोग वहां हवन करते हैं और अपनी जाति के झगड़ों को भी वहीं मिटाते हैं । बीकानेर राज्य के अतिरिक्त जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों में भी बिसनोई रहते हैं और उनमें विधवा स्त्री का पुनर्विवाह भी होता है ।

और जैन २८७७३ हैं। मुसलमान १४१५७८, ईसाई २६८ और पारसी १६ हैं।

हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, खत्री, कायस्थ, जाट, चारण, भाट, सुनार, दरोगा, दर्जी, लुहार, खाती (बढ़ई), कुम्हार, तेली, माली, नाई, धोबी, गूजर, अहीर, वैरागी, गोसांई, स्वामी, डाकोत, कलाल, लखेरा, छींपा, सेवक, भगत, भड़भूंजा, रैगर, मोची, चमार आदि कई जातियां हैं। ब्राह्मण, महाजन आदि कई जातियों की अनेक उपजातियां भी बन गई हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। ब्राह्मणों की कई उपजातियों में तो परस्पर भोजन-व्यवहार भी नहीं है। जंगली जातियों में मीणे, बावरी, थोरी आदि हैं। ये लोग पहले चोरी और डकेती अधिक किया करते थे, पर अब खेती और मज़दूरी करने लगे हैं, तो भी दुष्काल में अपना पुराना पेशा नहीं छोड़ते। मुसलमानों में शेख, सैयद, मुग़ल, पठान, कायमख़ानी,[1] राठ[2],

जातियां

(१) कायमख़ानी पहले चौहान राजपूत थे और शेखावाटी के आस-पास के निवासी थे। मुंहणोत नैणसी ने लिखा है—"हिसार का फौजदार सैयद नासिर उन (चौहानों) पर चढ़ आया और ददेरा को लूटा। वहां की प्रजा भागी और केवल दो बालक (एक चौहान राजपूत और दूसरा जाट) उस गांव में रह गये, जिनको उसने अपने साथ ले लिया। फिर उस (नासिर) ने उनकी परवरिश की। सैयद नासिर की मृत्यु होने पर वे दोनों लड़के दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी के पास उपस्थित किये गये। इसपर उक्त सुलतान ने उस राजपूत लड़के (करमसी) को मुसलमान बनाकर क़ायमखां नाम रक्खा (ख्यात; प्रथम भाग; पृ० ११६)।" जयपुर राज्य के शेखावाटी में झूंझणू और फ़तहपुर पर बहुत दिनों तक कायमखां के वंशजों का अधिकार रहा तथा अब भी वहां उसके वंशज निवास करते हैं, जो क़ायमख़ानी कहलाते हैं। उनके बहुतसे रीति-रिवाज हिन्दुओं के समान हैं और पुरोहित भी ब्राह्मण हैं, परन्तु अब वे अपने प्राचीन हिन्दू संस्कारों को मिटाते जाते हैं।

(२) राठ या राट भी एक बहुत प्राचीन जाति है, जिसको प्राचीन काल में 'आरट्ट' कहते थे। इसका दूसरा नाम 'बाह्लीक' (वाहिक) भी था। इस जाति के स्त्री-पुरुषों के रहन-सहन, आचार-विचार आदि की महाभारत में बड़ी निंदा की है—

······आरट्टा नाम बाह्लीका एतेष्वार्यो हि नो वसेत्॥ ४३॥

जोहिया[1], रंगरेज़, भिश्ती और कुंजड़े आदि कई जातियां हैं।

यहां के लोगों में से अधिकांश खेती करते हैं; शेष व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मज़दूरी, अथवा लेन-देन का कार्य करते हैं। राज्य के उत्तरी भाग में अनूपगढ़ के पश्चिम के लोग बहुधा पशु-पालन करके अपना निर्वाह करते हैं। पीरज़ादे और राठ जाति के मुसलमानों का यही मुख्य पेशा है। व्यापार करनेवाली जातियों में प्रधान महाजन हैं, जो कलकत्ता, बंबई, करांची, बर्मा, सिंगापुर, आदि दूर-दूर के स्थानों में जाकर व्यापार करते हैं और उनमें से बहुत से

पेशा

······आरट्टा नाम बाह्लीका वर्जनीया विपश्चिता ॥ ४८ ॥
······आरट्टा नाम बाह्लीका नतेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ॥ ५१ ॥

महाभारत; कर्णपर्व, अध्याय ३७ (कुंभकोणं संस्करण)।

मुसलमानों के राजत्वकाल में इन लोगों को मुसलमान बनाया गया, जो अब 'राठ' कहलाते हैं। वस्तुतः ये लोग पंजाब के एक प्रदेश के निवासी थे और महा-प्रतापी दक्षिण के राठोड़ों से बिल्कुल ही भिन्न थे।

(१) जोहियों के लिए प्राचीन लेखों में 'यौधेय' शब्द मिलता है। प्राचीन क्षत्रिय राजवंशों में यह बड़ी वीर जाति थी। यौधेय शब्द 'युध्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'लड़ना' है। मौर्य राज्य की स्थापना से भी कई शताब्दी पूर्व होनेवाले प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने भी अपने व्याकरण में इस जाति का उल्लेख किया है। इनका मूल निवासस्थान पंजाब था। इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनों तटों पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश 'जोहियावार' कहलाता है। जोहिये राजपूत अब तक पंजाब के हिसार और मोंटगोमरी (साहिवाल) ज़िलों में पाये जाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सदा स्वतन्त्र रहते थे और गण-राज्य की भांति इनके अलग-अलग दलों के मुखिये ही इनके सेनापति और राजा माने जाते थे। महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार के लेख से पाया जाता है कि क्षत्रियों में वीर का ख़िताब धारण करनेवाले यौधेयों को उसने नष्ट किया था। उसके पीछे गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त ने इनको अपने अधीन किया। पंजाब से दक्षिण में बढ़ते हुए ये लोग राजपूताने में भी पहुंच गये थे। ये लोग स्वामिकार्तिक के उपासक थे, इसलिए इनके जो सिक्के मिलते हैं, उनमें एक तरफ़ इनके सेनापति का नाम तथा दूसरी तरफ़ छः मुखवाली कार्तिकस्वामी की मूर्त्ति है। भरतपुर राज्य के बयाना नगर के पास विजयगढ़ के क़िले से वि० सं० की छठी शताब्दी के आस पास की लिपि में इनका एक टूटा हुआ लेख मिला है। वर्त्तमान

बड़े संपन्न भी हो गये हैं। ब्राह्मण विशेषकर पूजा-पाठ तथा पुरोहिताई करते हैं, परन्तु कोई कोई व्यापार, नौकरी और खेती भी करते हैं। कुछ महाजन भी कृषि से ही अपना निर्वाह करते हैं। राजपूतों का मुख्य पेशा सैनिक-सेवा है, किन्तु कई खेती भी करते हैं।

पोशाक

शहरों में पुरुषों की पोशाक बहुधा लंबा अंगरखा या कोट, धोती और पगड़ी है। मुसलमान लोग बहुधा पाजामा, कुरता और पगड़ी, साफ़ा या टोपी पहनते हैं। सम्पन्न व्यक्ति अपनी पगड़ी का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं, परन्तु धीरे धीरे अब पगड़ी के स्थान में साफ़े या टोपी का प्रचार बढ़ता जा रहा है। राजकीय पुरुषों में कुछ अब पाजामा अथवा ब्रिचिज़, कोट और अंग्रेज़ी टोप का भी व्यवहार करने लगे हैं। ग्रामीण लोग अधिकतर मोटे कपड़े की धोती, बगलबन्दी और फेंटा काम में लाते हैं। स्त्रियों की पोशाक लहँगा, चोली और दुपट्टा है पर अब तो कलकत्ता आदि बाहरी स्थानों में रहने के कारण कई हिन्दू स्त्रियां केवल धोती और कांचली (कंचुकी) पहनने लगी हैं और ऊपर दुपट्टा डाल लेती हैं। मुसलमान औरतों की पोशाक चुस्त पाजामा, लम्बा कुरता और दुपट्टा है। उनमें से कुछ तिलक भी पहनती हैं।

यहां के अधिकांश लोगों की भाषा मारवाड़ी (राजस्थानी) है, जो राजपूताने में बोली जानेवाली भाषाओं में मुख्य है। यहां उसके भेद थली,

---

बीकानेर राज्य के कुछ भाग में भी पहले जोहियों का ही निवास था और एक लड़ाई में मारवाड़ का राठोड़ राव वीरम सलखावत (जो राव चूंडा का पिता था) इन जोहियों के हाथ से मारा गया था। राव बीका-द्वारा बीकानेर का राज्य स्थापित होने के पीछे बीकानेर के राजाओं से जोहियों ने कई लड़ाइयां लड़ी थीं, जिनका उल्लेख यथा-प्रसङ्ग किया जायगा। मुसलमानों का भारत में आक्रमण पंजाब के मार्ग से ही हुआ था। उस समय उन्होंने वहां के निवासियों को बल-पूर्वक मुसलमान बना लिया। तब जोहियों ने भी अपना सामूहिक बल टूट जाने व मुसलमानों के अत्याचारों से तंग हो कर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। अब बीकानेर राज्य में जोहिये राजपूत नहीं रहे केवल मुसलमान ही हैं।

भाषा

बागड़ी तथा शेखावाटी की भाषायें हैं। उत्तरी भाग के कुछ लोग मिश्रित पंजाबी, जिसको 'जाटकी' अर्थात् जाटों की भाषा कहते हैं, बोलते हैं।

लिपि

यहां की लिपि नागरी है, जो बहुधा घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय दफ़्तरों में अंग्रेज़ी का बहुत कुछ प्रचार है।

दस्तकारी

भेड़ों की अधिकता के कारण यहां ऊन बहुत होता है, जिसके कम्बल, लोइयां आदि ऊनी सामान बहुत अच्छे बनते हैं। यहां के ग़लीचे और दरियां भी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त हाथी-दांत की चूड़ियां, लाख की चूड़ियां, लाख से रंगे हुए लकड़ी के खिलौने तथा पलंग के पाये, सोने-चांदी के ज़ेवर, ऊंट के चमड़े के बने हुए सुनहरी काम के तरह-तरह के सुन्दर कुप्पे, ऊंटों की काठियां, लाल मिट्टी के बर्तन आदि यहां बहुत अच्छे बनाये जाते हैं। बीकानेर शहर में बाहर से आनेवाली शक्कर से बहुत सुन्दर और स्वच्छ मिश्री तैयार की जाती है, जो बाहर दूर-दूर तक भेजी जाती है। सुजानगढ़ में चुनड़ी की बंधाई का काम भी अच्छा होता है।

व्यापार

एक समय बीकानेर का बाहरी व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था और राजगढ़ में दूर-दूर से कारवां (काफ़िले) आकर ठहरते थे। वहां हांसी और हिसार से होती हुई पंजाब तथा काश्मीर की वस्तुएं; पूर्वीय प्रदेशों से दिल्ली तथा रेवाड़ी होकर रेशम, महीन कपड़े, नील, चीनी, लोहा और तमाकू; हाड़ोती और मालवा से अफ़ीम; सिन्ध और मुलतान से गेहूं, चावल, रेशम तथा सूखे फल; तथा पाली से मसाले, टिन्, दवाइयां, नारियल और हाथीदांत व्यापार के लिए आते थे। इनमें से कुछ सामान तो राज्य में ही खप जाता था और शेष उधर से गुज़र कर अन्य देशों में चला जाता था, जिससे राहदारी में राज्य को काफ़ी धन मिलता था। ई० स० की अट्ठारहवीं शताब्दी में कई कारणों से वह व्यापार नष्ट हो गया। अब रेल के खुल जाने, मार्गों के सुरक्षित हो जाने

और राहदारी के नियमों में परिवर्तन हो जाने से व्यापार में पुनः वृद्धि हो गई है। यहां से बाहर जानेवाली वस्तुओं में ऊन, कंबल, दरी, गलीचे, मिस्री, सज्जी, सोडा, शोरा, मुल्तानी मिट्टी, चमड़ा, तथा पशुओं में ऊंट, गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी आदि मुख्य हैं। बाहर से आनेवाली वस्तुओं में पंजाब, सिन्ध, आगरा और जयपुर से गल्ला; बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली से कपड़ा; सिन्ध और अमृतसर से चावल; भिवानी, कानपुर, चंदौसी और गाज़ीपुर से चीनी; जयपुर, जोधपुर और सिन्ध से रुई; कोटा और मालवा से अफ़ीम; सिन्ध और जयपुर से तमाकू; बम्बई, कलकत्ता, करांची और पंजाब से लोहा तथा अन्य धातुएं मुख्य हैं। सब सामान रेल-द्वारा आता-जाता है। भिवानी और हिसार के बीच तथा राज्य के उन विभागों में, जहां रेल निकट नहीं है, ऊंट भी माल ढोने के काम में आता है।

राजधानी को छोड़कर व्यापार के मुख्य केन्द्र गंगानगर, करणीपुर, रायसिंहनगर, गजसिंहनगर, विजयनगर, सादूलशहर, संगरिया-मंडी, नोखा-मंडी, भादरा, बीदासर, चूरू, डूंगरगढ़, नोहर, राजलदेसर, राजगढ़, रतनगढ़, सरदारशहर, सुजानगढ़ और सूरतगढ़ हैं। व्यापार का पेशा बहुधा अग्रवाल, माहेश्वरी और ओसवाल महाजनों, खत्रियों, ब्राह्मणों एवं शेख मुसलमानों के हाथ में है।

त्योहार

यहां हिन्दुओं के त्योहारों में शील-सप्तमी, अक्षयतृतीया, रक्षाबंधन, दशहरा, दिवाली और होली मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त गनगौर और तीज (श्रावणी तथा कजली) स्त्रियों के मुख्य त्योहार हैं। रक्षाबंधन विशेषकर ब्राह्मणों का तथा दशहरा क्षत्रियों का त्योहार है। दशहरे के दिन बड़ी धूम-धाम के साथ महाराजा की सवारी निकलती है। मुसलमानों के प्रमुख त्योहार, मुहर्रम, दोनों ईदें (ईदुलफ़ितर और ईदुलजुहा) एवं शबेबरात हैं।

यहां का सब से प्रसिद्ध मेला प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्लपक्ष के अंतिम दिनों में श्रीकोलायतजी में होता है और पूर्णिमा का दिन मुख्य माना जाता

मेले

है। यहां कपिलेश्वर मुनि का आश्रम माना जाने से इस स्थान का महत्व अधिक बढ़ गया है और मेले के दिन हज़ारों यात्री दूर-दूर से यहां आते हैं। उस समय ऊंट, बैल आदि की बिक्री बहुत होती है। श्रावण में शिवबाड़ी और भाद्रपद में देवीकुंड पर भी बड़े मेले लगते हैं, जो राजधानी के निकट हैं। इनके अतिरिक्त कोड़मदेसर, जैसुला तालाब, हरसोला तालाब और सुजानदेसर में भी मेले लगते हैं, पर वहां विशेष व्यापार नहीं होता। राजधानी बीकानेर में नागणेचीजी और धूणीनाथ के मेले प्रतिवर्ष लगते हैं। नौहर तहसील में गोगामेड़ी स्थान में प्रसिद्ध चौहान सिद्ध गोगा की स्मृति में प्रतिवर्ष भाद्रपद वदि ६ को और सूरपुरा तहसील में मुकाम स्थान में जामाजी नामक सिद्ध का मेला लगता है, जहां ऊंट-बैल आदि का व्यापार भी होता है।

प्राचीन काल में चिट्ठी एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचाने का कार्य क़ासिद (हलकारा) करते थे। सर्वप्रथम अंग्रेज़ी डाकखाने चूरू, रतनगढ़

डाकखाने

तथा सुजानगढ़ में खुले, जो ई० स० १८७२ में विद्यमान थे। अब तो अनूपगढ़, अनूपशहर, बीकानेर (यहां पर—लालगढ़ महल, शहर, कचहरी तथा मंडी ज़कात—चार अलग डाकखाने हैं), बीकासर (मोकलिया), भूकरका, बीदासर, बिग्गा, भाद्रा, भीनासर, विजयनगर, चाहड़वास, छापर, देशणोक, धोलीपाल, श्रीडूंगरगढ़, डाभली, गजसिंहपुर, गंगाशहर, गजनेर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, हिम्मतसर, जैतपुर, जैतसर, जामसर, केसरीसिंहपुर, कालू, लूणकरणसर, महाजन, मोमासर, नापासर, नौहर, पलाना, पदमपुर, पीलीबागान, पड़िहारा, रायसिंहनगर, रावतसर, रतननगर, राजलदेसर, रिणी, लालगढ़, सादूलशहर, सूड़सर, सूरपुरा, संगरिया, सरदारगढ़, सरदारशहर, सीदमुख, श्रीकर्णपुर, सूरतगढ़, सुजानगढ़, श्रीकोलायतजी, सादूलपुर, रतनगढ़, नरवासी, चूरू, चाक, हिन्दुमलकोट, टीबी और उदैरामसर में भी अंग्रेज़ सरकार के डाकखाने

स्थापित हो गये हैं; तथा चूरू, दलपतसिंहपुर, दुलमेरा, हड़ियाल, हनुमानगढ़, पृथ्वीराजपुर एवं रामसिंहपुर के रेल्वे स्टेशनों पर भी सरकारी डाकखाने हैं।

राजधानी में तीन तथा रतनगढ़, सरदारशहर, बीदासर, चूरू, नौहर, सुजानगढ़, छापर, श्रीगंगानगर, गंगाशहर, हनुमानगढ़, रिणी, सादुलपुर और सूरतगढ़ में एक-एक तारघर हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक रेल्वे स्टेशन पर भी तारघर बना हुआ है। बीकानेर, रतनगढ़, सरदारशहर, चूरू और सुजानगढ़ में बेतार के तारघर भी हैं।

तारघर

टेलीफ़ोन सर्वप्रथम ई० स० १६०५ (वि० सं० १६६२) में बीकानेर और गजनेर में लगाया गया था तथा अब यह गंगाशहर में भी लगा दिया गया है।

टेलीफ़ोन

बिजली का प्रवेश राज्य में पहले पहल महाराजा डूंगरसिंह के समय में हुआ। ई० स० १८८६ (वि० सं० १६४३) में उसने पुराने महलों में बिजली की मशीन लगवाई। फिर तो क्रमशः इसका प्रचार बढ़ता ही गया और अब राजधानी तथा कोड़मदेसर एवं गजनेर के राजमहलों के अतिरिक्त रतनगढ़, चूरू, सरदारशहर, सुजानगढ़, छापर, बीदासर, मोमासर, राजलदेसर, डूंगरगढ़, नापासर आदि में बिजली का प्रचार है, जो राजधानी के पावरहाउस से पहुंचाई जाती है। बिजली आ जाने से अब बीकानेर में बहुत से कुओं का पानी भी इसी की सहायता से निकाला जाता है और प्रेस तथा रेल्वे वर्कशॉप आदि भी इसी से चलते हैं।

बिजली

पहले यहां राज्य की ओर से शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। खानगी पाठशालाओं में प्रारम्भिक शिक्षा और कुछ हिसाब-किताब की पढ़ाई होती थी। संस्कृत पढ़नेवाले पंडितों के यहां और फ़ारसी तथा उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थी मौलवियों के घरू मकतबों में पढ़ते थे। राज्य की तरफ़ से महाराजा डूंगरसिंह के

शिक्षा

राजत्वकाल में ई० स० १८७२ (वि० सं० १६२६) में सर्वप्रथम एक स्कूल खोला गया, जिसमें हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी और देशी तरीके के हिसाब की पढ़ाई होती थी और विद्यार्थियों की संख्या २७५ थी। ई० स० १८८२ में उर्दू की और ई० स० १८८५ में पहले-पहल अंग्रेज़ी की पढ़ाई भी इसी स्कूल में आरंभ हुई। तीन वर्ष बाद राजधानी में एक स्कूल लड़कियों के लिए खोला गया। ई० स० १८६१-६२ (वि० सं० १६४८) में राज्य-द्वारा संचालित स्कूलों की संख्या १२ थी, जिनमें ६६४ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। ई० स० १८६३ में राज्य के सरदारों के लड़कों की पढ़ाई के लिए कर्नल सी० के० एम० वाल्टर के नाम पर 'वाल्टर नोबल्स स्कूल' की स्थापना हुई। अब इसमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या पहले से अधिक हो गई है, जिससे यह हाईस्कूल कर दिया गया है। महाराजा डूंगरसिंह के नाम पर बीकानेर में 'डूंगरकालेज' है, जहां बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। कुछ वर्ष पूर्व ही इसके लिए एक भव्य भवन निर्माण करवा दिया गया है। इनके अतिरिक्त राजधानी में 'सादूल हाईस्कूल' के सिवाय और दूसरे दो हाईस्कूल भी हैं। चूरू और रतनगढ़ में भी एक-एक हाईस्कूल उन विद्यार्थियों की सुविधा के लिए, जो राजधानी में पढ़ने नहीं आ सकते, खोला गया है। प्रायः प्रत्येक बड़े शहर में ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल हैं, जिनकी संख्या इस समय ६० से अधिक है। राजधानी में 'लेडी एल्गिन गर्ल्स स्कूल' लड़कियों का प्रमुख स्कूल है और प्रायः हर बड़े शहर में लड़कियों के लिए पाठशाला विद्यमान है। राजपूत-बालिकाओं की शिक्षा के लिए 'महाराणी भटि-यानीजी नोबल्स गर्ल्स स्कूल' है। ऐसी संस्था राजपूताने में अब तक कहीं नहीं है। लार्ड विलिंग्डन के नाम पर राजधानी में टेक्निकल इन्स्टीट्यूट (कला भवन) बनाया गया है, जिससे भविष्य में बेरोज़गारी का प्रश्न हल होकर जीविका-निर्वाह का साधन सरलता से हो जायगा। संस्कृत शिक्षा के लिए राज्य की ओर से 'गंगा-संस्कृत-पाठशाला' है, जिसमें कई विषयों की शिक्षा दी जाती है। परलोकवासी श्रीमान् किंग जॉर्ज की

रजत जयन्ती (Silver Jubilee) के उपलक्ष्य में राज्य की ओर से राजधानी में एक बृहत् पुस्तकालय तथा वाचनालय खोला गया है, जिससे सर्वसाधारण को ज्ञानशक्ति बढ़ाने का पूर्ण साधन हो गया है। राज्य के प्रसिद्ध नगर चूरू, रतनगढ़ आदि में भी पुस्तकालय स्थापित हैं, जिनसे जनता का लाभ होता है।

बीकानेर राज्य में वहां के निवासियों को शिक्षा निःशुल्क दी जाती है।

महाराजा साहब का शिक्षा-विभाग की वृद्धि में बड़ा अनुराग है, जिससे इन्होंने विद्यार्थियों की रुचि पढ़ाई में प्रवृत्त कराने के लिए कितनी ही छात्रवृत्तियां नियत कर दी हैं। ई० स० १९२८-२९ (वि० सं० १९८५) में प्रारंभिक शिक्षा का प्रचार करने के लिए वहां 'अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा' नामक क़ानून का निर्माण हो गया है।

अस्पताल

पहिले यहां प्राचीन पद्धति के वैद्यों तथा हकीमों के इलाज का ही प्रचार था, किंतु अब डाक्टरी इलाज़ का प्रचार बढ़ गया है। ई० स० १८४८ (वि० सं० १९०५) में महाराजा रत्नसिंह के कुंवर सरदारसिंह के स्वास्थ्य का निरीक्षण करने के लिए कोलरिज नामक प्रसिद्ध अंग्रेज़-डाक्टर नियुक्त हुआ। पहले लोग अंग्रेज़ी औषधियां लेने में हिचकते थे, पर धीरे-धीरे यह ग्लानि मिटती गई। ई० स० १८७० (वि० सं० १९२७) में बीकानेर नगर में पहली बार अंग्रेज़ी ढंग से लोगों का इलाज करने के निमित्त एक अस्पताल खोला गया। अंग्रेज़ी दवाइयों के इस्तेमाल में वृद्धि होने के साथ ही अस्पतालों की संख्या में भी क्रमशः उन्नति होती गई। इस समय राजधानी के अतिरिक्त चूरू और गंगानगर में अस्पताल तथा रिणी, सुजानगढ़, सूरतगढ़, भादरा, नोहर, राजगढ़, रतनगढ़, सरदारशहर, डूंगरगढ़, हनुमानगढ़, गंगाशहर, देशणोक, अनूपगढ़, विजयनगर, छापर, गजनेर, हिम्मतनगर, कर्णपुर, लूणकरणसर, नापासर, नोखा, पदमपुर, पलाना, राजलदेसर, रायसिंहनगर एवं संगरिया में डिसपेन्सरियां हैं। इनके अतिरिक्त रेल्वे के कर्मचारियों के लिए

राजधानी में 'रेल्वे-वर्कशॉप डिस्पेन्सरी' तथा चूरू और हनुमानगढ़ में भी शफ़ाखाने हैं। गांवों के लोगों में औषधियां वितरण करने के लिए हनुमानगढ़ में ऐसे डाक्टरों की नियुक्ति की गई है, जो हनुमानगढ़ से सूरतगढ़ तथा हनुमानगढ़ से सादुलपुर तक रेल में सफ़र करके प्रत्येक छोटे स्टेशन पर रुककर गांवों में जावें और रोगियों को देखकर उन्हें उचित औषधि दें। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को समुन्नत बनाने के लिए पांबू, फेफाना और रतननगर में आयुर्वेद-औषधालय खोले गये हैं।

राजधानी बीकानेर में पुरुषों और स्त्रियों के लिए पहले पृथक्-पृथक् अस्पताल थे, जिनमें चीर-फाड़ के सब प्रकार के आधुनिक औज़ारों के अतिरिक्त 'एक्सरे' यंत्र भी लगाया गया था, किंतु स्थान की संकीर्णता के कारण, वे दोनों पर्याप्त नहीं जान पड़े। इसलिए राजधानी में नगर के बाहर खुले मैदान में अब स्वर्गीय महाराजकुमार विजयसिंह की स्मृति में एक विशाल अस्पताल बनाया गया है, जिसमें पुरुष और स्त्रियों की चिकित्सा के पृथक्-पृथक् विभाग हैं। वहां चीर-फाड़ के कई प्रकार के औज़ार रक्खे गये हैं तथा शरीर के भीतरी भाग की परीक्षा के लिए 'एक्सरे' यंत्र भी लगा दिया गया है और कई रोगों का इलाज बिजली से भी होता है। बीमारों के रहने के लिए वहां पर्याप्त स्थान है तथा देहात से आनेवाले रोगियों के साथियों के ठहरने के लिए पास ही एक अच्छी धर्मशाला भी बनवा दी गई है। राजधानी में सेना के लिए सादूल मिलिटरी हॉस्पिटल; लालगढ़ हॉस्पिटल तथा नगर निवासियों की सुविधा के लिए नगर के भिन्न-भिन्न भागों में तीन और शफ़ाखाने हैं। कई स्थलों में जहां शफ़ाखानों की आवश्यकता है, वहां भी अब वे खोले जा रहे हैं।

शासनप्रबंध की सुविधा के लिए राज्य के छः विभाग किये गये हैं, जिन्हें ज़िले अथवा निज़ामत कहते हैं। प्रत्येक निज़ामत में एक हाकिम रहता है, जिसे नाज़िम कहते हैं। इन विभागों के उपविभागों में १६

ज़िले

तहसीलें और ४ मातहत तहसीलें हैं। तहसील का हाकिम तहसीलदार और मातहत तहसील का नायब तहसीलदार कहलाता है। इनको दीवानी, फ़ौजदारी तथा माल के मुक़दमे तय करने के नियमित अधिकार प्राप्त हैं। इनके फ़ैसलों की अपील नाज़िम की अदालत में और उसके किये हुए मुकद्दमों की सुनवाई हाई कोर्ट में होती है। प्रायः सारी भूमि का बन्दोबस्त हो गया है और उसके अनुसार लगान (जमीजोत) की रक़म स्थिर कर दी गई है। यहां भूमि का लगान इतना कम है कि लोग तीस, चालीस या इससे भी अधिक बीघे भूमि आसानी से जोत लेते हैं। इसमें से कुछ में तो गल्ला बोदिया जाता है, जिसकी एक फ़सल की पैदावार तीन-चार वर्ष तक काम देती है। पड़त भूमि में घास अच्छी हो जाती है, जिससे पशु-पालन में सुविधा रहती है।

राज्य की विभिन्न निज़ामतें नीचे लिखे अनुसार हैं—

सदर (बीकानेर) निज़ामत—यह राज्य के लगभग दक्षिण-पश्चिमी भाग में है। इसमें बीकानेर, लूणकरणसर और सूरपुरा की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान बीकानेर है तथा इसमें ५१० गांव हैं।

राजगढ़ निज़ामत—यह राज्य के पूर्व में है और इसके अन्तर्गत भादरा, चूरू, नोहर, राजगढ़ और रिणी की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान राजगढ़ है तथा इसमें ६३२ गांव हैं।

सुजानगढ़ निज़ामत—यह राज्य के दक्षिण पूर्वी भाग में है और इसके अन्तर्गत सरदारशहर, सुजानगढ़, रतनगढ़ तथा डूंगरगढ़ तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान सुजानगढ़ है और इसमें ५०६ गांव हैं।

सूरतगढ़ निज़ामत—इसके अन्तर्गत राज्य के उत्तर-पूर्वी हिस्से की ओर हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान सूरतगढ़ है और गांवों की संख्या २७७ है।

गंगानगर निज़ामत—गंगानहर के राज्य में आ जाने के बाद से उधर की आबादी बहुत बढ़ जाने पर वहां के प्रबन्ध के सुभीते के लिए गंगानगर निज़ामत अलग कर दी गई है। इसमें गंगानगर, करणपुर और

पदमपुर की तहसीलें हैं। इसका मुख्य स्थान गंगानगर है और गांवों की संख्या ५३४ है।

रायसिंहनगर निज़ामत—माल-विभाग का कार्य बढ़जाने के कारण गंगानगर निज़ामत से रायसिंहनगर तहसील और सूरतगढ़-निज़ामत से अनूपगढ़ तहसील पृथक् कर यह निज़ामत बना दी गई है, जिसका मुख्य स्थान रायसिंहनगर है और गांवों की संख्या २६८ है।

शासन प्रबंध की सुव्यवस्था और प्रजा-हितकारी क़ानूनों की वृद्धि के लिए वर्तमान महाराजा साहब की इच्छानुसार नवम्बर ई० स० १९१३ (वि० सं० १९७०) में 'रिप्रेज़ेन्टेटिव असेम्बली' (प्रतिनिधि सभा) की स्थापना की गई। उस समय इसके सदस्यों की संख्या ३५ थी। ई० स० १९१७ में इसका नाम बदलकर 'लेजिस्लेटिव-असेम्बली' (व्यवस्थापक सभा) कर दिया गया। इसके सदस्यों की संख्या ४५ है, जिनमें से २५ सरकारी (१४ ऑफ़िशियल और ११ नॉन ऑफ़िशियल) और २० ग़ैर-सरकारी हैं। सरकारी सदस्यों में ५ एक्स ऑफ़िशियो और २० राज्य-द्वारा चुनिंदा व्यक्ति होते हैं। इसके तीन प्रकार के कार्य हैं—क़ानून बनाना, निर्णय करना तथा सवाल पूछना। वार्षिक बजट इस सभा के समक्ष अर्थ-मंत्री द्वारा पेश किया जाता है।

लेजिस्लेटिव असेम्बली

व्यवस्थापक सभा की स्थापना के चार वर्ष पीछे ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७८) में वहां एक ज़मींदार सभा की स्थापना हुई। ई० स० १९२९ (वि० सं० १९८६) में एक के स्थान पर दो ज़मींदार सभायें कर दी गईं और इन्हें सदस्य चुनकर व्यवस्थापक सभा में भेजने का स्वत्व प्रदान किया गया। ज़मींदार सभा की स्थापना से महाराजा साहब का किसानों से निकट का सम्बन्ध हो गया है, जिससे उनकी आवश्यकताओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देने में सुविधा हो गई है।

ज़मींदार सभा

प्रजा-तन्त्र शासन का प्रचार करने के लिए महाराजा साहब ने

बड़े-बड़े नगरों में म्यूनीसिपैलिटियां स्थापित की हैं, जिनकी व्यवस्था बहुधा प्रजा-द्वारा निर्वाचित सदस्य करते हैं। अब तक बीकानेर, सुजानगढ़, रतनगढ़, सरदारशहर, चूरू, डूंगरगढ़, राजलदेसर, राजगढ़, रिणी, नौहर, भादरा, रतननगर, सूरतगढ़, हनुमानगढ़, संगरिया, गंगानगर, छापर, रायसिंहनगर और करणीपुर में म्यूनिसिपैलिटियां खुल गई हैं, जो प्रजा के हाथ में हैं। कुछ म्यूनीसिपैलिटियों ने तो अपनी सीमा में प्रारंभिक शिक्षा भी अनिवार्य कर दी है।

म्यूनीसिपैलिटी

गांवों में पंचायतों की भी व्यवस्था है, जो गांवों के झगड़ों आदि का फ़ैसला करती हैं। ई० स० १९२८ (वि० सं० १९८५) में एक क़ानून पास करके इन्हें दिवानी और फ़ौजदारी के कई अधिकार दे दिये गये हैं तथा इनके अधिकार का क्षेत्र भी बढ़ा दिया गया है। अब तक सदर, सूरपुरा, लूणकरणसर, सुजानगढ़, डूंगरगढ़, सरदारशहर, चूरू, नौहर, भादरा, रिणी, राजगढ़, हनुमानगढ़, सूरतगढ़ और गंगानगर की तहसीलों में ग्राम-पंचायतें क़ायम हो गई हैं।

पंचायतें

गांवों में प्रजातंत्र शासन की शिक्षा देने और स्थानीय मामलों की स्वयं देख-रेख करने की योग्यता उत्पन्न करने के प्रयोजन से जगह-जगह ज़िला-सभाओं (District Board) की स्थापना के लिए एक क़ानून हाल ही में पास किया गया है, जिसके अनुसार गंगानगर में ज़िला-सभा की स्थापना भी हो गई है।

ज़िलासभायें

इमारती काम और सड़कों आदि के लिए महकमा तामीर (Public Works Department) स्थापित है। अब तक पक्की सड़कें, महकमा ख़ास का भवन, डूंगर मेमोरियल कॉलेज और होस्टल, वाल्टर नोबल्स हाई स्कूल, कई अस्पताल, विक्टोरिया मेमोरियल क्लब आदि कई भव्य इमारतें बनाने के अतिरिक्त इस महकमे के द्वारा कई मनोहर उद्यानों का भी राज्य में निर्माण हुआ

महकमा तामीर

है, जिनसे प्रजा को बहुत लाभ पहुंचता है। इनके अतिरिक्त राज्य के प्रमुख स्थानों में कई बड़ी-बड़ी इमारतें, डाकबंगले (rest houses) आदि भी इस महकमे के द्वारा बनाये गये हैं।

सहयोग संस्थायें

ग्रामीणों की ऋण-ग्रस्त दशा को सुधारने तथा उनमें अपनी सहायता आपस में कर लेने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए वर्तमान महाराजा साहब ने राज्य में कई सहयोग संस्थायें (Cooperative Societies) स्थापित कर दी हैं, जो सदस्यों की सहायता से ही संचालित होती हैं। ई० स० १९३२ (वि० सं० १९८९) में ऐसी संस्थाओं की संख्या १०५ थी। ये भाद्रा, नौहर, गंगानगर, रायसिंहनगर, अनूपगढ़ आदि स्थानों में हैं।

न्याय

पहले राज्य में न्याय की व्यवस्था जैसी चाहिये वैसी न थी। हर प्रकार के लोगों के हस्तक्षेप या सिफ़ारिशों के कारण न्यायोचित व्यवहार का प्रायः अभाव हो जाया करता था। वर्तमान समय में राज्य में जैसे नियमानुकूल न्यायालय हैं, उस समय उनका अस्तित्व भी न था और अपराधियों को मुक्ति के पूर्व जुरमाना तो अवश्य ही देना पड़ता था। ई० स० १८७१ (वि० सं० १९२८) में तीन कचहरियों (दीवानी, फ़ौजदारी और माल) की स्थापना राजधानी में हुई, पर शासनशैली में विशेष परिवर्त्तन न होने के कारण स्थिति वैसी ही डांवाडोल बनी रही। ई० स० १८८४-८५ (वि० सं० १९४१-४२) में दीवानी और फ़ौजदारी की मुख्य अदालतें हटाई जाकर राज्य के जो शासन विभाग किये गये, उनमें अलग-अलग निज़ामतें खोली गईं। पहले इनके निर्णय किये हुए मुक़दमों की सुनवाई राजसभा और उसके बाद 'इजलास-ख़ास' में महाराजा के समक्ष होती थी। ई० स० १८८७ (वि० सं० १९४४) से रीजेन्सी कौंसिल को वह अधिकार प्राप्त हुआ और एक अपील-कोर्ट की स्थापना हुई। फिर नायब तहसीलदारों को भी मुक़द्दमे सुनने का हक़ प्राप्त

हुआ तथा बीकानेर, चूरू एवं नोहर में छोटे-छोटे मुक़दमों की सुनवाई के लिए कुछ ऑनरेरी-मैजिस्ट्रेट भी नियुक्त किये गये।

इस समय नायब तहसीलदारों को फ़ौजदारी मामलों में तीसरे दर्जे के और तहसीलदारों को दूसरे दर्जे के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं और जहां मुंसिफ़ या डिस्ट्रिक्ट जज नहीं है, वहां उन्हें क्रमशः ५० तथा २०० रुपये तक के दीवानी दावे सुनने का अधिकार है। नाज़िमों को पहले दर्जे के मैजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं, दीवानी नहीं।

बीकानेर, रतनगढ़, भादरा, चूरू, हनुमानगढ़ और गंगानगर में मुंसिफ़ की अदालतें भी हैं, जिनको फ़ौजदारी मामलों में दूसरे दर्जे के मैजिस्ट्रेट के और दीवानी मामलों में दो हज़ार तक के दावे सुनने का अधिकार है।

पांच निज़ामतों—सदर (बीकानेर), राजगढ़, सुजानगढ़, सूरतगढ़ और गंगानगर में डिस्ट्रिक्ट जज रहते हैं, जिनको फ़ौजदारी मामलों में पहले दर्जे के मैजिस्ट्रेट के और दीवानी मामलों में दस हज़ार तक के दावे सुनने का अधिकार है। रायसिंहनगर में डिस्ट्रिक्ट जज नहीं है, अतएव वहां की कार्यवाही गंगानगर में होती है।

ई० स० १९२२ ता० ३ मई (वि० सं० १९७९ वैशाख सुदि ६) को राजधानी में हाईकोर्ट की स्थापना हुई, जिसमें तीन न्यायाधीश नियुक्त किये गये। इस अदालत में दीवानी और फ़ौजदारी के नये मुक़दमों के अतिरिक्त छोटी अदालतों के मुक़दमों की अपीलें भी सुनी जाती हैं। केवल दस हज़ार से अधिक के मुक़दमों अथवा किसी जटिल प्रश्न के निर्णय को छोड़कर अन्य सब अवस्थाओं में इस अदालत का फ़ैसला अन्तिम माना जाता है। दस हज़ार से अधिक के मुक़दमों अथवा किसी जटिल प्रश्न के निर्णय के संबंध की अपील राज्य की एग्ज़िक्यूटिव कौंसिल की जूडिशल कमेटी के सामने की जा सकती है। हाईकोर्ट को नियमानुसार पूरी सज़ा देने का अधिकार है, परंतु मृत्युदंड के लिए महाराजा साहब की आज्ञा प्राप्त करनी होती है। मृत्युदंड अथवा दस वर्ष या

उससे अधिक अवधि की कैद की सज़ा की अपील महाराजा साहब के समक्ष की जा सकती है। बड़े मुक़दमों में जूरी-द्वारा न्याय करने की प्रथा भी प्रचलित है।

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) ने एक लीगल प्रैक्टिशनर्स एक्ट (Legal Practitioners Act) बना दिया है, जिसके अनुसार राज्य की अदालतों में वकालत प्रारंभ करनेवालों को एक नियत परीक्षा पास करनी पड़ती है। वकीलों की सुविधा के लिए क़ानून की शिक्षा देनेवाले एक व्यक्ति की नियुक्ति भी कर दी गई है। राज्य में वहां के बने हुए क़ानून चलते हैं, जिनका ज्ञान प्राप्त करना वकीलों के लिए आवश्यक है।

खालसा, जागीर और शासन

राज्य की भूमि तीन भागों—खालसा, जागीर और शासन (धर्मादा)—में बटी हुई है। राज्य के कुल २५४२ गांवों और १५ नगरों में से १२५८ गांव तथा १४ नगर खालसे में हैं। जागीर में १३०९ गांव एवं १ शहर हैं। धर्मादा और माफ़ी में दिये हुए १७५ गांव हैं। खालसा गांवों की भूमि राज्य की मानी जाती है और जब तक किसान बराबर निश्चित लगान अदा करता रहता है, तब तक वह अपनी ज़मीन का अधिकारी रहता है। जागीरें बहुधा जागीरदारों के पूर्वजों को उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में अथवा राजाओं के कुटुम्बियों को मिली हुई हैं। इनमें से कुछ से तो खिराज नहीं लिया जाता, शेष से प्रतिवर्ष बंधी हुई रक़म ली जाती है। बिना खिराज की जागीरें राजकुटुंबियों[1] और परसंगियों (अन्यवंशों के सरदारों)[2] तथा उन सरदारों की हैं, जिनका, महाराजा साहब ने खास सेवाओं के कारण, खिराज माफ़ कर दिया है। महाराजाओं के सिंहासनारूढ़ होने के समय सरदारों को नियत रक़म नज़र के रूप में देनी पड़ती है, जिसे 'न्योता'

(१) यहां राजकुटुम्बियों को 'राजवी' कहते हैं, जो महाराजा साहब के निकट के रिश्तेदार हैं। उनका वर्णन आगे सरदारों के इतिहास में किया जायगा।

(२) 'परसंगी' वे राजपूत हैं, जिनके साथ राठोड़ों के विवाह सम्बन्ध होते हैं।

कहते हैं । इसके अतिरिक्त उनसे विवाह अथवा युवराज के जन्म आदि अवसरों पर भी कुछ रक़म न्योते की ली जाती है । धर्मादे में दी गई भूमि, जो मंदिरों के प्रबन्ध के लिए अथवा चारणों, ब्राह्मणों आदि को दान में दी गई है, 'शासन' कहलाती है । इनसे राज्य में कोई रक़म नहीं ली जाती और न इनसे किसी प्रकार की सेवा ली जाती है । कुछ ऐसे भोमिये राजपूत भी हैं, जिनके पास अपनी ज़मींदारी है । ये राज्य को लगान नहीं देते, पर इन्हें कुछ अन्य कर देने पड़ते हैं ।

जागीरदार (जिन्हें सरदार तथा उमराव भी कहते हैं) बहुधा राज्य के सरदार हैं । इनके दो विभाग—ताज़ीमी और ग़ैरताज़ीमी—हैं । ताज़ीमी सरदारों की संख्या १२० है, जिनमें से कई सरदार राज्य के बड़े-बड़े ओहदों पर भी नियुक्त हैं । इनमें से चार—महाजन, रावतसर, भूकरका और बीदासरवाले—अन्य ताज़ीमी सरदारों से ऊंचे दर्जे के हैं और 'सरायत' कहलाते हैं । पहले सब सरदार घोड़ों, ऊंटों अथवा पैदल सैनिकों के साथ राज्य की सेवा करते थे, परन्तु महाराजा डूंगरसिंह के समय से उसके बदले नक़द रकम निश्चित हो गई है । बहुधा यह रकम जागीरों की आय की एक तिहाई निश्चित की गई है । सरायतों को भी नज़राने, न्योते आदि की रकमें देनी पड़ती हैं । वे ठिकाने के मालिक होने के समय नज़राने में रेख के बराबर रक़म और अवसर विशेष पर कुछ न्योते की रक़म देते हैं । इसके बदले में विवाह अथवा ग़मी के अवसरों पर राज्य की ओर से सरदारों को उचित सहायता दी जाती है ।

इस राज्य में क़वायदी सेना की संख्या १७६७ है, जिसमें २३६ गोलन्दाज़ और ४६५ ऊंट सेना के सैनिक भी शामिल हैं । डूंगरलैन्सर्स की संख्या, जिनमें महाराजा साहब के अंगरक्षक भी शामिल हैं, ३४२ है तथा सादूल लाइट इन्फ़ैन्ट्री में ६५४ सैनिक हैं । इनके अतिरिक्त मोटर मशीनगन सेक्शन में १०० सैनिक हैं । राज्य में पुलिस की संख्या १७१५ है ।

सेना

वर्तमान महाराजा साहब के सिंहासनारूढ़ होने के समय राज्य की

आय अनुमान सवा पन्द्रह लाख रुपये थी, जो इनको अधिकार मिलने के समय बीस लाख रुपये तक पहुंच गई और अब बढ़कर एक करोड़ तेतीस लाख के लगभग हो गई है। आमदनी के मुख्य सीगे—ज़मीन का हासिल, जागीरदारों का ख़िराज, सरकार से मिलनेवाले नमक के रुपये, रेल्वे की आमद, नहरों की आमद, पलाना के कोयले की खान की आमद, बिजली के कारखाने की आमद, आबकारी, चुंगी (दाण), स्टांप, कोर्ट फ़ीस, दंड आदि—हैं। राज्य का व्यय लगभग एक करोड़ रुपये है। उसके मुख्य सीगे—सेना, पुलिस, हाथख़र्च, महलों का ख़र्च, अदालती ख़र्च, अस्तबल का ख़र्च, रेल, बिजली, नहरें सड़कें तथा इमारतें आदि—हैं।

आय-व्यय

बीकानेर राज्य में पहले बिना लेखवाले चिह्नांकित (Punchmarked) सिक्के चलते थे। फिर यौद्धेयों के सिक्कों का प्रचार हुआ। उनके पीछे गुप्तों के, हूणों के चलाये हुए गधिये, प्रतिहारों में से भोजदेव (आदिवराह) के, चौहानों में से अजयदेव और उसकी राणी सोमलदेवी के तथा सोमेश्वर और अंतिम प्रसिद्ध चौहान पृथ्वीराज के सिक्के चलते रहे। मुसलमानों का राज्य भारतवर्ष में स्थापित होने के बाद दिल्ली के सुलतानों और बादशाहों के सिक्कों का यहां भी चलन हुआ। मुग़ल साम्राज्य के निर्बल होने पर राजपूताने के राजाओं ने बादशाह की आज्ञा से अपने-अपने राज्यों में टकसालें खोलीं, परन्तु सिक्के बादशाह के नामवाले फ़ारसी लिपि के लेख सहित ही बनते रहे। सर्वप्रथम महाराजा गजसिंह ने बादशाह आलमगीर दूसरे (ई० स० १७५४–१७५६= वि० सं० १८११–१८१६) से अपने राज्य में सिक्के बनाने की सनद प्राप्त की। ई० स० १८५६ (वि० सं० १९१६) तक के सिक्कों पर केवल बादशाह शाह आलम (दूसरा) का नाम मिलता है, जो ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१६) में गद्दी पर बैठा था। इससे यह कहा जा सकता है कि सनद आलमगीर दूसरे के समय में प्राप्त हो जाने पर भी सिक्के शाह आलम के समय में बीकानेर में बनने शुरू हुए हों और दूसरे बादशाहों के गद्दी बैठने पर भी

सिक्के

यहां के सिक्कों पर उसी (शाह आलम) का नाम चलता रहा। ये सिक्के राज्य की टकसाल में ही बनते थे। बीकानेर राज्य की टकसाल में पहले सोने की मुहरें भी बनती थीं[1]। जो मुहरें हमारे देखने में आई, उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जाता है—

कप्तान ए० डबल्यू० टी० वेब को सीकर के ख़ज़ाने से दो मुहरें महाराजा रत्नसिंह के समय की मिलीं, जिनपर वही लेख और चिह्न हैं, जो उक्त महाराजा के चांदी के सिक्कों पर हैं।

राज्य के बड़े कारख़ाने के तोशाख़ाने से दो मुहरें महाराजा सरदारसिंह के समय की देखने में आईं, जिनमें चांदी के सिक्कों के समान ही लेख हैं।

एक मुहर महाराजा डूंगरसिंह के समय की बीकानेर राज्य के बड़े कारख़ाने के तोशाख़ाने में देखने में आई, जिसपर लेख उसके समय के रुपयों के अनुसार ही है। उसकी दूसरी तरफ़ 'ज़र्ब श्री बीकानेर' खुदा है। उसमें पताका, त्रिशूल, छत्र, चंवर और किरणिया भी हैं[2]।

---

(१) कप्तान डबल्यू० डबल्यू० वेब ने अपनी पुस्तक 'करेंसीज़ ऑव् दि हिन्दू स्टेट्स ऑव् राजपूताना' के पृष्ठ ४७ में लिखा है—'बीकानेर राज्य की टकसाल में पहले कभी सोने का सिक्का नहीं बना', जो भ्रम ही है। उसके पास जिस पुरुष ने बीकानेर राज्य के चांदी के सिक्के भेजे उसको सोने की मुहरें नहीं मिलीं इसलिए उक्त कप्तान ने सोने के सिक्के न होने की बात लिख दी। यह भी निश्चित है कि उस (वेब) ने बीकानेर जाकर सिक्कों की छानबीन नहीं की, किन्तु रायबहादुर सोढी हुकुमसिंह लिखित वृत्तांत के आधार पर (जिसको उस समय ये मुहरें प्राप्त नहीं हुई थीं) बीकानेर में सोने की मुहरें न बनने का हाल लिख दिया, किन्तु ख़ास उसी कप्तान वेब के पुत्र ए० डबल्यू० टी० वेब की सीकर से भेजी हुई दो सोने की मुहरों एवं बीकानेर के तोशाख़ाने से प्राप्त मुहरों के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वहां सोने की मुहरें बनती थीं।

(२) यह मुहर आकृति में उक्त महाराजा के चांदी के सिक्कों से कुछ छोटी है, परन्तु एक तरफ़ के छोटे दायरे के अन्दर का लेख 'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान क्वीन विक्टोरिया' ऐसे सुन्दर अक्षरों में है कि उसको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है।

राज्य के खज़ाने में ऐसी मुहरें बहुत थीं, परंतु ऐसा सुना जाता है कि वर्तमान महाराजा साहब की बाल्यावस्था के समय रीजेन्सी कौंसिल के शासन में उन्हें गलवाकर सोना बनवा दिया गया।

साधारण रुपयों के साथ-साथ यहां 'नज़र' के लिए रुपये अलग बनाये जाते थे। इस राज्य के चांदी के सिक्के राजपूताने के अच्छे सिक्कों में गिने जाते हैं। 'नज़र' के सिक्के अधिक सुन्दर और पूरे वज़न के होते थे तथा आकार में बड़े होने के कारण उनपर ठप्पा पूरा आ जाता था। अन्य सिक्कों के सम्बन्ध में इतनी सावधानी नहीं रक्खी जाती थी और आकार में कुछ छोटे होने के कारण उनपर कभी-कभी पूरा ठप्पा भी नहीं आता था। पहले तो केवल रुपया ही चांदी का बनता था, परन्तु महाराजा सरदारसिंह और डूंगरसिंह के समय में अठन्नी, चवन्नी और दुअन्नी भी चांदी की बनने लगीं।

महाराजा गजसिंह के समय के नज़र के रुपयों के एक ओर 'सिक्कह मुबारक साहब किरां सानी शाह आलम बादशाह ग़ाज़ी' और दूसरी ओर 'सन् ११२१ जुलूस मैमनत मानूस' लेख फ़ारसी में है। साधारण सिक्कों पर एक ओर केवल 'सिक्का मुबारक बादशाह ग़ाज़ी आलमशाह' और दूसरी ओर 'सन् जुलूस मैमनत मानूस' लिखा मिलता है। उस(गजसिंह)का चिह्न पताका था, पर किसी-किसी सिक्के में त्रिशूल भी मिलता है। महाराजा सूरतसिंह के सिक्कों पर भी क्रमशः ऊपर जैसे ही लेख मिलते हैं। उसका चिह्न त्रिशूल था परंतु किसी-किसी सिक्के पर पताका का चिह्न भी मिलता है। महाराजा रत्नसिंह का चिह्न किरणिया था, लेकिन उसके सिक्कों पर ऊपर जैसा ही लेख और कभी-कभी किरणिया के साथ झंडे का चिह्न भी मिलता है। महाराजा सरदारसिंह के सिपाही-विद्रोह से पहले के सिक्कों पर एक ओर केवल 'मुबारक बादशाह ग़ाज़ी आलम' और सन् तथा दूसरी ओर पूर्व जैसा ही लेख है। यहां यह कह देना आवश्यक है कि ग़दर के पूर्व के सभी सिक्कों पर हि० स० तथा बादशाहों के जुलूसी सनों (राज्यवर्षों) के अंक अस्पष्ट या ग़लत लगे हैं। उसके ग़दर के बाद के सिक्कों पर एक तरफ़

'औरंग आराय हिन्द व इंग्लिस्तान क्वीन विक्टोरिया १८५६' तथा दूसरी तरफ़ 'ज़र्ब श्री बीकानेर १६१६' लेख फ़ारसी लिपि में हैं। उसका चिह्न छत्र था, पर उसके सिक्कों पर ध्वजा, त्रिशूल, छत्र और किरणिया के चिह्न एक साथ भी मिलते हैं। महाराजा डूंगरसिंह के सिक्कों पर भी महाराजा सरदारसिंह के सिक्कों जैसे ही लेख हैं। उसका चिह्न चँवर था, पर उसके सिक्कों पर उपर्युक्त सभी चिह्न अंकित मिलते हैं। महाराजा गंगासिंहजी के पहले के सिक्कों पर भी वही लेख है, जो महाराजा डूंगरसिंह के सिक्कों पर था, परन्तु उनपर उनका एक चिह्न मोरछल अधिक मिलता है। ई० स० १८६३ में अंग्रेज़ सरकार के साथ बीकानेर राज्य का अंग्रेज़ी टकसाल से रुपये बनवाने के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार अंग्रेज़ी राज्य में प्रचलित रुपयों जैसे रुपये ही बीकानेर राज्य के लिए भी बने, जिनके एक तरफ़ सम्राज्ञी विक्टोरिया का चेहरा और अंग्रेज़ी अक्षरों में 'विक्टोरिया एम्प्रेस' तथा दूसरी तरफ़ बीच में ऊपर नीचे क्रमशः नागरी और उर्दू लिपि में 'महाराजा गंगासिंह बहादुर' लिखा है। उर्दू लिपि में सन् विशेष दिया है। किनारे के पास ऊपर 'वन रुपी' (*One Rupee*) और नीचे 'बीकानेर स्टेट' अंग्रेज़ी में है तथा मध्य में दोनों ओर किनारों के निकट एक-एक मोरछल भी बना है। ई० स० १८६५ में तांबे के सिक्के—पाव आना और आधा पैसा (अधेला)—अंग्रेज़ी राज्य के जैसे ही बीकानेर राज्य के लिए भी बने, परन्तु उनमें दूसरी तरफ़ किनारे पर 'बीकानेर स्टेट' अंग्रेज़ी में है और मध्य में दोनों ओर किनारे पर एक-एक मोरछल बना है। ये सिक्के भी अंग्रेज़ी सिक्कों के साथ ही चलते रहे, पर अब इनका बनना बंद हो गया है और यहां अंग्रेज़ी सिक्कों (कलदार) का ही चलन है।

इस राज्य को अंग्रेज़-सरकार की तरफ़ से १७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। महाराजा साहब की ज़ाती और स्थानीय तोपों की सलामी की संख्या १६ है। ये सम्मान वर्तमान महाराजा साहब को क्रमशः ई० स० १६१८ और

तोपों की सलामी

१६२१ (वि० सं० १६७५ और १६७८) के आरंभ में प्राप्त हुए थे।

इस राज्य में प्राचीन एवं प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है—

प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान

बीकानेर—राज्य का मुख्य नगर 'बीकानेर' राज्य के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में कुछ ऊंची भूमि पर समुद्र की सतह से ७३६ फ़ुट की ऊंचाई पर बसा हुआ है। किसी किसी स्थान से देखने पर यह नगर बहुत भव्य और विशाल दिखलाई पड़ता है। मॉनस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन के साथियों को, जो ई० स० १८०८ (वि० सं० १८६५) में बीकानेर आये थे, इस नगर को देखकर यह निर्णय करना कठिन हो गया था कि दिल्ली और बीकानेर में कौन अधिक विस्तृत है। नगर के चारों ओर शहरपनाह है, जो घेरे में साढ़े-चार मील है और पत्थर की बनी है। इसकी चौड़ाई ६ फ़ुट और ऊंचाई अधिक से अधिक तीस फ़ुट है। इसमें पांच दरवाज़े हैं, जिनके नाम क्रमशः कोट, जस्सूसर, नत्थूसर, सीतला और गोगा हैं तथा आठ खिड़कियां भी बनी हैं। शहर-पनाह का उत्तरी भाग वि० सं० १६५६ (ई० स० १८६६-१६००) में वर्तमान महाराजा साहब ने नया बनवा दिया है।

यह नगर आबादी की दृष्टि से राजपूताने में चौथा गिना जाता है और पुराने ढंग का बसा हुआ है। ई० स० १६३१ (वि० सं० १६८७) की मनुष्य-गणना के अनुसार यहां की आबादी ८५६२७ थी। नगर के भीतर बहुत सी भव्य इमारतें हैं, जो बहुधा लाल पत्थर की बनी हैं तथा उनपर खुदाई का उत्कृष्ट काम है। नगर के मध्य में एक जैन मंदिर है, जिसके निकट से पांच मार्ग निकले हैं, जो अन्य सड़कों से मिलते हुए शहरपनाह के किसी एक दरवाज़े से जा मिलते हैं। कोट दरवाज़े के बाहर अलखगिरि मतानुयायी लच्छीराम का बनवाया हुआ 'अलखसागर' नाम का प्रसिद्ध कुआं है, जो बीकानेर के सब कुओं में अच्छा गिना जाता है। अन्य कुओं की संख्या १४ है, जो बहुधा बहुत गहरे हैं। उनमें से अधिकांश का जल बड़ा सुस्वादु और पीने के योग्य है। महाराजा अनूपसिंह का बनवाया हुआ 'अनोपसागर' (चौतीना) कुआं भी उल्लेखनीय है। नगर

कोट-दरवाज़ा, बीकानेर
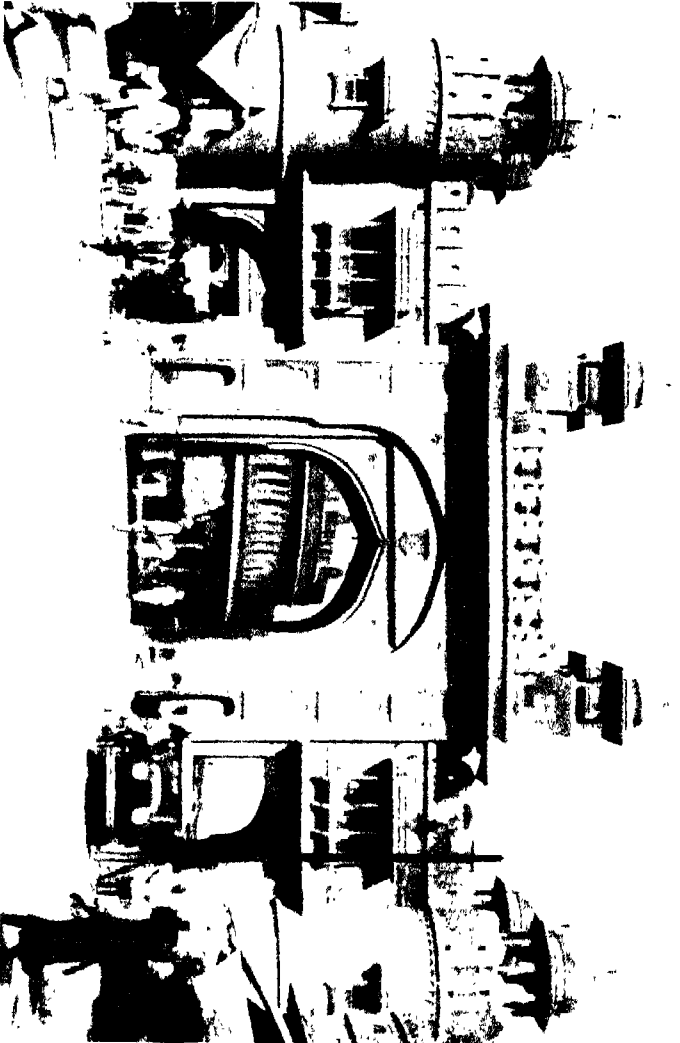
लक्ष्मीनारायणजी का मन्दिर, बीकानेर

के बाहर के तालाबों में महाराजा सूरसिंह का बनवाया हुआ 'सूरसागर' (पुराने क़िले के निकट) सब से अच्छा माना जाता है और उसमें छः सात मास तक जल भरा रहता है।

यहां के जैन मंदिरों में भांडासर का मंदिर बहुत प्राचीन गिना जाता है। कहते हैं कि इसे भांडा नाम के एक ओसवाल महाजन ने वि० सं० १४६८ (ई० स० १४११) के लगभग बनवाया था। यह बहुत ऊंचा है, जिससे इसके ऊपर चढ़ जाने से सारे नगर का दृश्य बड़ा मनोहर दीख पड़ता है। इसके बाद नेमीनाथ के मंदिर का नाम लिया जाता है, जो भांडा के भाई का बनवाया हुआ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त और भी कई जैन मंदिर हैं, पर वे उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। यहां के जैन उपासरों में संस्कृत आदि की प्राचीन पुस्तकों का बड़ा अच्छा संग्रह है, जो अधिकतर जैन धर्म से संबंध रखती हैं।

वैष्णव मंदिरों में लक्ष्मीनारायणजी का मंदिर प्रमुख गिना जाता है, जो राव लूणकर्ण ने बनवाया था। वर्तमान महाराजा साहब ने इस मंदिर के पास सर्व साधारण के उपयोग के लिए सुंदर उद्यान लगवा दिया है। इसके अतिरिक्त वल्लभ-मतानुयायियों के रतनबिहारी और रसिकशिरोमणि के मंदिर भी उल्लेखनीय हैं। यहां भी महाराजा साहब ने सुंदर बगीचे बनवा दिये हैं। रतनबिहारी का मंदिर महाराजा रत्नसिंह के राज्य-समय में बना था। धूनीनाथ का मन्दिर इसी नाम के योगी ने ई० स० १८०८ (वि० स० १८६५) में बनवाया था, जो नगर के पूर्वी द्वार के पास स्थित है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और गणेश की मूर्तियां स्थापित हैं। नगर से एक मील दक्षिण-पूर्व में एक टीले पर नागणेची का मंदिर बना हुआ है। अपनी मृत्यु से पूर्व ही महिषासुरमर्दिनी की यह अट्ठारह भुजावाली मूर्ति राव बीका ने जोधपुर से यहां लाकर स्थापित की थी।

नगर में कई मस्जिदें भी हैं, पर वे कारीगरी की दृष्टि से कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं।

नगर बसाने के तीन वर्ष पूर्व बनवाया हुआ राव बीका का प्राचीन क़िला शहरपनाह के भीतर दक्षिण-पश्चिम में एक ऊंची चट्टान पर विद्यमान है। इसके पास ही बाहर की तरफ़ राव बीका, नरा और लूणकरण की स्मारक छत्रियां हैं। राव बीका की छत्री पहले लाल पत्थर की बनी हुई थी, परन्तु पीछे से संगमर्मर की बना दी गई है।

बड़ा किला अधिक नवीन है। यह महाराजा रायसिंह के समय बना था और शहरपनाह के कोट दरवाज़े से लगभग तीन सौ गज़ की दूरी पर है। इसकी परिधि १०७८ गज़ है। भीतर प्रवेश करने के लिए दो प्रधान द्वार हैं, जिनके बाद फिर तीन या चार दरवाज़े हैं। कोट में स्थान-स्थान पर प्रायः चालीस फ़ुट ऊंची बुर्जे हैं और चारों ओर खाई बनी हुई है, जो ऊपर तीस फ़ुट चौड़ी होकर नीचे तंग होती गई है। इस खाई की गहराई बीस से पचीस फ़ुट तक है। प्रसिद्ध है कि इस क़िले पर कई बार आक्रमण हुए, पर शत्रु बलपूर्वक इसपर कभी अधिकार न कर सके।

क़िले का प्रवेश-द्वार 'कर्णपोल' है। उसके आगे के दरवाज़ों में एक सूरजपोल है, जिसके दोनों पार्श्वों पर विशालकाय हाथी पर बैठी हुई दो मूर्तियां हैं, जो प्रसिद्ध वीर जयमल मेड़तिया (राठोड़) और पत्ता चूंडावत (सीसोदिया) की (जो चित्तोड़ में बादशाह अकबर के मुक़ाबले में वीरतापूर्वक लड़कर मारे गये थे) बतलाई जाती हैं। आगे बहुत बड़ा चौक है, जिसमें एक तरफ़ पंक्तिबद्ध मरदाने और ज़नाने महल हैं, जो बड़े भव्य और सुदृढ़ बने हुए हैं। इन महलों के भीतर कई जगह कांच की पच्चीकारी और सुनहरी क़लम आदि का बहुत सुन्दर काम है, जो भारतीय कला का उत्तम नमूना है। इन राजमहलों की दीवारों पर रंगीन पलस्तर किया हुआ है, जिससे उनका सौन्दर्य बढ़ गया है। राज-महलों के निर्माण में बहुधा अब तक के प्रायः सभी महाराजाओं का हाथ रहा है। पहले के राजाओं के बनवाये हुए स्थानों में महाराजा रायसिंह

बीकानेर का क़िला और सूरसागर

अनूपमहल, बीकानेर
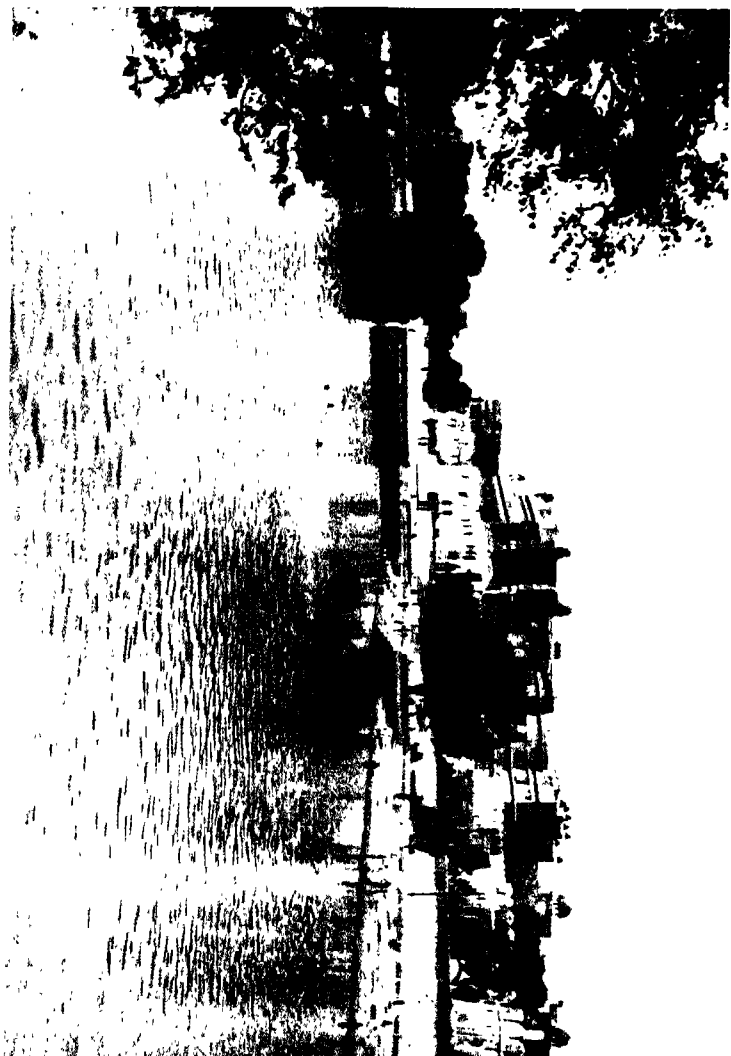
का चौबारा; महाराजा गजसिंह के फूलमहल, चंद्रमहल, गजमंदिर तथा कचहरी; महाराजा सूरतसिंह का अनूपमहल; महाराजा सरदारसिंह का बनवाया हुआ रतननिवास (रत्नमंदिर) और महाराजा डूंगरसिंह के छत्रमहल, चीनी बुर्ज (बुर्ज), गनपतनिवास, लालनिवास, सरदारनिवास, गंगानिवास, सोहन बुर्ज, सुनहरी बुर्ज तथा कोठी शक्तनिवास हैं। वर्तमान महाराजा साहब ने समय-समय पर इन राजमहलों में कई नवीन भवन बनवाकर उनकी शोभा बढ़ा दी है, जिनमें दलेलनिवास और गंगानिवास नामक विशाल हॉल मुख्य हैं। गंगानिवास में लाल रंग के खुदाई के काम के पत्थर लगे हैं। छत की लकड़ी पर भी खुदाई का काम है और फ़र्श संगमर्मर का बना है। क़िले के भीतर फ़ारसी, संस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी भाषा की हस्तलिखित पुस्तकों का एक बड़ा पुस्तकालय है। इस पुस्तकालय में संस्कृत पुस्तकों का बड़ा भारी संग्रह है, जिनमें से कई तो ऐसी हैं जो अन्यत्र मिल ही नहीं सकतीं। इनमें से अधिकांश की विस्तृत सूची डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने ई० स० १८८० (वि० सं० १९३७) में एक बड़ी जिल्द के रूप में प्रकाशित की थी। मेवाड़ के महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के संगीत-ग्रन्थों का पूरा संग्रह भारतवर्ष में केवल इसी पुस्तकालय में है। क़िले के भीतर का शस्त्रागार भी देखने योग्य है, जहां प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों का अच्छा संग्रह है। वहीं एक कमरे में कई पीतल की मूर्तियां रक्खी हुई हैं, जो तैंतीस करोड़ देवता के नाम से पूजी जाती हैं। ये मूर्तियां महाराजा अनूपसिंह ने दक्षिण में रहते समय मुसलमानों के हाथ से बचाकर यहां पहुंचाई थीं।

क़िले के एक हिस्से में बीकानेर राज्य के उत्तरी भाग के रंगमहल, बड़ोपल आदि गांवों से प्राप्त पकी हुई मिट्टी की बनी बहुत प्राचीन वस्तुओं का बड़ा संग्रह है, जिसका श्रेय स्वर्गवासी डॉक्टर टैसिटोरी को है। इस सामग्री को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) खुदाई के काम की ईंटें तथा पकी हुई मिट्टी के

बने हुए स्तम्भ आदि और (२) पकी हुई मिट्टी की सादी तथा उभरी हुई मूर्तियां आदि। खुदाई के काम की ईंटों में हड़जोरा (Acanthus) की बहुत ही सुन्दर पत्तियां बनी हैं। इसके अतिरिक्त उनपर मथुरा शैली और किसी-किसी पर गांधार शैली की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है। इनमें से एक में बैठे हुए दो बैलों की आकृतियां बनी हैं तथा दूसरे में एक राक्षस का सिर हड़जोरा की पत्तियों के मध्य में बना है। इण्डोपर्सिपोलिटन शैली के शिरस्तम्भों में हाथी एवं गरुड़ तथा सिंह की सम्मिलित आकृतियां बनी हैं। पकी हुई मिट्टी के स्तंभों के सिरे बनावट से बहुत प्राचीन जान पड़ते हैं और उनमें तथा अन्य आकृतियों में मथुरा शैली का अनुकरण पाया जाता है। इनमें कुछ वैष्णव मूर्तियों का भी संग्रह है। महिषासुरमर्दिनी की चार भुजावाली मूर्ति के अतिरिक्त विष्णु के वामनावतार और रुद्र की अजेकपाद की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। उभरी हुई खुदाई के काम की मूर्तियों में कृष्ण की गोवर्धन लीला, नाग लीला और राधा-कृष्ण की मूर्तियां भी महत्वपूर्ण हैं, जिनको वर्त्तमान महाराजा साहब ने एक नवीन भवन (म्यूज़ियम्) बनवाकर वहां रखने की व्यवस्था कर दी है।

क़िले के भीतर एक घंटाघर, दो बगीचे और चार कुएं हैं, जो प्रायः ३६० फ़ुट गहरे हैं। इनमें से एक का जल बीकानेर में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

क़िले की कर्णपोल के सामने सूरसागर के निकट विशाल और मनोहर गंगानिवास पब्लिक पार्क (उद्यान) है। इस उद्यान का उद्घाटन तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज के हाथ से ई० स० १९१५ (वि० सं० १९७२) के नवम्बर मास में हुआ था। इसके प्रधान प्रवेशद्वार का नाम 'क्वीन एम्प्रेस मेरी गेट' है। क़िले के सामने पार्क के एक किनारे पर महाराजा डूंगरसिंह की संगमर्मर की मूर्ति लगी है, जिसके ऊपर संगमर्मर का शिखर बना हुआ है। इसी उद्यान में एक तरफ़ वर्त्तमान महाराजा साहब के शिक्षक मि० एजर्टन के नाम पर 'एजर्टन टैंक' बना
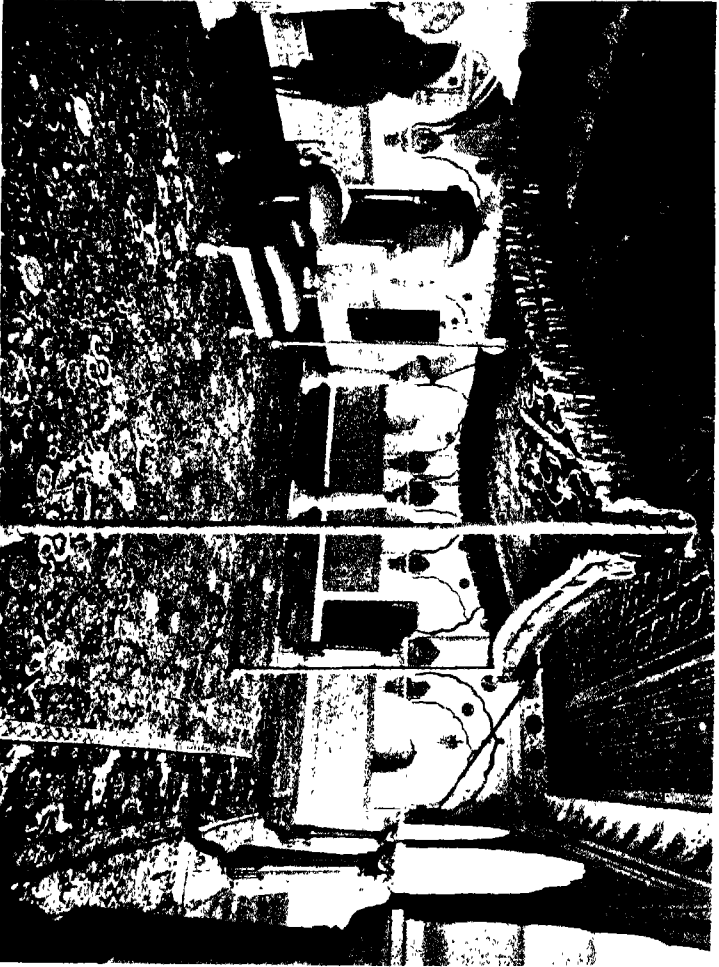
कर्णमहल, बीकानेर
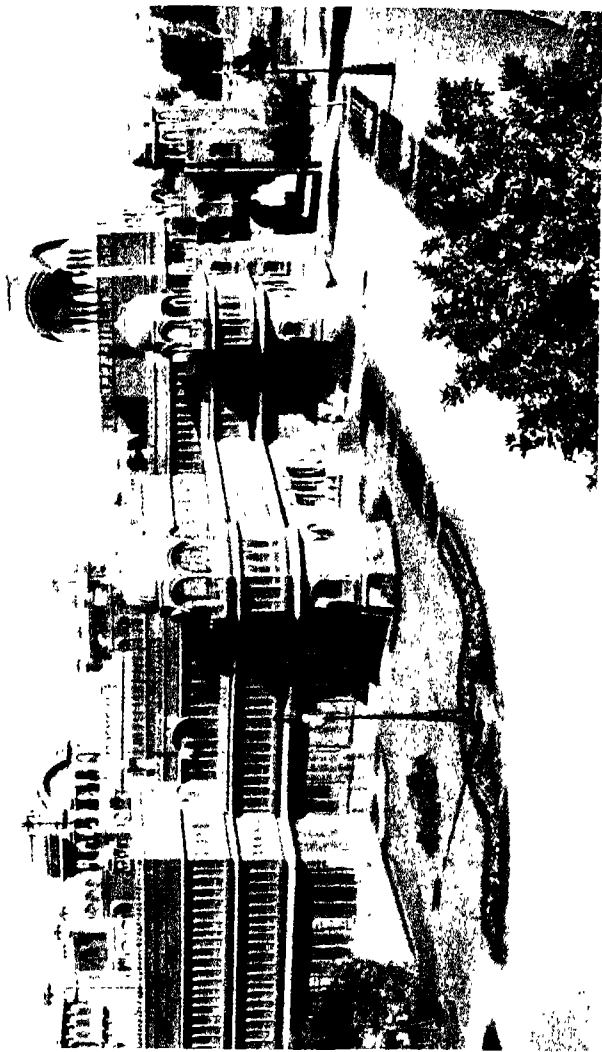
लालगढ़ महल

है। निकट ही महाराजा साहब की अश्वारूढ़ कांसे की मूर्ति (Bronze Statue) भी लगी है।

नगर के बाहर की इमारतों में लालगढ़ नामक महल बड़ा भव्य है। यह महल महाराजा साहब ने अपने पिता महाराज लालसिंह की स्मृति में बनवाया है। सारा का सारा महल लालपत्थर का बना है, जिसपर खुदाई का बड़ा उत्कृष्ट काम है। भीतर के फ़र्श बहुधा संगमर्मर के हैं। महल इतना विशाल है कि यदि कई रईस एक साथ आवें, तो सब बड़े आराम से रह सकते हैं। महल के आहाते में मनोहर उद्यान बने हैं, जिनमें कहीं सघन वृक्षों, कहीं लताकुंजों और कहीं रंग-बिरंगे फूलों से भरी हुई हरियाली की छटा दर्शनीय है। इस (महल) के सामने महाराज लालसिंह की सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति (Statue) खड़ी है। महल के एक भाग में तैरने का स्थान (Swimming Bath) बना है तथा भीतर बाहर सर्वत्र बिजली की रोशनी लगी है।

इसके बाद विक्टोरिया मेमोरियल क्लब का उल्लेख किया जा सकता है। यह क्लब जनता के चन्दे से बना है और इसमें भांति-भांति के खेलों की व्यवस्था के अतिरिक्त तैरने का स्थान (Swimming Bath) भी बना हुआ है।

यहां का बिजली का कारख़ाना बहुत बड़ा है, जहां से नगर के अतिरिक्त राज्य के कई दूरस्थ स्थानों में भी रोशनी पहुंचाने का उत्तम प्रबन्ध है। रेल्वे का कारख़ाना भी यहां बहुत बड़ा है जहां अब रेल्वे के काम की बहुधा सब वस्तुएं बनने लगी हैं। यहां राज्य की तरफ़ से एक बड़ा छापाख़ाना भी है।

नगर में धर्मशालाएं और लोकोपकारी कई संस्थाएं हैं। अब राज्य की ओर से यहां अपंग-आश्रम, अनाथालय और व्यायामशाला भी बना दी गई है एवं एक बड़ा पुस्तकालय भी बनाया जा रहा है, जिससे भविष्य में बीकानेर के निवासियों को बहुत लाभ होगा। कला-कौशल की वृद्धि की तरफ़ राज्य का पूरा ध्यान है। यहां के जेल में गलीचे, दरियें, आसन,

लोइयां आदि सामान बड़ा सुन्दर और टिकाऊ बनता है। ग्लास फ़ैक्टरी भी यहां स्थापित हुई, परन्तु इन दिनों उसका कार्य बंद है।

नगर के पांच मील पूर्व में देवीकुंड है, जहां बीकानेर के महाराजा और राजपरिवार के लोगों की दग्ध क्रिया की जाती है। यहां राव कल्याणसिंह से लगाकर महाराजा डूंगरसिंह तक के राजाओं तथा उनकी राणियों और कुंवरों आदि की स्मारक छत्रियां बनी हैं, जिनमें से कुछ तो बड़ी सुन्दर हैं। पहले के राजाओं आदि की छत्रियां दुलमेरा से लाये हुए लाल पत्थरों की बनी हैं, जिनके बीच में लगे हुए मकराना के संगमर्मर पर लेख खुदे हैं, लेकिन पीछे की छत्रियां पूरी संगमर्मर की बनी हैं। कुछ छत्रियों के मध्य में खड़ी हुई शिलाओं पर अश्वारूढ़ राजाओं की मूर्तियां खुदी हैं, जिनके आगे कतार में क्रमानुसार उनके साथ सती होनेवाली राणियों की आकृतियां बनी हैं। नीचे गद्य तथा पद्य में उनकी प्रशंसा के लेख खुदे हैं, जिनसे उनके कुछ-कुछ हाल के अतिरिक्त उनके स्वर्गवास का निश्चित समय ज्ञात होता है। महाराजा राजसिंह की छत्री उल्लेखयोग्य है, क्योंकि उसमें उसके साथ जल-मरनेवाले संग्रामसिंह नामक एक व्यक्ति का उल्लेख है। इस स्थान पर सती होनेवाली अंतिम महिला का नाम दीपकुंवरी था, जो महाराजा सूरतसिंह के दूसरे पुत्र मोतीसिंह की स्त्री थी और अपने पति की मृत्यु पर वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५) में सती हुई थी। उसकी स्मृति में अब भी प्रति वर्ष भादों के महीने में यहां मेला लगता है। उसके बाद और कोई महिला सती नहीं हुई, क्योंकि सरकार के प्रयत्न से यह प्रथा उठ गई। राजपरिवार के लोगों के ठहरने के लिए तालाब के निकट ही एक उद्यान और कुछ महल बने हुए हैं।

देवीकुंड और नगर के मध्य में, मुख्य सड़क के कुछ दक्षिण में महाराजा डूंगरसिंह का बनवाया हुआ शिव मंदिर है। इसके निकट ही एक तालाब, उद्यान और महल हैं। इस मंदिर का शिवलिंग ठीक मेवाड़ के प्रसिद्ध एकलिंगजी की मूर्ति के सदृश है। यहां प्रति वर्ष श्रावण मास में भारी मेला लगता है। इस स्थान को शिवबाड़ी कहते हैं।

नाल—बीकानेर से ८ मील पश्चिम में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के निकट यह गांव है। इसके चारों ओर झाड़ियों और वृक्षों से आच्छादित सात-आठ छोटे-छोटे तालाब हैं। इनमें से एक तालाब के किनारे, जिसे केशोलाय कहते हैं, एक लाल पत्थर का कीर्तिस्तंभ लगा है, जो वि० सं० की १७ वीं शताब्दी का जान पड़ता है। इसके लेख से पाया जाता है कि यह तालाब प्रतिहार केशव ने बनवाया था। दूसरा उल्लेखनीय लेख यहां के बाघोड़ा जागीरदार के निवासस्थान के द्वार पर लगा है, जो वि० सं० १७६२ ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० १७०५ ता० ६ मई) रविवार का है। इससे उक्त वंश के इन्द्रभाण की मृत्यु तथा उसकी स्त्री अमृतदे के सती होने का पता चलता है।

नाल से दो मील दक्षिण में एक स्थान है, जिसे नाल का कुआं कहते हैं। यहां सात लेख हैं, जिनमें से छः तो वि० सं० की १६ वीं शताब्दी के और एक १७ वीं शताब्दी का है। उल्लेखनीय स्थलों में यहां के मंदिरों, दो कुओं और एक तालाब का नाम लिया जा सकता है। मंदिर सब एक ही स्थान में एक दीवार से घिरे हुए हैं, जिनमें पार्श्वनाथ और दादूजी के मन्दिर उल्लेखयोग्य हैं। दोनों लाल पत्थर के और सम्भवतः वि० सं० की १७ वीं शताब्दी के बने हैं। पार्श्वनाथ के मंदिर की मूर्ति संगमर्मर की है, जिसके नीचे एक लेख खुदा है, जो पूरा-पूरा पढ़ा नहीं जाता। इसके सामने जैसलमेर के पीले पत्थर की बनी हुई दो देवलियां हैं, जिनमें से एक पर अश्वारूढ़ व्यक्ति और सती की आकृति बनी है तथा वि० सं० १६०३ फाल्गुन वदि १ (ई० स० १५४७ ता० ५ फ़रवरी) का टूटा-फूटा लेख है। इससे कुछ दूर चार-दीवारी के पास एक सादे लाल पत्थर का कीर्तिस्तम्भ लगा है। इसपर वि० सं० १६८१ माघ सुदि १२ (ई० स० १६२५ ता० १० जनवरी) सोमवार का एक लेख है, जिससे पाया जाता है कि उस दिन महाराजा सूरसिंह के राज्यकाल में सूत्रधार देदा नींबावत ने यहां एक छत्री बनवाई थी। अब यह कीर्तिस्तम्भ वहां से हटा दिया गया है। दादूजी का मन्दिर साधारण है।

दोनों कुएं पास-पास बने हैं और प्रत्येक के पास एक-एक कीर्त्तिस्तम्भ लगा है। अधिक प्राचीन कुएं के पास का कीर्त्तिस्तम्भ जैसलमेर के पीले पत्थर का है, जिसके चारों तरफ़ अर्थात् पश्चिम की ओर गणेश, उत्तर की ओर माता, दक्षिण की ओर सूर्य और पूर्व की ओर किसी देवता (शिव) की अस्पष्ट मूर्ति बनी है। इसके लेख से पाया जाता है कि यह कुआं महाराजा रायसिंह के राजत्वकाल में वि० सं० १६५० फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १५६४ ता० २१ फ़रवरी) गुरुवार को बनकर संपूर्ण हुआ था। कुएं की दूसरी तरफ़ दुहरी छत्री बनी है, जिसपर कोई लेख नहीं है। दूसरे कुएं का कीर्त्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है, जिसके लेख से पाया जाता है कि उसे गोपाल के पुत्र इन्द्रभाण और उसकी स्त्रियों ने वि० सं० १७५६ ज्येष्ठ सुदि ८ (ई० स० १६६६ ता० २६ मई) शुक्रवार को बनवाकर सम्पूर्ण किया था। यह इन्द्रभाण वाघोड़ा वंश का था, जो सोनगरे चौहानों की एक शाखा है और जिसके पास अब तक नाल का इलाक़ा जागीर में है। कुओं से थोड़ी दूर उत्तर में दो और देवलियां हैं, जो एक ऊंचे चबूतरे पर बनी हैं और पीले पत्थर की हैं। इनमें से एक पर वि० सं० १६५४ पौष सुदि १२ (ई० स० १५६८ ता० ६ जनवरी) और दूसरी पर वि० सं० १६६७ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १६११ ता० २७ जनवरी) का लेख है। प्राचीन तालाब के पास एक छत्री बनी है, परन्तु उसपर कोई लेख नहीं है। उसके निकट का कीर्त्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है और उसपर वि० सं० १६५६ वैशाख वदि २ (ई० स० १६०२ ता० २६ मार्च) का लेख है, जिससे उसके निर्माण-काल का पता चलता है।

कोड़मदेसर—बीकानेर से १५ मील पश्चिम में यह एक छोटा सा गांव है, जो इसी नाम के तालाब और उसके किनारे पर स्थापित भैरव की मूर्ति के लिए प्रसिद्ध है। यह भैरव की मूर्ति जांगलू में बसने के समय स्वयं राव बीका ने मंडोर से लाकर यहां स्थापित की थी।

यहां पर वि० सं० १५१६ से १६३० तक के चार लेख हैं। इनमें से सब से प्राचीन लेख तालाब के पूर्व की ओर भैरव की मूर्ति के निकट के कीर्त्तिस्तम्भ की दो ओर खुदा है। यह कीर्त्तिस्तम्भ लाल पत्थर का है

कोड़मदेसर
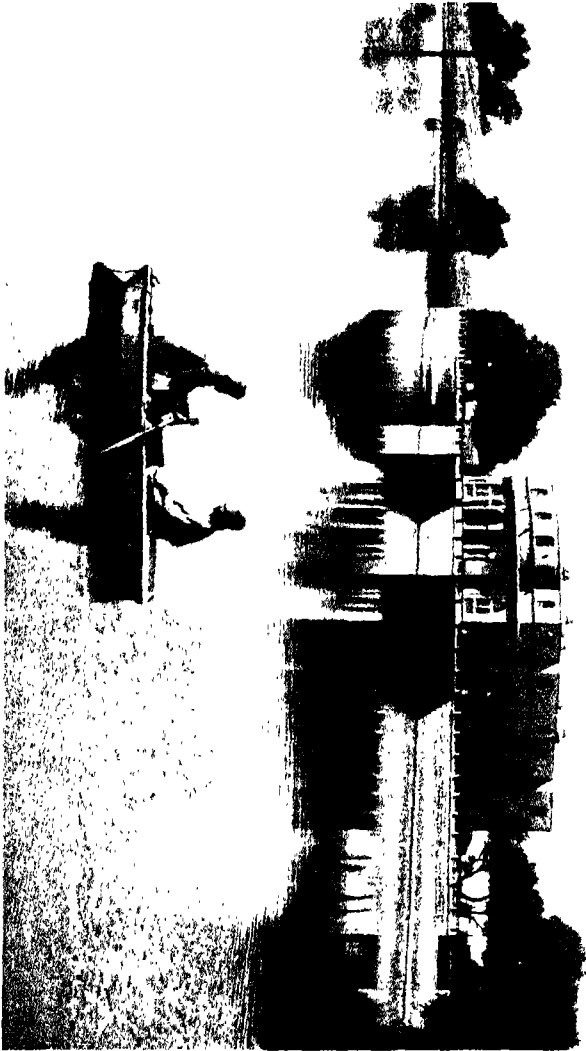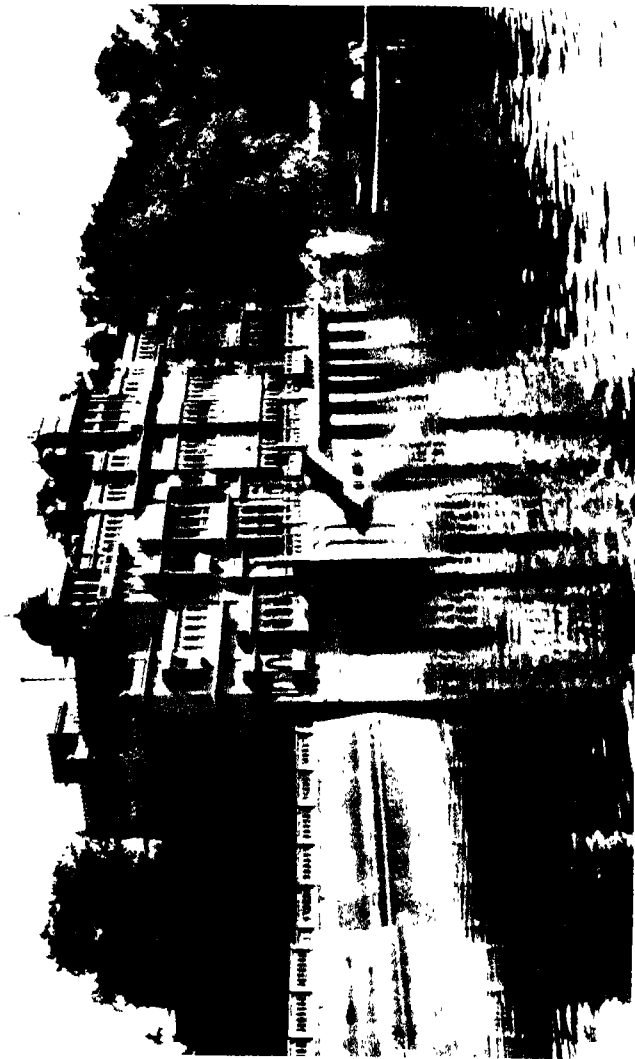
डूंगरनिवास महल-गजनेर

और इसकी चारों ओर देवी-देवताओं की मूर्तियां खुदी हैं। इसके लेख से पाया जाता कि वि० सं० १५१६ (शक सं० १३८१=ई० स० १४५६) भाद्रपद सुदि.........सोमवार को राव रिणमल के पुत्र राव जोधा ने यह तालाब खुदवाया और अपनी माता कोड़मदे के निमित्त कीर्तिस्तंभ स्थापित करवाया। शेष तीनों लेखों में से सब से पुराना वि० सं० १५२६ माघ सुदि ५ (ई० स० १४७३ ता० ३ जनवरी) का है, जिसमें साह रूदा के पुत्र साह कया की मृत्यु होने और उसके साथ उसकी स्त्री के सती होने का उल्लेख है। दूसरा लेख एक देवली पर वि० सं० १५४२ भाद्रपद सुदि ७ (ई० स० १४८५ ता० १७ अगस्त) सोमवार का है, जिसमें एक राठोड़ राजपूत की मृत्यु का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० सं० १६३० भाद्रपद वदि १३ (ई० स० १५७३ ता० २५ अगस्त) मंगलवार का तालाब के किनारे पीले रंग की देवली पर है। इसमें संघराव जीवा की मृत्यु और उसके साथ राठोड़ वंश की उसकी स्त्री रुपाई के सती होने का उल्लेख है।

गजनेर—यह बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण-पश्चिम में बसा है। यह महाराजा गजसिंह के समय आबाद हुआ था और बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध तालाब गजनेर के नाम पर ही इसकी प्रसिद्धि है। यहां पर डूंगर-निवास, लालनिवास, शक्तनिवास, गुलाबनिवास और सरदारनिवास नामक सुन्दर महल हैं। वर्तमान महाराजा साहब के प्रयत्न से यहां का सौन्दर्य्य बहुत बढ़ गया है और पुराने महलों में परिवर्तन भी हो गया है। यहां सर्वत्र बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। शीतकाल में बतखों, भड़तीतरों आदि के आ जाने पर कुछ दिनों के लिए यह स्थान उत्तम शिकारगाह बन जाता है। गजनेर के उद्यान में नारंगी और अनार के वृक्ष बहुतायत से हैं तथा कई प्रकार की सुन्दर लताएं आदि भी हैं। तालाब का जल आरोग्यप्रद न होने से लोग उसका व्यवहार कम ही करते हैं। ई० स० १६३३ के अगस्त (वि० सं० १६६०, भाद्रपद) में यहां केवल एक दिन में ही १२ इंच वर्षा हुई, जिससे कई मकानों में पानी भर गया और सरदारनिवास में साढ़े चार फ़ुट पानी चढ़ गया। इस वर्षा से यहां बड़ी क्षति हुई और कितने ही

मकान गिर गये। गत वर्ष ई० स० १९३९ के अगस्त मास की तारीख ११-१३ (वि० सं० १९९३ प्रथम भाद्रपद वदि ९-११) तक तीन दिन लगातार ६० घंटों में १४ इंच वर्षा हुई, जिससे भी यहां के बहुत से कच्चे मकान गिर गये।

श्रीकोलायतजी—यह बीकानेर से करीब ३० मील दक्षिण-पश्चिम में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के निकट बसा है। यहां इसी नाम से प्रसिद्ध एक तालाब भी है, जिसके किनारे कपिल मुनि का आश्रम माना जाता है। प्रति वर्ष कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को यहां मेला लगता है, जिसमें नेपाल आदि बड़ी दूर-दूर से लोग कपिल मुनि के आश्रम के दर्शनार्थ आते हैं। पास ही धूनीनाथ का बनवाया एक अन्य मंदिर है। पुष्कर के समान यहां के तालाब के किनारे बहुत से घाट और मंदिर बने हैं, जो सघन पीपल के वृक्षों की शीतल छाया से आच्छादित हैं। यहां राज्य की ओर से एक अन्न-क्षेत्र स्थापित है तथा कई महाजनों आदि की बनवाई हुई धर्मशालाएं एवं देवमन्दिर भी विद्यमान हैं। ई० स० १९३३ के अगस्त (वि० सं० १९९०, भाद्रपद) मास में एक दिन में ही बहुत अधिक वर्षा (१२ इंच) होने से तालाब का पानी ऊपर तक भर गया और सारी ज़मीन जल-मग्न हो गई, जिससे यहां के अधिकांश मकान गिर गये।

श्रीकोलायतजी से क़रीब ५ मील दक्षिण में झझू नाम का गांव है। इन दोनों स्थानों के आस-पास पहले पल्लीवाल ब्राह्मणों की बस्ती थी, जिनकी वि० सं० १५०० से १८०० तक की देवलियां (स्मारक) यहां बनी हैं।

देशणोक—बीकानेर से १६ मील दक्षिण में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के पास बसा हुआ यह स्थान बीकानेर के महाराजाओं के लिए बड़ा पूज्य है। यहां पर राठोड़ों की पूज्य देवी करणीजी का मंदिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इस देश पर करणीजी की कृपा और सहायता से ही राठोड़ों का अधिकार स्थापित हुआ था। अब भी कहीं यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व महाराजा साहब यहां आकर करणीजी का दर्शन करते

करणीजी का मन्दिर, देशणोक
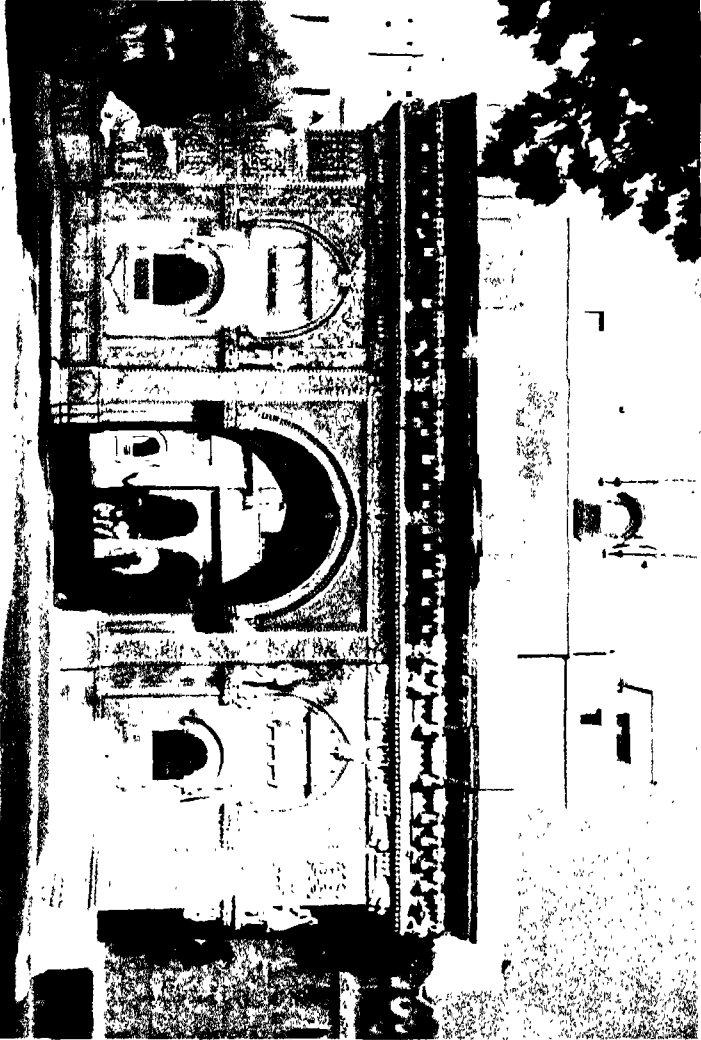
हैं। यहां पर चारणों की ही बस्ती अधिक है और वे ही करणीजी के पुजारी हैं। इस स्थान पर चूहों की बहुलता है जो करणीजी के काबे कहलाते हैं, पर उन्हें मारने या पकड़ने की मनाही है। इसके विपरीत लोग उन्हें भोजन आदि देने में पुण्य मानते हैं। मन्दिर के आसपास बड़ी-बड़ी झाड़ियां है, पर उन्हें भी कोई काट नहीं सकता। पहले ऐसा था कि राज्य का जो अपराधी यहां आकर शरण लेता था, वह जब तक यहां रहता, पकड़ा नहीं जाता था।

पलाणा—बीकानेर से १४ मील दक्षिण में इसी नाम के रेल्वे स्टेशन के पास बसा हुआ यह स्थान कोयले की खान के लिए प्रसिद्ध है। प्राचीनता की दृष्टि से यहां वि० सं० १५३६ (ई० स० १४८२) की एक देवली (स्मारक) उल्लेखनीय है, जिससे जांगल देश में प्रथम अधिकार करनेवाले राठोड़ों में से राव बीका के चाचा रिणमल के पुत्र मांडण की मृत्यु का पता चलता है।

वासी-बरसिंहसर—यह गांव बीकानेर से १५ मील दक्षिण में है। यहां पर एक कीर्त्तिस्तम्भ है, जिसपर पैंतीस पंक्तियों का एक महत्व-पूर्ण लेख है। इससे पाया जाता है कि जंगलकूप के स्वामी शंखुकुल (सांखला) के कुमारसिंह की पुत्री और जैसलमेर के राजा कर्ण की स्त्री दूलहदेवी ने यहां वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२४) में एक तालाब खुदवाया।

रासी(रायसी)सर—यह बीकानेर से १८ मील दक्षिण में पूर्व की तरफ़ बसा हुआ है। कहा जाता है कि रूण से चलकर रायसी सांखला पहले यहीं ठहरा था। अनुमानतः उसने ही यह गांव बसाया होगा।

यहां के कुएं के पास की तीन देवलियों पर लेख खुदे हैं, जिनमें से सब से प्राचीन वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ बदि अमावास्या (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का है। इससे पाया जाता है कि उक्त दिन लाखण के पुत्र चौहान विक्रमसिंह का स्वर्गवास हुआ था। इस लेख के बल पर यह कहना अयुक्त न होगा कि वि० सं० १२८८ से पूर्व ही यह गांव

बस गया था। दूसरे दो लेखों में सांखला रायसिंह के प्रपौत्र राणा कंवरसी (कुमारसी) के दो पुत्रों का उल्लेख है, जिनकी क्रमशः वि० सं० १३८२ और १३८६ (ई० स० १३२५ और १३२९) में मृत्यु हुई थी। पहला लेख लाल पत्थर की देवली पर खुदा है, जिसके ऊपर एक अश्वारूढ़ व्यक्ति और तीन सतियों की आकृतियां बनी हैं। दूसरी देवली भी ऐसी ही है, परन्तु उसमें केवल अश्वारूढ़ व्यक्ति की ही आकृति बनी है।

जेगला—यह बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण में है। यहां पर उल्लेख-योग्य गोगली सरदारों की दो देवलियां हैं। इनमें से अधिक प्राचीन वि० सं० १६४७ आश्विन वदि ८ (ई० स० १५९० ता० ११ सितंबर) की है और गोगली सरदार 'संसार' से सम्बन्ध रखती है। संसार के विषय में ऐसी प्रसिद्ध है कि वह बीकानेर के महाराजा रायसिंह और पृथ्वीराज की सेवा में रहा था और बादशाह के समक्ष एक लड़ाई में सिर कट जाने पर भी उसका धड़ बहुत देर तक लड़ता रहा था। गोगली वंश के व्यक्ति अब भी जेगला में हैं और यहां का एक पट्टेदार भी इसी वंश का है।

पारवा—यह स्थान बीकानेर से लगभग २० मील दक्षिण में जेगला से क़रीब चार मील पूर्व में है। यहां पर उल्लेखयोग्य केवल एक छत्री है, जिसपर बीकानेर के राव जैतसी के एक पुत्र राठोड़ मानसिंह की मृत्यु और उसके साथ उसकी स्त्री कछवाही पूनिमादे के सती होने के विषय का वि० सं० १६५३ आषाढ़ सुदि ४ (ई० स० १५९६ ता० १९ जून) का लेख खुदा है। छत्री की बनावट साधारण है और उसका छज्जा तथा गुम्बज बहुत जीर्ण दशा में हैं।

जांगलू—सांखलों का यह प्राचीन क़िला जांगलू नामक प्रदेश में बीकानेर से २४ मील दक्षिण में है। ऐसा कहते हैं कि चौहान सम्राट् पृथ्वीराज की राणी अजादे (अजयदेवी) दहियाणी ने यह स्थान बसाया था। सर्व प्रथम सांखले महिपाल का पुत्र रायसी रूण को छोड़कर यहां आया और गुढ़ा बांधकर रहने लगा एवं कुछ समय के बाद यहां के स्वामी दहियों की

छल से हत्या कर उसने यहां अपना अधिकार जमा लिया। सांखलों में नापा बड़ा प्रसिद्ध हुआ। उसके समय में जब बिलोचों का उत्पात जांगलू पर बहुत बढ़ा तो वह जोधपुर चला गया और वहां से राव जोधा के पुत्र बीका को लाकर उसने जांगलू का इलाक़ा उसके सुपुर्द करा दिया। तब से सांखले राठोड़ों के विश्वासपात्र बन गये। बहुत समय तक गढ़ की कुंजियां तक उनके पास रहती थीं। नापा सांखला बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त इतना सत्यवादी था कि अब भी यदि कोई बड़ी सच्चाई का प्रमाण देता है तो उसका उदाहरण दिया जाता है कि यह तो नापा सांखला के जैसी बात है। वास्तव में नापा ने राठोड़ों को उक्त (जांगल) प्रदेश में राज्य विस्तार करने में बड़ी सहायता पहुंचाई थी।

यहां के प्राचीन स्थानों में पुराना क़िला, केशोलाय और महादेव के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। पुराना क़िला वर्तमान गांव के निकट बना हुआ था, पर अब उसके कुछ भग्नावशेष ही विद्यमान रह गये हैं। चारों ओर चार दरवाज़ों के चिह्न अब भी पाये जाते हैं। बीच के ऊंचे उठे हुए घेरे के दक्षिण-पूर्व की ओर जांगलू के तीसरे सांखले स्वामी खींवसी के सम्मान में एक देवली (स्मारक) बनी है, जो देखने से नवीन जान पड़ती है।

क़िले के पूर्व में केशोलाय तालाब है। इसके विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि दहियों के केशव नामक उपाध्याय ब्राह्मण ने यह तालाब खुदवाया था। तालाब के किनारे एक पत्थर पर खुदे हुए लेख में केशव का नाम आता है। यह लेख लाल पत्थर की देवली पर खुदा है और वि० सं० १३४६ श्रावण सुदि १४ (ई० स० १२९२ ता० २९ जुलाई) का है। तालाब के निकट की अन्य पांच देवलियां पीछे की हैं, जिनमें से तीन के लेख अस्पष्ट हैं। ये लेख क्रमशः वि० सं० १६१८, १६३० और १६६४ (ई० स० १५६१, १५७३ और १६०७) के हैं। शेष दो देवलियां वि० सं० १६९० और १६९६ (ई० स० १६३३ और १६३९) की हैं। इनमें जांगलू के भाटी जागीरदारों की मृत्यु के उल्लेख हैं। अब भी जांगलू के जागीरदार भाटी ही हैं।

पुराने क़िले की तरफ़ गांव के बाहर महादेव का मंदिर है, जो

नवीन बना हुआ है। इसके भीतर एक किनारे पर प्राचीन शिवलिंग की जलेरी पड़ी हुई है. मंदिर के अन्दर की दीवार पर संगमर्मर पर एक लेख खुदा है, जिससे पाया जाता है कि इस मंदिर का नाम पहले श्रीभवानी-शंकरप्रासाद था और इसे राव बीका ने बनवाया तथा वि० सं० १६०१ (ई० स० १८४४) में महाराजा रत्नसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था।

जांगलू में तीन और मंदिर हैं, पर ये भी नये ही हैं। एक मंदिर जांभा नामक सिद्ध का है, जो पहले पंवार राजपूत था और बाद में साधू हो गया था। इसकी उपासना बिश्नोई मतावलम्बी करते हैं। इस मंदिर के भीतर एक चोला रक्खा है, जो जांभा सिद्ध का बतलाया जाता है।

जांगलू में दो कुएं हैं, परंतु उनपर कोई लेख नहीं है। इनमें से एक की दीवार में एक देवली बनी है, जिसपर केवल वि० सं० ११७० फाल्गुन सुदि १ (ई० स० १११४ ता० ६ फ़रवरी) और 'पुत्र गासल' पढ़ा जाता है।

मोरखाणा—यह स्थान बीकानेर से २८ मील दक्षिण-पूर्व में है। यहां का सुसाणीदेवी (सुराणों की कुलदेवी) का मंदिर उल्लेखनीय है। यह मंदिर एक ऊंचे टीले पर बना है और इसमें एक तहखाना, खुला हुआ प्रांगण तथा बरामदा है। यह सारा जैसलमेरी पत्थरों का बना है और इसके तहखाने की बाहरी दीवारों पर देवताओं और नर्तकियों की आकृतियां खुदी हैं। इसी प्रकार द्वारभाग भी खुदाई के काम से भरा हुआ है। तहखाने के ऊपर का शिखर खोखला बना है। इसके भीतर एक देवी की मूर्ति है। तहखाने के चारों तरफ़ एक नीची दीवार बनी है। प्रांगण पर छत है जो १६ खंभों पर स्थित है, जिनमें से १२ तो चारों ओर एक घेरे में लगे हैं और शेष चार मध्य में हैं। मध्य के चारों स्तम्भ और तहखाने के सामने के दो स्तम्भ घटपल्लव शैली के बने हैं। घेरे में लगे हुए स्तम्भ श्रीधर शैली के हैं। मध्य के स्तम्भों में से एक पर बैठे हुए मनुष्य की आकृति खुदी है, जिसके विषय में कहा जाता है कि वह नागौर के नवाब की मूर्ति है, जो सुसाणी पर अधिकार करना चाहता था।

तहखाने के सामनेवाले बांई तरफ़ के स्तम्भ पर दो ओर लेख खुदे हैं। एक तरफ़ का लेख तो स्पष्ट पढ़ा नहीं जाता, पर दूसरी तरफ़ के लेख में वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७२) लिखा मिलता है तथा उसके ऊपरी भाग में एक स्त्री की आकृति बनी है। इस लेख का भी आशय स्पष्ट नहीं है, परन्तु इससे इतना सिद्ध है कि उक्त संवत् से पूर्व भी सुसाणी के मन्दिर का अस्तित्व था। पासवाली देवलियों से भी, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, इस बात की पुष्टि होती है। द्वार के बायें पार्श्व और उसके सामनेवाले स्तम्भ को मिलानेवाली दीवार पर लगे हुए काले संगमर्मर पर गद्य और पद्य में एक लेख खुदा है, जिसके पूर्वार्द्ध के अन्तिम अर्थात् छठे श्लोक से पाया जाता है कि शिवराज के पुत्र हेमराज ने देवताओं के रथ के समान सुन्दर ऊंचे शिखरवाला 'गोत्र देवी' का मन्दिर बनवाया। उसके बाद के अंश में लिखा है कि वि० सं० १५७३ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा (ई० स० १५१६ ता० १६ मई) शुक्रवार को सुराणावंशीय गोसल के प्रपौत्र पूंजा के पुत्र संघेश चाहड़ ने (जीर्णोद्धार किये हुए) मन्दिर में श्री पद्मानन्दसूरि के उत्तराधिकारी श्रीनन्दिवर्धनसूरि के द्वारा मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई। सुसाणी के मंदिर की बांई ओर कुछ पत्थर की मूर्तियां आदि पड़ी हैं, जिनमें नौ देवलियां, एक गोवर्धन (कीर्त्तिस्तम्भ) और एक देव-मूर्ति हैं। इनमें से कुछ लाल पत्थर और कुछ जैसलमेर के पीले पत्थर की हैं। इनपर लेख अवश्य थे, जो लगातार पुताई होने के कारण अब पढ़े नहीं जाते। देवलियां वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ की जान पड़ती हैं और अनुमानतः राजपूत सरदारों से सम्बन्ध रखती हैं, जिनकी अश्वारूढ़ आकृतियां सतियों की आकृतियों सहित उनपर बनी हैं। एक देवली पर तो लिंग भी दृष्टि गोचर होता है। लेख प्रायः सब देवलियों पर अशुद्ध हैं। एक लेख जो कुछ-कुछ पढ़ा जाता है, वि० सं० १२३१ पौष वदि ३ (ई० स० ११७४ ता० १३ नवम्बर) का है।

गोवर्द्धन अथवा कीर्त्तिस्तम्भ अधिक महत्वपूर्ण है। यह लाल

पत्थर का है और इसकी चारों ओर खुदाई का काम है। सामने की तरफ़ इसपर एक लेख है, जो वि० सं० ११०० के पीछे का नहीं जान पड़ता।

गांव के ससियाणी सागर नाम के कुएं के पास २६ देवलियां एक कतार में लगी हैं, जिनमें से २२ जैसलमेरी पत्थर की और शेष ४ संगमर्मर की हैं। इनमें से कुछ जीर्ण दशा में हैं और एक को छोड़कर शेष सभी वि० सं० की १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के बीच मृत्यु को प्राप्त होनेवाले भाटी जागीरदारों की हैं। इनमें से वि० सं० १६६५ (ई० स० १६३८) की देवली से ज्ञात होता है कि इस गांव का पुराना नाम मोरखियाणा था। एक देवली, जो अधिक प्राचीन है, वि० सं० १५६४ फाल्गुन सुदि १४ (ई० स० १५३८ ता० १२ फ़रवरी) की है। अब भी इस स्थान के जागीरदार भाटी ही हैं।

मोरखाणा में एक शिवालय भी है, जिसमें मन्दिर और मठ दोनों हैं। शिवालय बहुत पीछे का बना है।

कंवलीसर—यह बीकानेर से ३६ मील दक्षिण में बसा है। यहां वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की देवलियों का समूह है, जिनमें से केवल एक सुरक्षित रह सकी है। यह वि० सं० १३२८ (ई० स० १२७१) की है और इसमें इस गांव को बसानेवाले सांखला कमलसी की मृत्यु का उल्लेख है। अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि यहां की सब देवलियां सांखले राणाओं की हैं, जो पहले जांगलू और रासी (रायसी)सर पर राज्य करते थे।

पांचू—बीकानेर से ३६ मील दक्षिण में बसा हुआ यह गांव भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व का है। यहां राव बीका के तीसरे चाचा ऊधा रिणमलोत के दो पुत्रों—पंचायण और सांगा—की देवलियां (स्मारक) हैं, जो क्रमशः वि० सं० १५६८ और १५८१ (ई० स० १५११ और १५२४) की हैं। अनुमानतः पंचायण ने ही यह गांव बसाया होगा और उसी के नाम से इसकी प्रसिद्धि है। इस स्थान के निकट ही

सीभवा गांव है जहां वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) की राव जैतसी के पुत्र पूरणमल की देवली (स्मारक) है।

भादला—यह बीकानेर से ४५ मील दक्षिण में बसा है। यहां कई अति प्राचीन देवलियां हैं, जो सब राजपूतों की चिकरण शाखा से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें से सब से पुरानी वि० सं० ११६१ (ई० स० ११३४) की है। इनपर के लेखों से स्पष्ट है कि वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के अंत और १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भादला तथा उसके आसपास के गावों पर चिकरण राजपूतों का, जो अपने को राणा कहते थे, अधिकार था।

सारूंडा—बीकानेर से ५२ मील दक्षिण में बसा हुआ यह गांव भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखता है। इस के निकट ही दन्तोला की तलाई है, जिसके किनारे पर राव बीका के चाचा मंडला रिणमलोत की देवली है, जो वि० सं० १५६२ (ई० स० १५०५) की है।

अणखीसर—यह गांव बीकानेर से ३० मील पूर्व-दक्षिण में बसा है। यहां चार देवलियां हैं जो सब वि० सं० १३४० (ई० स० १२८३) की हैं। इनमें से तीन अणखसिंह के पुत्र आसल और उसकी दो स्त्रियों—रोहिणी और पूमां—की हैं; चौथी देवली रणमल की है, जो अनुमानतः आसल का सम्बन्धी रहा होगा और उसी समय मरा या मारा गया होगा। अणखसी और कोई नहीं, सांखले राणा रायसी का ही उत्तराधिकारी होना चाहिये। ऐसा ज्ञात होता है कि उसने ही यह गांव बसाया होगा।

सारंगसर—बीकानेर से ६४ मील पूर्व दक्षिण में बसे हुए इस गांव में मोहिलों का सब से प्राचीन लेख एक गोवर्द्धन (कीर्तिस्तम्भ) पर खुदा है, जो पूरा पढ़ा नहीं जाता। उसमें केवल सम्वत् ११८···स्पष्ट है।

छापर—यह बीकानेर से ७० मील पूर्व में बसा है और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। यह मोहिलों की दो प्राचीन राजधानियों में से एक थी। उनकी दूसरी राजधानी द्रोणपुर थी। मोहिल, चौहानों की ही एक

शाखा है, जिसके स्वामियों ने राणा का विरुद् धारणकर उक्त स्थानों के आस-पास के प्रदेश पर वि० सं० की १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राज्य किया था।

छापर में मोहिलों की बहुत सी देवलियां (स्मारक) हैं, जो वि० सं० की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की हैं। इनमें से दो विशेष महत्व की हैं क्योंकि इनसे मोहिल राणाओं के सम्बन्ध का निश्चित समय ज्ञात होता है। एक राणा सोहणपाल की वि० सं० १३११ (ई० स० १२५४) और दूसरी राणा अरडक की वि० सं० १३४८ (ई० स० १२९१) की है, जो सम्भवतः सोहणपाल का पुत्र हो। इनके अतिरिक्त एक देवली (स्मारक) वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२५) की गिरधरदास के पुत्र आसकर्ण की है।

यहां छापर नाम की एक खारे पानी की झील है, जिससे पहले नमक बनाया जाता था, पर अंग्रेज़ सरकार के साथ किये हुए वि० सं० १९६९ (ई० स० १९१३) के इक़रारनामे के अनुसार अब यह काम बन्द कर दिया गया है।

इस गांव से लगभग दो मील दक्षिण-पश्चिम में चाहड़वास गांव है, जहां राव बीका के भाई राव बीदा के वंशधरों में से खेतसी के पुत्र राम की वि० सं० १६२५ (ई० स० १५६८) की और गोपालदास के पुत्र कुम्भकर्ण की वि० सं० १६४५ (ई० स० १५८८) की देवलियां (स्मारक) हैं।

सुजानगढ़—यह बीकानेर से ७२ मील पूर्व-दक्षिण में मारवाड़ की सीमा से मिला हुआ बसा है। इस स्थान का पुराना नाम खरबूजी का कोट था। पीछे से सांडवा के जागीरदार को दूसरे स्थान में भूमि देकर उससे यह स्थान महाराजा सूरतसिंह ने वि० सं० १८३५ (ई० स० १७७८) के आसपास लिया और इसका नाम सुजानसिंह के नाम पर रक्खा। यहां पुराना क़िला अब तक विद्यमान है, जिसका उक्त महाराजा के समय जीर्णोद्धार हुआ था। इसकी चारों ओर खाई तो नहीं

है पर धूल-कोट है। यहां २७ मन्दिर, दो मस्जिदें तथा कई धर्मशालाएं हैं।

सुजानगढ़ से छः मील पश्चिमोत्तर में गोपालपुरा गांव है, जिसके आस-पास पर्वत श्रेणियां हैं। राज्य भर में यही एक ऐसा स्थल है, जहां पर्वत श्रेणियां दिखलाई पड़ती हैं। यह कहा जाता है कि पहले इस स्थान पर द्रोणपुर नाम का नगर था, जो पांडवों के आचार्य द्रोण ने बसाया था। पीछे से यहां परमारों का अधिकार हुआ जिन्हें निकालकर बागड़ी राजपूत यहां के स्वामी हुए। उनके बाद मोहिलों का आधिपत्य हुआ, जिनसे राठोड़ों ने यह स्थान लिया। राव बीका ने यह सारा प्रदेश अपने भाई बीदा को दिया था, जिससे अब तक इसका नाम बीदाहद (बीदावाटी) है।

गोपालपुरा में राव बीदा के पुत्र उदयकरण की वि० सं० १५६५ (ई० स० १५०८) की देवली (स्मारक) है, जो प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

चरळू—छापर से १४ मील दूर बसा हुआ यह स्थान ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि यहां मोहिलों की बहुत सी देवलियां (स्मारक) हैं, जिनसे विष्णुदत्त देवसरा (?), आहड़ और अम्बराक नाम के चार मोहिल सरदारों के नाम ज्ञात होते हैं। इनमें से प्रथम की मृत्यु वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) और अंतिम की १२४१ (ई० स० ११८४) में हुई थी। आहड़ और अम्बराक के विषय में इन देवलियों से पता चलता है कि वे नागपुर (नागोर) की लड़ाई में मारे गये थे। इनसे तथा मोहिलों की अन्य देवलियों से यह सिद्ध हो जाता है कि वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के पूर्व ही उनका इस प्रदेश पर अधिकार हो गया था और उनकी पहली राजधानी चरळू ही थी।

सालासर—यह बीकानेर से ८७ मील पूर्व-दक्षिण में जयपुर की सीमा के निकट बसा है। यहां का हनुमान का मंदिर उल्लेखनीय है, जहां वर्ष में

दो बार, कार्तिक और वैशाख में पूर्णिमा के दिन, मेले लगते हैं, जिनमें दूर-दूर के यात्री दर्शनार्थ आते हैं।

रतनगढ़—यह बीकानेर से ८० मील पूर्व में बसा है। सर्व-प्रथम यहां महाराजा सूरतसिंह ने कोलासर नाम का एक मजरा बसाया था। महाराजा रत्नसिंह ने इसे वर्तमान रूप दिया। नगर में तथा उसके आस-पास प्रायः दस पक्के तालाब और बीस कुएं हैं, जिनमें से अधिकांश बड़े सुन्दर हैं और उनके पास छत्रियां भी बनी हैं। चारों ओर चहारदिवारी भी है और दो छोटे-छोटे क़िले भी विद्यमान हैं। यहां का प्रमुख मन्दिर जैनों का है। इसके अतिरिक्त कई विष्णु और शिव के मंदिर भी हैं।

चूरु—यह नगर बीकानेर से १०० मील पूर्व में कुछ उत्तर की तरफ़ बसा है। ऐसी प्रसिद्धि है कि चूहरु नाम के एक जाट ने ई० स० १६२० के आसपास इसे बसाया था, जिससे इसका नाम चूरु पड़ा। शेखावाटी की ओर से अग्रसर होनेवाले व्यक्ति को यह नगर दूर से दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि बीच में रेत का एक ऊंचा टीला आ गया है। कहा जाता है कि यहां का क़िला मालदे नामक व्यक्ति के उत्तराधिकारी खुशहालसिंह ने वि० सं० १७६६ (ई० स० १७३६) में बनाया था। यहां के भवन विशाल और कुएं अति सुन्दर हैं। मानस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन ने, जो ई० स० १८०८ में इधर से गुज़रा था, यहां के कुओं और अट्टालिकाओं की बड़ी प्रशंसा की थी। इस नगर में कई प्राचीन मक़बरे और छत्रियां भी हैं।

सरदारशहर—यह बीकानेर से ८५ मील पूर्वोत्तर में बसा है। महाराजा सरदारसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व ही यहां पर एक क़िला बनवाया था। शहर की चारों तरफ़ टीले हैं, जिनसे इसका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखनेवाली यहां एक छत्री है, जो वि० सं० १२४१ (ई० स० ११८४) की है, परन्तु उसपर मोहिल इन्द्रपाल के अतिरिक्त और कुछ पढ़ा नहीं जाता। इस देवली से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मोहिलों का प्रभाव पहले बहुत बढ़ा-चढ़ा था और उनका राज्य यहां तक फैला हुआ था।

इसके तीन मील दक्षिण में ऊदासर गांव है, जो इसी नाम के रेलवे स्टेशन के पास बसा है। यहां पर राव कल्याणमल के पुत्र रामसिंह की वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) की देवली (स्मारक) है।

रिणी—यह बीकानेर से १२० मील पूर्वोत्तर में बसा है। कहते हैं कि इसे राजा रिणीपाल ने कई हज़ार वर्ष पूर्व बसाया था। उसके अंतिम वंशधर जसवन्तसिंह के समय लगातार कई बार अकाल पड़ने के कारण जब यह नगर नष्ट हो गया तो चायल राजपूतों ने इसपर तथा इसके आस-पास के गांवों पर अधिकार कर लिया। वि० सं० की सोलहवीं शताब्दी में राव बीका ने उन्हें निकालकर यहां अपना आधिपत्य स्थापित किया। महाराजा गजसिंह का जन्म यहीं पर होने के कारण गजसिंहोत बीका इसे बड़ा शुभ स्थान मानते हैं। इस नगर की चारों तरफ़ भी शहरपनाह बनी है। वर्तमान क़िला महाराजा सूरतसिंह का बनवाया हुआ है। यहां भी कुछ छत्रियां तथा वि० सं० ९९९ (ई० स० ८४२) का बना हुआ एक सुन्दर जैन मन्दिर है, जो बड़ा सुदृढ़ बना हुआ है। छत्रियों में से वि० सं० १८०५ (ई० स० १७४८) की एक छत्री उल्लेखनीय है, जिसमें महाराज आनन्दसिंह की मृत्यु का उल्लेख है। जैन मन्दिर बहुत प्राचीन होते हुए भी देखने में अबतक नवीन ही जान पड़ता है। वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) के बने हुए रामदेवजी के मन्दिर में प्रतिवर्ष एक मेला लगता है। निकट के जसरासर नाम के तालाब के पास के मन्दिर में भी प्रति मास एक मेला लगता है।

राजगढ़—बीकानेर से १३५ मील पूर्वोत्तर में बसा हुआ यह नगर वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६६) में महाराजा गजसिंह ने अपने पुत्र राजसिंह के नाम पर बसाया था। यहां का क़िला उक्त महाराजा की आज्ञा से उसके मंत्री महता बख़्तावरसिंह ने बनवाया था।

ददरेवा—यह बीकानेर से १२४ मील पूर्वोत्तर में बसा है। प्राचीनता की दृष्टि से महत्त्व रखनेवाला यहां वि० सं० १२७० (ई० स० १२१३) का एक लेख है, जिसमें एक कुआं खुदवाये जाने का उल्लेख है तथा मंडलेश्वर

गोपाल के पुत्र राणा जयतसिंह का नाम दिया है। इससे यह सिद्ध है कि वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहां पर चौहानों का राज्य था, जो अपने को राणा कहते थे। बीकानेर की ख्यातों में गोगादे सिद्ध का जन्म ददेवा में होना लिखा है। संभव है कि वह जयतसिंह का ही कोई वंशधर रहा हो।

नौहर—यह बीकानेर से ११८ मील उत्तर-पूर्व में बसा है। यहां एक जीर्ण-शीर्ण क़िले के चिह्न अभी तक विद्यमान हैं। इस स्थान से १६ मील पूर्व में गोगामेड़ी नामक स्थान है, जहां भाद्रपद के कृष्ण पक्ष में गोगासिद्ध की स्मृति में मेला लगता है, जिसमें १०–१५ हज़ार आदमी एकत्र होते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि एक बार यहां की यात्रा कर लेने के बाद सर्प-दंश का भय नहीं रहता। इस स्थान से एक मील उत्तर में प्रसिद्ध गोरखटीला है। कहा जाता है कि यहां पहले गोरखनाथ नाम का सिद्ध रहता था।

नौहर में वि० सं० १०८४ (ई० स० १०२७) का एक लेख है।

हनुमानगढ़—यह बीकानेर से १४४ मील उत्तर-पूर्व में बसा है। यहां एक प्राचीन क़िला है, जिसका पुराना नाम भटनेर था। भटनेर भट्टीनगर का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ भट्टी अथवा भाटियों का नगर है।

बीकानेर राज्य के दो प्रमुख क़िलों में से हनुमानगढ़ दूसरा है। यह क़िला लगभग ५२ बीघे भूमि में फैला हुआ है और ईंटों से सुदृढ़ बना है। इसका जीर्णोद्धार होते-होते सारा-का-सारा क़िला नया सा हो गया है। चारों ओर की दीवारों पर बुर्ज बने हैं। क़िले का एक द्वार कुछ अधिक पुराना प्रतीत होता है। प्रधान प्रवेशद्वार पर संगमर्मर के काम के चिह्न अब तक विद्यमान हैं। कहते हैं कि पहले इस क़िले में गुम्बद आदि बने हुए थे, पर ये सब तोड़ डाले गये और ईंटें आदि मरम्मत के काम में लगा दी गई। क़िले के एक द्वार के एक पत्थर पर वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) खुदा है। उसके नीचे राजा का नाम तथा छः राणियों की आकृतियां भी बनी थीं जो अब स्पष्ट नहीं हैं। कहीं-कहीं ईंटों

पर अब भी फ़ारसी एवं अरबी के अक्षर खुदे हुए दीख पड़ते हैं। क़िले के भीतर का जैन उपासरा प्राचीन है। उसके भीतर की मूर्तियों में से तीन की पीठ पर क्रमशः वि० सं० १५०६ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० स० १४४६ ता० २५ नवम्बर); १५५६ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १५०२ ता० २१ अक्टूबर) और १५६५ माघ वदि २ (ई० स० १५३६ ता० ६ जनवरी) के लेख खुदे हैं, जिनमें उक्त मूर्तियों की स्थापना के सम्बन्ध के उल्लेख हैं। क़िले में एक लेख हि० स० १०१७ (वि० सं० १६६५=ई० स० १६०८) का फ़ारसी लिपि में लगा है, जिससे पाया जाता है कि उस(बादशाह)की आज्ञा से कछवाहे राय मनोहर ने उक्त संवत् में वहां मनोहरपोल नाम का दरवाज़ा बनवाया।

हनुमानगढ़ किसका बसाया हुआ है, इसका ठीक पता नहीं चलता। पहले यह स्थान निर्जन पड़ा हुआ था, केवल दो कोस की दूरी पर दो गुम्बद थे, जिनके पास के टीले पर कुछ लोगों की बस्ती थी, जो भाटी थे। फिर सादात (जलालुद्दीन बुख़ारी के वंशधर) के समय में यह क़िला बनकर सम्पूर्ण हुआ, जिसे मारकर भाटियों ने यहां अपना अधिकार स्थापित किया। कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि महमूद ग़ज़नवी ने वि० सं० १०५८ (ई० स० १००१) में भटनेर लिया, पर यह कथन विश्वसनीय नहीं है। १३ वीं शताब्दी के मध्य में बल्बन का एक सम्बन्धी शेरख़ां यहां का हाकिम था। कहा जाता है कि उसने भटिंडा और भटनेर के क़िलों की मरम्मत कराई थी और वि० सं० १३२६ (ई० स० १२६९) में उसका भटनेर में देहांत हुआ, जहां उसकी स्मृति में एक क़ब्र (Tomb) बनी है। वि० सं० १४४८ (ई० स० १३९१) में भाटी राजा (राव) दुलचंद से तैमूर ने भटनेर लिया। तत्कालीन तवारीख़ों में लिखा है—"बहुत ही सुदृढ़ और सुरक्षित होने से यह क़िला हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध है। यहां के लोगों के व्यवहार के लिए जल, एक बड़े हौज़ से आता है, जहां का वर्षा-काल का एकत्रित पानी साल भर तक काम देता है।" इसके बाद यहां क्रमशः भाटियों, जोहियों और चायलों का अधिकार हुआ। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में बीकानेर के चौथे शासक राव जैतसिंह

ने यहां राठोड़ों का आधिपत्य स्थापित किया। इसके ११ वर्ष बाद बाबर के पुत्र कामरां ने इसे जीता। फिर कुछ दिनों तक चायलों का अधिकार रहा, जिनसे पुनः राठोड़ों ने इसे लिया। बीस वर्ष बाद शाही ख़ज़ाना लूटे जाने के अपराध में बादशाह की आज्ञा से हिसार के सूबेदार ने इसे शाही राज्य में मिला लिया। बीच में कई बार इसके अधिकारियों में परिवर्तन हुए। अन्त में महाराजा सूरतसिंह के समय वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में पांच मास के विकट घेरे के बाद राठोड़ों ने इसे ज़ाब्ताख़ां भट्टी से छीना और यहां बीकानेर राज्य का अधिकार हुआ। मंगलवार के दिन अधिकार होने के कारण इस क़िले में एक छोटा सा हनुमानजी का मंदिर बनवाया गया और उसी दिन से इसका नाम हनुमानगढ़ रक्खा गया।

घग्गर के आस-पास का प्रदेश प्राचीन काल में बीकानेर राज्य का सब से सम्पन्न भाग था, अतएव शिल्पकला का विकास भी यहां ही अधिक हुआ था। पत्थर की कमी के कारण यहां मिट्टी पकाकर उसकी बड़ी सुन्दर मूर्तियां आदि बनाई जाती थीं। हनुमानगढ़ में इस तरह के काम के जो उदाहरण मिले हैं वे बड़े उत्कृष्ट और उच्चकोटि की कला के परिचायक हैं। क़िले के भीतर के एक टीले के नीचे १५ फ़ुट की गहराई में पकी हुई मिट्टी के बने स्तम्भ के दो शिरोभाग (Terra Cotta Capitals) पाये गये, जिनके किनारों पर सीढ़ी सहित शंकु आकृति के मीनारे (Pyramids) बने हैं। भीतर के तीसरे द्वार के निकट से दो भाग में टूटी हुई पकी मिट्टी की चौकी मिली, जो उसी समय की बनी है, जिस समय के उपर्युक्त शिरोभाग हैं। भीतर के दूसरे अथवा मध्य-द्वार के निकट लाल पत्थर का बना द्वार-स्तम्भ (Door-jamb) है, जिसके ऊपर तीन चतुष्कोण पटरियां बनी हैं, जिनमें से दो पर मनुष्य की आकृतियां और तीसरे पर सूर्य की बैठी हुई मूर्ति बनी है, जो हाथों में दो कमल के फूल लिये है।

हनुमानगढ़ के निकट ही भद्रकाली, पीर सुलतान, मुंडा, डोबेरी, कालीबंग आदि स्थान हैं, जहां से भी प्राचीन कला के अवशेष मिले हैं।

मुंडा का स्तूप अन्य स्तूपों से बड़ा है। इसके निकट ही एक कटहरे का काम देनेवाले स्तम्भ का टुकड़ा है, जिसके मध्य में कमल-पुष्प बना है। पीर सुलतान में मिली हुई पकी हुई मिट्टी की बनी स्त्री की टूटी आकृति बड़ी उत्कृष्ट कला का उदाहरण है और गान्धार शैली की जान पड़ती है। डोबेरी में एक सुदृढ़ नगर के अवशिष्ट चिह्न प्राप्त हुए हैं।

गंगानगर—यह बीकानेर से १३६ मील उत्तर में बसा है। पहले यहां कोई आबादी नहीं थी और यह हिस्सा ऊजड़ तथा 'दुले की बार' नाम से प्रसिद्ध था। फिर इधर कुछ गांव आबाद हुए, जिनमें वर्तमान गंगानगर से एक मील दूरी पर रामनगर नामक गांव आबाद हुआ। वर्तमान महाराजा साहब ने जब पंजाब ज़िले के फ़ीरोज़पुर से बीकानेर राज्य में गंगानहर लाने का कार्य आरंभ किया उस समय व्यापार के लिए वहां मंडी बनाना स्थिर हुआ और वि० सं० १९८४ (ई० स० १९२७) में इस स्थान की नींव दी गई। यहां दूर-दूर के लोग अपना नाज बेचने के लिए आते हैं और राज्य के उद्योग से यहां बहुत बड़ी मंडी हो गई है। यह गंगानगर निज़ामत का मुख्य स्थान है। इसमें एक 'कॉटन प्रेस एन्ड जिनिंग फ़ैक्टरी' है तथा और भी कई फ़ैक्टरियां हैं। वि० सं० १९९१ (ई० स० १९३४) में राज्य ने यहां की खास तौर पर मर्दुमशुमारी की तो १०५७९ मनुष्यों की आबादी पाई गई। इस मंडी का निर्माण बड़ी सुंदरता से हुआ है और मुख्य सड़कें तो जयपुर नगर की प्रसिद्ध सड़कों के समान बहुत चौड़ी हैं। यहां कई भव्य मकान भी बने हैं और बनते जाते हैं। राज्य की तरफ़ से यहां कई बड़े अफ़सर रहते हैं और इधर के माल-सीगे का रेवेन्यु अफ़सर भी यहीं रहता है।

लाखासर—यह बीकानेर से ११० मील उत्तर में कुछ पूर्व की तरफ़ बसा है। कहते हैं कि हरराज ने अपने पिता के नाम पर इसे बसाया था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थान दो देवलियों के लिए प्रसिद्ध है। एक देवली वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) की है, जो सम्भवतः राव बीका के चाचा लाखा रणमलोत की हो। इसके निकट ही हरराज के पौत्र सूरजमल की वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) की देवली है।

सूरतगढ़—यह बीकानेर से ११३ मील उत्तर में कुछ पूर्व की तरफ़ बसा है। यहां एक क़िला भी था। वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में महाराजा सूरतसिंह ने यहां नया किला बनवाया और उसका नाम सूरतगढ़ रक्खा। यह किला सारा ईंटों का बना है, जिनमें से बहुत सी ईंटें आदि बौद्ध स्थानों से लाकर लगाई गई हैं। ईंटें कुछ तो सादी और कुछ खुदाई के काम से भरी हैं। मिट्टी की बनी अधिक महत्व की वस्तुएं बीकानेर के किले में सुरक्षित हैं। इनमें हड़जोरा की पत्तियों, गरुड़, हाथी, राक्षस आदि की आकृतियां बनी हैं और गांधार शैली की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। कहते हैं कि ये सब ईंटें आदि रंगमहल नामक गांव से लाई गई थीं।

रंगमहल गांव सूरतगढ़ से दो मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। बीकानेर के क़िले में सुरक्षित शिवपार्वती, कृष्ण की गोवर्धन लीला तथा एक पुरुष और स्त्री की पकी हुई मिट्टी की बनी मूर्तियां इसी प्राचीन स्थान से मिली थीं। कहते हैं कि यह स्थान पहले जोहिये सरदारों की राजधानी थी, जिनके समय में टॉड के कथनानुसार यहां सिकन्दर महान् का आगमन हुआ था। यहां एक प्राचीन बावली (Step-well) है, जिसमें २½ फ़ुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी ईंटें लगी हैं।

सूरतगढ़ से ७ मील उत्तर-पूर्व में बड़ोपल नामक गांव है। यहां भी बौद्धकालीन प्राचीन कला की वस्तुओं के अवशेष विद्यमान हैं।

दूसरा अध्याय

राठोड़ों से पूर्व का प्राचीन इतिहास

राठोड़ों का बीकानेर राज्य पर अधिकार होने से पूर्व यह प्रदेश कई भागों में विभक्त था। मरुभूमि और आबादी कम होने के कारण विजेताओं का इस तरफ़ ध्यान कम ही रहा, जिससे यहां के शासक स्वाधीनता का उपभोग करते रहे। महाभारत के समय वर्तमान बीकानेर राज्य 'कुरु-राज्य' के अन्तर्गत था। इसके पीछे यहां किन-किन राजवंशों का अधिकार रहा, यह ज्ञात नहीं होता। प्रतापी मौर्य्यों, यूनानियों, क्षत्रपों, गुप्तवंशियों और प्रतिहारों का इस प्रदेश पर राज्य रहा या नहीं, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पुरातत्वानुसंधान से इस राज्य के संबंध की इतिहास-संबंधी जो सामग्री प्राप्त हुई है, वह ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं है। फिर भी उपर्युक्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस राज्य पर जोहियों, चौहानों, सांखलों (परमारों), भाटियों और जाटों का अधिकार अवश्य रहा। अतएव उनका यहां संक्षेप से परिचय दिया जाता है।

जोहिये

जोहियों के लिए संस्कृत लेखों आदि में 'यौधेय' शब्द मिलता है। यह बहुत प्राचीन क्षत्रिय जाति है। इसका वर्णन हमने ऊपर पृ० २२-२३ (टिप्पण १) में किया है। इनका मूल निवास पंजाब में था। इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनों तटों पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश अभी तक 'जोहियावार' कहलाता है। बीकानेर राज्य का उत्तरी भाग पहले जोहियों के अधिकार में था। राठोड़ राव सलखा का छोटा पुत्र वीरम, अपने भाई माला (मल्लीनाथ) के पौत्रों-द्वारा मालाणी से

निकाला जाने पर, जोहियों के पास आ रहा था। जब उस(बीरम)ने जोहियों के साथ दग़ा करने का विचार किया तो जोहियों ने उसको मार डाला। वि० सं० की सोलहवीं शताब्दी में जोधपुर के राव जोधा के पुत्र बीका ने मारवाड़ की तरफ़ से जांगलू की तरफ़ बढ़कर अपने लिए बीकानेर नामक नवीन राज्य की स्थापना की। उस समय राव बीका के बढ़ते हुए प्रताप को देखकर जोहियों ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उस समय से ही इधर के जोहियों का इलाक़ा बीकानेर राज्य के अधिकार में आ गया।

चौहान

चौहानों की पुरानी राजधानी नागोर (अहिच्छत्रपुर) थी। वहां से वे लोग सांभर की तरफ़ बढ़े और वहां अपनी राजधानी स्थापित की। सांभर का समीपवर्ती प्रदेश 'सपादलक्ष' कहलाता था। चौहानों का राज्य सांभर में होने से वे सांभरिये (सपादलक्षीय) चौहान कहलाने लगे।

बीकानेर राज्य से चौहानों के शिलालेख विक्रम की बारहवीं शताब्दी से मिलते हैं, परंतु वे स्मारक छत्रियों के ही हैं। वि० सं० की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रसिद्ध चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) चतुर्थ ने दिल्ली, हांसी, हिसार आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। इससे यह अनुमान होता है कि बहुधा यह सारा राज्य चौहान साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया हो। बीकानेर राज्य में चौहानों के सिक्के भी मिलते हैं। ई० स० १९३२ (वि० सं० १९८९) में हनुमानगढ़ (भटनेर) से चौहान राजा अजयराज (अजयदेव) का एक तांबे का सिक्का मुझको मिला, जिसपर उसकी राणी सोमलदेवी का नाम अंकित है। इससे पाया जाता है कि सांभर के चौहानों के सिक्के यहां चलते थे और यहां उनके सामंत रहते थे।

छापर और द्रोणपुर के आसपास का प्रदेश मोहिलवाटी कहलाता था। मोहिल, चौहानों की ही एक शाखा है। नैणसी ने लिखा है कि

चाहमान के वंश में सजन का पुत्र मोहिल हुआ। मोहिल ने यहां के प्राचीन वागड़िये राजपूतों को जिन्होंने शिशुपालवंशी डाहलियों से छापर और द्रोणपुर का इलाक़ा छीन लिया था, परास्तकर उनका अधीकृत प्रदेश छीन लिया, जहां कई पीढ़ी तक उनका अधिकार रहा। फिर रूंण की तरफ़ से सांखले (परमार) रायसी (महीपाल का पुत्र) ने इधर आकर जांगलू पर अधिकार कर लिया। देशणोक के पास रासीसर नामक प्राचीन गांव है, जिसके लिए कहा जाता है कि उसे सांखला रायसी ने बसाया था। वहां चौहान लाखण के पुत्र विक्रमसिंह की मृत्यु का वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ वदि ३० (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का स्मारक लेख है। उससे पाया जाता है कि रासीसर तक मोहिल चौहानों का अधिकार था। सम्भव है कि सांखलों (पंवारों) ने कुछ भूमि चौहानों की भी दबाकर वहां अपना आधिपत्य किया हो। तथापि बीकानेर राज्य का दक्षिणी-पूर्वी भाग तथा मारवाड़ का लाडनूं परगना मोहिलों के अधिकार में रहना पूर्ण रूप से सिद्ध है। इन मोहिलों की उपाधि 'राणा' थी, ऐसा उनके प्राचीन लेखों तथा नैणसी की ख्यात से पाया जाता है। जोधपुर के राव जोधा-द्वारा मोहिल चौहान अजीतसिंह के मारे जाने के बाद राठोड़ों और मोहिलों में वैर हो गया तथा उनमें कई लड़ाइयां हुई। अनन्तर पारस्परिक फूट से मोहिलों के निर्बल हो जाने पर राव जोधा ने उनपर आक्रमण कर उनका सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इसपर मुसलमान सेनाध्यक्ष सारंगखां की सहायता से उन्हों (मोहिलों) ने अपने इलाक़े को पुनः राठोड़ों से छीन लिया। तब बीकानेर से राव बीका ने मोहिलों पर चढ़ाई कर उन्हें परास्त किया और मोहिलवाटी को विजय कर वह प्रदेश अपने भाई बीदा को दे दिया। बीका की इस सहायता के बदले में बीदा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार की। तब से उसके वंशज बीकानेर राज्य के अधीन चले आते हैं।

बीकानेर राज्य से चौहानों के कई स्मारक लेख मिले हैं।

सांखले (परमार)

सांखलों को वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२४) के लिये संस्कृत शिलालेख में 'शंखुकुल' शब्द लिखा है। उनकी एक शाखा का रूंण (जोधपुर राज्य) में निवास था, जिससे वे रूंण के सांखले भी कहलाने लगे। उनकी उपाधी 'राणा' थी। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आस-पास सांखले महीपाल का पुत्र रायसी बीकानेर राज्य के जांगलू प्रदेश में गया और वहां रहने लगा। रासीसर (रायसीसर) गांव में एक देवली पर वि० सं० १२८८ ज्येष्ठ वदि ३० (ई० स० १२३१ ता० ३ मई) शनिवार का लेख है, जिससे अनुमान होता है कि जांगलू पर सांखलों का अधिकार होने के पूर्व चौहानों का अधिकार रहा हो और सम्भवतः रायसी ने चौहान लाखण के पुत्र विक्रमसिंह को मारकर उस प्रदेश पर अधिकार किया हो तथा रासीसर नाम रायसी के समय वह गांव बसने से प्रसिद्ध हुआ हो।

रायसी के पीछे उसका पुत्र अणखसी जांगलू का स्वामी हुआ। बीकानेर राज्य का अणखीसर गांव अणखसी के बसाये जाने से उसका नाम अणखीसर प्रसिद्ध हुआ। अणखसी के बाद खींवसी और उसके बाद कुमरसी (कुंवरसी, कुमारसिंह) हुआ। कुमरसी के दो पुत्रों (विक्रमसी और प्रतापसी) की देवलियां रासीसर गांव में बनी हुई हैं, जिनमें उनके मृत्यु-संवत् क्रमशः वि० सं० १३८२ और १३८६ (ई० स० १३२५ और १३२९) दिये हैं। कुमरसी की एक पुत्री दूलहदेवी थी, जिसका विवाह जैसलमेर के रावल कर्णदेव के साथ हुआ था। उसने वि० सं० १३८१ (ई० स० १३२४) में बासी-बरसिंहसर में तालाब बनवाया।

कुमरसी के पीछे राजसी, मूंजा, ऊदा, पुन्यपाल और माणकपाल ने क्रमशः जांगलू का अधिकार पाया। माणकराव का पुत्र नापा सांखला था। उसके समय में वहां बिलोच जाति के मुसलमानों के आक्रमण होने लगे, जिससे सांखले निर्बल हो गये। फिर नापा जोधपुर के राव जोधा के

पास गया और वहां कुंवर बीका को नवीन राज्य स्थापित करने को उद्यत देख जांगलू पर अधिकार करने की सलाह दी। तब वि० सं० १५२२ (ई० स० १४६५) में बीका ने जांगलू की तरफ़ जाकर उस प्रदेश को जीता और नापा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली। नापा के इस कार्य से राव बीका का उसपर दृढ़ विश्वास हो गया और उस (नापा) के वंशज भी वर्षों तक राज्य के विश्वासपात्र सेवक बने रहे, जिसका वर्णन यथा प्रसङ्ग किया जायगा।

भाटी

बीकानेर के पश्चिमोत्तर का सारा प्रदेश, जो जैसलमेर राज्य की सीमा से पंजाब की सीमा तक जा मिलता है, बीकानेर-राज्य की स्थापना के पूर्व भाटियों के अधिकार में था, जो वहां लूटमार भी किया करते थे। उनके भी दो भाग थे। पश्चिम की तरफ़ जैसलमेर राज्य की सीमा से मिले हुए पूगल प्रदेश के भाटी राजपूत और उत्तर की तरफ़ भटनेर के आस-पास बसनेवाले भाटी मुसलमान थे, जो भट्टी कहलाने लगे। जब राव बीका ने जांगलू की तरफ़ बढ़कर वहां अपना अधिकार किया उस समय भाटी राव शेखा पूगल का स्वामी था, जिसको मुसलमानों ने पकड़ लिया था। राव बीका ने शेखा की स्त्री की प्रार्थना पर शेखा को क़ैद से छुड़वा दिया। इसपर शेखा की पुत्री का विवाह राव बीका से हो गया। फिर राव बीका ने वर्तमान कोड़मदेसर गांव के निकट अपनी राजधानी बनाने के लिए दुर्ग बनवाना चाहा, जिससे भाटियों को उससे भय हो गया और उन्होंने उसे रोका, किन्तु उसने ध्यान नहीं दिया। तब भाटी जैसलमेर से सेना लेकर आये और राव बीका से युद्ध हुआ। भाटियों से निरन्तर झगड़ा होने की सम्भावना देख अन्त में राव बीका ने कोड़मदेसर को छोड़कर वहां से दक्षिण-पूर्व की तरफ़ जाकर वि० सं० १५४२ (ई० स० १४८५) में क़िला बनवाया, जो राजधानी बीकानेर में नगर के भीतर है। फिर वहां शहर बसाकर उसने उसका नाम बीकानेर रक्खा। राव बीका के बढ़ते हुए प्रताप

को देखकर राव शेखा ने भी बीका की अधीनता स्वीकार कर ली और पूगल बीकानेर राज्य के अन्तर्गत हो गया।

इसी प्रकार राव बीका ने उत्तर की तरफ बढ़कर वहां भी अपनी विजय पताका फहराई और भटनेर की तरफ़ के भट्टियों पर अपना आतङ्क स्थापित किया, परंतु उधर के प्रदेश पर बीकानेर के नरेशों का लगातार अधिकार न रहा। दिल्ली की मुसलमान सलतनत समीप होने के कारण उधर का प्रदेश कभी-कभी मुसलमानों के अधीन रहा। मुग़लों के राज्य समय में यह इलाक़ा फिर बीकानेर राज्य में आया, परन्तु अधिक समय तक उसपर बीकानेर राज्य का अधिकार न रहा। मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता के दिनों में कई बार इस इलाक़े पर बीकानेर के महाराजाओं ने अधिकार किया, पर भट्टियों ने उनका वहां अधिकार स्थिर न रहने दिया। अंत में महाराजा सूरतसिंह ने भट्टियों का दमन कर सारा इलाक़ा और भटनेर दुर्ग, जो अब हनुमानगढ़ कहलाता है, अपने राज्य में मिला लिया।

जाट

बीकानेर राज्य के आसपास का बहुत सा इलाक़ा जाटों के अधिकार में था और शासकों का ध्यान उस ओर न रहने से वे एक प्रकार से स्वाधीनता का उपभोग करते थे। आत्मरक्षार्थ उन्होंने अपना बल भी बढ़ा लिया था। उनकी यहां कई जातियां थी और उनका इलाक़ा कई भागों में बंटा हुआ था। गोदारा जाट पांडू और सारन जाट पूला (फूला) के पारस्परिक झगड़े में राव बीका ने पांडू का पक्ष लिया। फलतः पूला के सहायक नरसिंह के मारे जाने पर राव बीका का उनपर पूरा आतङ्क जम गया और युद्ध के समय वे भाग गये। अंत में उन्होंने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली। उनका सारा इलाक़ा बिना रक्तपात के उसके अधिकार में आ गया और जाट साधारण प्रजा की भांति भूमि-कर देकर निवास करने लगे।

तीसरा अध्याय

राव बीका से पूर्व के राठोड़ों का संक्षिप्त परिचय

बीकानेर के महाराजा जोधपुर के राठोड़ राव जोधा के पुत्र बीका के वंशधर हैं। राठोड़ों का प्राचीन इतिहास महत्वपूर्ण है, अतएव जोधपुर राज्य के इतिहास में विस्तृत रूप से उसका उल्लेख किया गया है, परन्तु वंशक्रम मिलाने के लिए यहां भी संक्षेप से उसका परिचय दिया जाता है।

'राठोड़' शब्द केवल भाषा में ही प्रचलित है। संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और दानपत्रों में उसके लिए 'राष्ट्रकूट' शब्द मिलता है।

राठोड़ शब्द की उत्पत्ति

प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार 'राष्ट्रकूट' शब्द का प्राकृत रूप 'रट्टऊड' होता है, जिससे 'राठऊड़' या 'राठोड़' शब्द बनता है। 'राष्ट्रकूट' के स्थान में कहीं-कहीं 'राष्ट्रवर्य' शब्द भी मिलता है, जिससे 'राठवड़' शब्द बना है। 'राष्ट्रकूट' और 'राष्ट्रवर्य' दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है, क्योंकि 'राष्ट्रकूट' का अर्थ 'राष्ट्र' जाति या वंश का शिरोमणि है और 'राष्ट्रवर्य' का अर्थ 'राष्ट्र' जाति अथवा वंश में श्रेष्ठ है[1]।

राठोड़ों का प्राचीन उल्लेख अशोक के पांचवे प्रज्ञापन में गिरनार, धौली, शहबाज़गढ़ी और मानसेरा के लेखों में पेटनिक (पैठनवालों) के

राठोड़वंश की प्राचीनता

साथ समास में मिलता है, जिससे पाया जाता है कि उस समय ये दक्षिण के निवासी थे। बहुत पहले से राजा और सामन्त अपने वंश के नाम के साथ 'महा' शब्द लगाते रहे हैं, जिससे राष्ट्रवंशी अपने को 'महाराष्ट्र' अथवा 'महाराष्ट्रिक' लिखने लगे। देशों के नाम बहुधा उनमें बसनेवाली या उनपर अधिकार जमानेवाली

---

(१) राठोड़ शब्द के लिए 'राष्ट्रोड़' शब्द भी मिलता है, जो संस्कृत सांचे में ढाला हुआ राठोड़ शब्द का ही सूचक है।

जातियों के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं। 'महाराष्ट्र' जाति के अधीन का दक्षिण देश 'महाराष्ट्र' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दक्षिण में राठोड़ों का प्रताप

मौर्य्यवंशी राजा अशोक से लगाकर वि० सं० ५५० (ई० स० ४९३) के आस-पास तक राठोड़ों का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। केवल कहीं-कहीं नाम मात्र का उल्लेख है।

दक्षिण के येवूर गांव के सोलंकियों के वंशावलीवाले शिलालेख से पाया जाता है कि वि० सं० ५५० (ई० स० ४९३) के लगभग राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के पुत्र इंद्र को, जिसकी सेना में ८०० हाथी थे, सोलंकी राजा जयसिंह ने जीता और वहां सोलंकी राज्य की स्थापना की। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० ५५० (ई० स० ४९३) के कई वर्ष पूर्व राठोड़ों का दक्षिण में राज्य जम चुका था और वे बड़े शक्तिशाली थे।

सोलंकी राजा जयसिंह-द्वारा दक्षिण में सोलंकी राज्य की स्थापना होने पर भी राठोड़ों के पास उनके राज्य का कुछ अंश विद्यमान था। राठोड़ राजा दंतिवर्मा के पौत्र गोविंदराज ने सोलंकीवंश के राजा पुलकेशी (वि० सं० ६६७-६९५=ई० स० ६१०-६३८) पर चढ़ाई की, परंतु फिर उसने मेल कर लिया।

तब से लगभग १५० वर्ष तक दक्षिण में सोलंकियों का राज्य उन्नत रहा। इसके पीछे उपरोक्त गोविंदराज के प्रपौत्र दंतिदुर्ग ने वि० सं० ८११ (ई० स० ७५४) के लगभग माही और रेवा नदियों के बीच का प्रदेश (लाटदेश) विजय किया तथा राजा वल्लभ (सोलंकी राजा) को भी जीतकर 'राजाधिराज' और 'परमेश्वर' के विरुद धारण किये। इनके अतिरिक्त उसने कलिंग, कौशल, श्रीशैल, मालव, टंक आदि देशों के राजाओं को जीतकर 'श्रीवल्लभ' नाम धारण किया। उसने कांची, केरल, चोल तथा पांड्य देशों एवं श्रीहर्ष (कन्नौज का प्रसिद्ध राजा) तथा वज्रट को जीतनेवाले कर्णाटक (सोलंकियों) के असंख्य लश्कर को जीता, जो अजेय कहलाता था। दंतिदुर्ग के पीछे राठोड़ों के इस महा-राज्य का स्वामी उसका चाचा कृष्णराज हुआ, जिसने अपने राज्य की

और भी वृद्धि की। उसका बनवाया हुआ एलोरा (निज़ाम राज्य) का 'कैलाश' मंदिर संसार की शिल्पकला का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

कृष्णराज के बाद गोविंदराज (दूसरा) हुआ, जिसे परास्त कर उसका भाई ध्रुवराज राज्य का स्वामी बना। ध्रुवराज बड़ा पराक्रमी राजा था। उसने कौशल और उत्तराखंड के कई राजाओं को परास्त किया। उसका राज्य रामेश्वर से अयोध्या तक फैला हुआ था। तदनन्तर गोविंद-राज तीसरा सिंहासनारूढ़ हुआ। वह गुजरात और मालवे को अधीन कर विंध्याचल के निकट तक जा पहुंचा। तुंगभद्रा, वेंगी, गंगवाडी, केरल, पांड्य, चोल और कांची के नरेशों को परास्त कर उसने सिंहल के राजा को अपने अधीन बनाया। फिर उसने प्रतिहार राजा नागभट को हराकर मारवाड़ में भगा दिया। गोविंदराज की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र अमोघ-वर्ष दक्षिण के महाराज्य का स्वामी हुआ जो बड़ा प्रतापी था। मान्यखेट (मालखेड़, निज़ाम राज्यान्तर्गत) उसकी राजधानी थी। उसने भी कई राजाओं को परास्त कर अपने राज्य का विस्तार बढ़ाया। सिलसिल-तु-त्तवारीख़ के लेखक सुलेमान सौदागर ने, जो उसका समकालीन था, उसके विषय में लिखा है कि वह दुनियां के चार बड़े बादशाहों में से एक था।

अमोघवर्ष से लगाकर उसके सातवें वंशधर कृष्णराज (तीसरा) तक दक्षिण का राठोड़ राज्य उन्नत रहा। अरब यात्री अल-मसऊदी ने, जो कृष्ण-राज (तीसरा) के समय विद्यमान था, हि० स० ३३२ (वि० सं० १००१= ई० स० ९४४) में 'मुरु-जल-जहब' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें लिखा है—"इस समय हिंदुस्तान के राजाओं में सब से बड़ा मान्यखेट नगर का राजा बलहरा (राठोड़) है। हिंदुस्तान के बहुत से राजा उसको अपना मालिक मानते हैं। उसके पास हाथी और असंख्य लश्कर है, जिसमें पैदल सेना अधिक है, क्योंकि उसकी राजधानी पहाड़ों में है।"

समय के परिवर्त्तन के अनुसार कृष्णराज (तीसरा) के छोटे भाई खोट्टिग के समय इस महाराज्य की अवनति होने लगी। मालवे के परमार, जो पहले राठोड़ों के सामंत थे, उस (खोट्टिग) के विरोधी हो गये और

वि० सं० १०२६ (ई० स० ९७२) में उस (खोट्टिग) को मालवे के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने परास्त कर उसकी राजधानी मान्यखेट को लूटा। तदनन्तर वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) में खोट्टिग के उत्तराधिकारी कर्कराज (दूसरा) से सोलंकी राजा तैलप ने दक्षिण के राठोड़ों का महाराज्य छीन लिया। इस समय गंगवंशी नोलंबांतक मारसिंह एवं कतिपय राठोड़ सरदारों ने कृष्णराज (तीसरा) के पुत्र इन्द्रराज (चौथा) को गद्दी पर बैठाकर राठोड़ राज्य क़ायम रखने का प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता नहीं मिली और थोड़े समय के अन्तर से मारसिंह और इन्द्रराज (चौथा) अनशन करके मर गये।

राठोड़वंश की अन्य शाखाएं

दक्षिण के राठोड़ों की कई छोटी शाखाएं थीं, जिनको जागीर में गुजरात (लाट), काठियावाड़ और सौंदत्ति (बंबई आहाते के धारवाड़ ज़िले के परसगढ़ विभाग में) के प्रदेश मिले हुए थे। गुजरात के राठोड़ राज्य का वि० सं० ९४५ (ई० स० ८८८) तक विद्यमान होना पाया जाता है। उसके पीछे मान्यखेट के राठोड़ राजा कृष्णराज (दूसरा) ने गुजरात पीछा अपने राज्य में मिला लिया, किन्तु सौंदत्ति की शाखा, मान्यखेड़ का विशाल राज्य सोलंकियों-द्वारा छिन जाने पर भी वि० सं० १२८५ (ई० स० १२२८) तक वहां पर अपना अधिकार रखती थी और सोलंकियों के अधीन थी। पश्चात् सौंदत्ति का राज्य देवगिरि के यादव राजा सिंघण ने छीन लिया।

इनके अतिरिक्त मध्यप्रांत, राजपूताना तथा बदायूं (संयुक्त प्रान्त) में भी राठोड़ों के छोटे-बड़े राज्य रहे थे। यही नहीं बिहार के गया (पीठी) में भी राठोड़ राज्य होना पाया जाता है।

मध्य प्रांत में मानपुर (संभवत: मऊ के आसपास) और बेतुल (मध्य प्रदेश) में विक्रम की सातवीं शताब्दी के आस-पास तक राठोड़ों का अधिकार था, पर उनका स्वतन्त्र राज्य होना पाया नहीं जाता। भोपाल राज्य के पथारी में वि० सं० ९१७ (ई० स० ८६०) में राठोड़ों का अधिकार था।

बुद्ध गया (बिहार) से मिले हुए एक शिलालेख में क्रमशः राठोड़ नन्न, कीर्तिराज और तुंग के नाम मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि उपर्युक्त व्यक्तियों का दसवीं शताब्दी में बुद्ध गया से संबंध था।

राजपूताने में हथुंडी (जोधपुर राज्य) में वि० सं० ६६३ से १०५३ (ई० स० ६३६ से ६६६) के कुछ पीछे तक और धनोप (शाहपुरा राज्य) में वि० सं० १०६३ (ई० स० १००६) में राठोड़ों का अधिकार था।

संयुक्त प्रान्त के बदायूं नामक स्थान में राठोड़ों का राज्य विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास जम गया था। फिर उन्होंने प्रतिहारों की निर्बलता का अवसर पाकर कन्नौज के राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया, किन्तु वहां वे अपना अधिकार स्थिर न रख सके और गाहड़वाल चंद्रदेव ने उनसे कन्नौज का राज्य छीन लिया। तब से वे गाहड़वालों के सामंत हो गये। वि० सं० १२५० (ई० स० ११६३) में शहाबुद्दीन गोरी ने कन्नौज के अंतिम गाहड़वाल राजा जयचंद्र पर विजय प्राप्तकर वहां अपना अधिकार कर लिया। ई० स० ११६६ (वि० सं० १२५३) में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बदायूं को विजयकर वहां भी मुसलमानों का अधिकार स्थापित किया।

बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बनवाई हुई बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल की संस्कृत की वि० सं० १६५० माघ सुदि ६ (ई० स० १५६४ ता० १७ जनवरी) गुरुवार की बृहत् प्रशस्ति में भाटों के कथानुसार राजपूताना के वर्तमान राठोड़ों को कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द्र का वंशधर लिखा है और यहां के राठोड़ अब तक अपने को जयचन्द्र का ही वंशधर मानते हैं; किन्तु यह ठीक नहीं है। जयचन्द्र वस्तुतः गाहड़वाल था। उसके पूर्वजों के ताम्रपत्रों और शिलालेखों में उनको कहीं भी राठोड़ नहीं लिखा है, वरन् कई स्थलों पर गाहड़वाल ही लिखा है, जो अधिक माननीय है। इन ताम्रपत्रों के आधार पर आधुनिक पुरातत्ववेत्ता भी ऐसा ही मानते हैं। ये दोनों जातियां भिन्न होने से अब भी जहां गाहड़वालों की आबादी है वहां राठोड़ों के साथ

जयचन्द्र और राठोड़

उनके विवाह सम्बन्ध होते हैं। इसका विशद विवेचन हमने जोधपुर राज्य के इतिहास में किया है।

कन्नौज के महाराज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने के बाद कुंवर सेतराम का पुत्र राठोड़ सीहा वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के आस-पास राजपूताने में आया और पाली नगर में ठहरा, जहां के ब्राह्मण बड़े सम्पन्न थे और उनका व्यापार दूर दूर तक चलता था। उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर उस (सीहा) ने वहां के आस-पास के प्रदेश पर दख़ल जमाना आरम्भ किया। वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स० १२७३ ता० ६ अक्टोबर) सोमवार को किसी लड़ाई में बीठू गांव (पाली से १४ मील उत्तर-पश्चिम) में उसकी मृत्यु हुई। सीहा की मृत्यु के उपरांत आस्थान अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, जिसके समय में उसके भाई सोनिंग ने गोहिलों से खेड़ का इलाक़ा लिया। तदनन्तर उस-(आस्थान) का पुत्र धूहड़ हुआ, जिसकी वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) में पचपदरा परगने के तिंगड़ी (तिरसींगड़ी) गांव में मृत्यु हुई।

राठोड़ों के मूल पुरुष राव सीहा से राव जोधा तक का संक्षिप्त परिचय

धूहड़ के पीछे रायपाल, कन्हपाल, जाल्हणसी, छाड़ा, टीडा और सलखा हुए। राव सलखा के ज्येष्ठ पुत्र माला (मल्लीनाथ) ने महेवा का प्रांत विजय किया, जो मालाणी कहलाता है। उसने अपनी उपाधि रावल रक्खी। उसके वंशज महेचे कहलाये और मालाणी के स्वामी रहे। मल्लीनाथ के छोटे भाइयों में से एक वीरम था, जिसने महेवा का परित्याग कर वर्तमान बीकानेर राज्य में आकर निवास किया और वहां जोहियों के साथ की लड़ाई में मारा गया।

वीरम का पुत्र चूंडा प्रतापी हुआ। उसने अपना बाल्यकाल कष्ट में बिताने पर भी साहस न छोड़ा और पूर्वजों-द्वारा प्राप्त भूमि न मिलने पर भी निज बाहुबल से बड़ी ख्याति प्राप्त की एवं मंडोवर के ईंदा पड़िहारों (प्रतिहारों) से उनका इलाक़ा (मंडोवर) दहेज में पाकर उसने अपने वंशजों के लिए मंडोवर का राज्य स्थापित कर लिया। अनन्तर उसने

मुसलमानों के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण कर नागोर पर भी अधिकार कर लिया, जहां पीछे से वह मुसलमानों के साथ की लड़ाई में मारा गया। अपनी प्रीतिपात्री राणी के कहने में आकर जब राव चूंडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को राज्य से वंचित कर छोटे पुत्र कान्हा को राज्य देना चाहा, तब रणमल मेवाड़ के महाराणा लाखा (लक्षसिंह) के पास चित्तौड़ आ रहा, जहां उसने महाराणा से जागीर प्राप्त की। चित्तौड़ में रहते समय रणमल ने अपनी बहिन हांसबाई का विवाह महाराणा लाखा के ज्येष्ठ कुंवर चूंडा से करना चाहा, परंतु उसने महाराणा के हंसी में कहे हुए वाक्यों से प्रेरित होकर उक्त विवाह से निषेध कर दिया। तब रणमल ने चूंडा के यह प्रतिज्ञा करने पर कि 'उक्त कुंवरी से उत्पन्न पुत्र ही मेवाड़ का स्वामी होगा' हांसबाई का विवाह महाराणा लाखा के साथ कर दिया, जिसके गर्भ से महाराणा मोकल का जन्म हुआ। महाराणा लाखा की मृत्यु होने पर उसका छोटा पुत्र मोकल अपने ज्येष्ठ भ्राता चूंडा की पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मेवाड़ का स्वामी हुआ, किन्तु वह (मोकल) कम-उम्र था, इसलिए राज-कार्य उसका ज्येष्ठ भ्राता सत्यव्रत रावत चूंडा चलाता था। कुछ समय बाद मोकल की माता हांसबाई ने उस(रावत चूंडा)पर अविश्वास किया। इसपर वह मेवाड़ छोड़कर मालवे के सुलतान होशंग के पास चला गया। चूंडा के चित्तौड़ से चले जाने पर मेवाड़ के शासन-कार्य में रणमल का बहुत कुछ हाथ रहा।

मंडोवर के राव चूंडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ, परंतु वह शीघ्र ही काल-कवलित हो गया। तब उसका भाई सत्ता वहां का स्वामी बन बैठा। इसपर रणमल ने मेवाड़ की सेना के साथ जाकर सत्ता से मंडोवर का राज्य छीन लिया। मेवाड़ के महाराणा मोकल के—चाचा और मेरा नामक महाराणा खेता (क्षेत्रसिंह) के दासीपुत्रों के हाथ से—मारे जाने पर राव रणमल ने मेवाड़ में जाकर आततायियों को दंड दिया और मोकल के पुत्र महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के राज्य के प्रारंभकाल में

वह (रणमल) अपने पुत्रों जोधा आदि सहित मेवाड़ में ही रहा, किंतु महाराणा लाखा के एक पुत्र राघवदेव को मरवा देने के कारण सीसोदियों और राठोड़ों के बीच वैर हो गया। सीसोदियों को रणमल के विषय में संदेह होने लगा, अतएव उन्होंने वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) से पूर्व उसको मरवा डाला।

इस घटना के समय राव रणमल का पुत्र जोधा चित्तोड़ की तलहटी में था। जब उसको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह वहां से भाग निकला। मेवाड़वालों ने उस(राव जोधा)का पीछा किया, किन्तु वह उनके हाथ न आया और बच निकला। इस-पर उन्होंने मंडोवर के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। जोधा ने सीसोदियों से अपना राज्य छुड़ाने के लिए कई वर्ष तक उद्योग किया। अंत में उसका परिश्रम सफल हुआ और वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) के लगभग सीसोदियों से उसने मंडोवर का राज्य छीन लिया। फिर राव जोधा ने वि० सं० १५१६ (श्रावणादि १५१५ = ई० स० १४५९) में अपने नाम से जोधपुर नगर बसाकर पहाड़ी पर दुर्ग बनवाया और वहीं अपनी राजधानी स्थिर की। अनन्तर उसने अपने पराक्रम से आस-पास के कई प्रांतों को विजयकर राज्य का विस्तार बढ़ाया।

राव जोधा की संतति

राव जोधा की ६ राणियों से नीचे लिखे सत्रह[1] पुत्र हुए—

(१) हाड़ी राणी जसमादे से—

१ नींबा—पिता की विद्यमानता में ही मृत्यु हुई।

२ सांतल—राव जोधा की मृत्यु हो जाने पर जोधपुर राज्य का स्वामी हुआ।

३ सूजा—राव सांतल का उत्तराधिकारी हुआ।

३

(१) कहीं-कहीं इनसे अधिक और कहीं कम नाम भी दिये हैं, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में उपर्युक्त सत्रह पुत्रों के नाम ही मिलते हैं (जि० १, पृ० ४६-४७)।

(२) भटियाणी राणी पूरां से—

१ कर्मसी

२ रायपाल

३ वणवीर

४ जसवन्त

५ कूंपा

६ चांदराव

६

(३) सांखली राणी नौरंगदे से—

१ बीका—बीकानेर राज्य का संस्थापक।

२ बीदा—इसने मोहिल चौहानों का प्रदेश छापर द्रोणपुर राव बीका की सहायता से प्राप्त किया, जो बीकानेर राज्य में है और इसके वंशज बीकानेर राज्य के सरदार हैं।

२

(४) हुलणी राणी जमना से—

१ जोगा

२ भारमल

२

(५) सोनगरी राणी चंपा से—

१ दूदा—इसने मेड़ते में ठिकाना बांधा। इसके वंशज मेड़तिया कहलाते हैं।

२ वरसिंह—यह मेड़ते में दूदा के शामिल रहा। फिर मुसलमानों ने इसको मेड़ते से निकाल दिया। वरसिंह के वंशज वरसिंहोत कहलाये। मालवे में झाबुआ का राज्य वरसिंह के वंशजों के अधिकार में है।

२

(६) बघेली राणी बीनां से—

१ सामन्तसिंह

२ शिवराज

२

ख्यातों में राव जोधा के कहीं सात और कहीं इससे भी कम पुत्रियों के नाम दिये हैं। मेवाड़ में घोसुंडी की बावड़ी की वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) की महाराणा रायमल की राठोड़ राणी शृंगारदे की बनवाई हुई संस्कृत-प्रशस्ति में उसको राव जोधा की पुत्री लिखा है, जिसका मेवाड़ और जोधपुर राज्य की ख्यातों में कुछ भी उल्लेख नहीं है।

राव जोधा के उपर्युक्त सत्रह पुत्रों में नींबा सब से बड़ा था, यह तो अधिकांश ख्यातों आदि से सिद्ध हो चुका है, परन्तु नींबा के बाद कौनसा पुत्र बड़ा था, यह विवादग्रस्त विषय है।

वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) के रचे हुए कवि जयसोम के 'कर्म-चन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखा है— "(दूसरी) महाराणी जसमादेवी के तीन लड़के, नींबा, सूजा और सांतल नाम के थे और वह राजा का जीवन-सर्वस्व थी। जब दैवयोग से नींबा नाम के पुत्र की कथा ही बाक़ी रह गई (अर्थात् वह मर गया) तब जसमादेवी ने, जिसे स्त्री-स्वभाव से अपनी सौतों के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ, यह होनहार ही है, ऐसा सोच-कर एकान्त में विक्रम नाम के अपनी सौत के पुत्र की अनुपस्थिति में राजा को अपने पुत्र के विषय की कुछ रोचक कथा कही। तब राजा ने पत्नी के कपट से मोहित होकर अपने बेटे विक्रम को जांगल में निकाल देने की इच्छा से अपने पास बुलाकर यह कहा—'हे पुत्र ! बाप के राज्य को बेटा भोगे इसमें कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु जो नया राज्य प्राप्त करे वही बेटों में मुख्य गिना जाता है। पृथ्वी पर कठिनता से वश में आनेवाला जांगल नामक देश है; तू साहसी है इसलिये मैंने तुझे

इस काम में (अर्थात् उसे वश करने में) नियुक्त किया है[1] ।"

उपर्युक्त 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' के अवतरण से तो यही पाया जाता है कि नींबा के बाद कुंवर बीका ही राव जोधा के पुत्रों में बड़ा था। यह काव्य, ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण इसके कथन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

बीका ने असीम पितृभक्ति-वश पिता के कहे हुए वाक्यों से प्रभावित होकर नवीन राज्य स्थापित करने का दृढ़ विचार कर लिया और अपने हितचिंतकों एवं नापा सांखला की सम्मति के अनुसार पिता के जीवन-काल में ही जांगल देश की तरफ़ जाकर निज बाहुबल से शीघ्र ही उसने अपने वंशजों के लिए एक बृहत् राज्य की स्थापना कर ली।

जोधा की मृत्यु होने पर सांतल गद्दी पर बैठा, जिसकी अब तक

---

(१) नींबासूजासातलनामसुतत्रययुता महाराज्ञी ।
जसमादेवीनाम्नी राज्ञो जीवस्य सर्वस्वं ॥ ११० ॥

नींबाख्ये संजाते दैवनियोगात्सुते कथाशेषे ।
जातिस्वभावदोषाज्जातामर्षा सपत्नीषु ॥ १११ ॥

विक्रमनामसपत्नीसुतेऽसति स्वात्मजे कथां रम्यां ।
भावीति विभाव्यात्मनि विजने राजानमाचष्ट ॥ ११२ ॥

(त्रिभिः कुलकं)

ततो निजात्मजं जायामायया मोहितोऽधिपः ।
विक्रमं जंगले मोक्तुं समाहूयेदमुक्तवान् ॥ ११३ ॥

पित्र्यं राज्यं सुतो भुंक्ते किं चित्रं तत्र नंदन ।
नवं राज्यं य आदत्ते स धत्ते सुतधुर्यतां ॥ ११४ ॥

तेन देशोस्ति दुःसाधो जंगलो जगतीतले ।
त्वं साहसीति कृत्येऽस्मिन्नियुक्तोऽसि मयाधुना ॥ ११५ ॥

कोई भी जन्मपत्री नहीं मिली है, अतएव उसके जन्म-संवत् के विषय में निश्चित् रूप से कुछ कह सकना कठिन है। सांतल के उत्तराधिकारी सूजा का जन्म-संवत् जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्रियों में १४९६ (ई० स० १४३९) तथा बीका का १४९७ (ई० स० १४४०) दिया है। इस हिसाब से सूजा बीका से लगभग एक वर्ष बड़ा होता है, परन्तु इसके विपरीत बीकानेर राज्य से मिलनेवाले जन्मपत्रियों के संग्रह में बीका का जन्म वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में होना लिखा है[1]। इस हिसाब से सूजा बीका से एक वर्ष छोटा हो जाता है। इन जन्म-पत्रियों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण, कौनसी विश्वसनीय है यह कहना कठिन है। टेसिटोरी को जोधपुर की एक दूसरी ख्यात में सूजा का जन्म-संवत् १४९९ (ई० स० १४४२) प्राप्त हुआ है[2]। यदि यह ठीक हो तो यही सिद्ध होता है कि बीका हर हालत में सूजा से बड़ा था।

टेसिटोरी को फलोधी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि जोधा की मृत्यु पर टीका जोगा को देते थे, पर उसके यह कह देने पर कि मेरे बाल सुखा लेने तक ठहर जाओ, लोगों ने टीका सांतल को दे दिया[3]। इस कथन से तो यही ज्ञात होता है कि सांतल भी वास्तविक उत्तराधिकारी न था, परन्तु जोगा को मन्द-बुद्धि देख टीका सांतल को दे दिया गया। बीका की अनुपस्थिति में ऐसा हो जाना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। फिर अधिकांश ख्यातों से यह भी पता चलता है कि जोधा ने पूजनीक चीज़ें देने का वादा कर बीका से जोधपुर के राज्य का दावा न करने का वचन ले लिया था।

बीका सांतल से बड़ा न रहा हो अथवा उसने पिता को वचन

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १।

(२) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जिल्द १५ (ई० स० १९१९), पृ० ७१।

(३) वही; जिल्द १५ (ई० स० १९१९), पृष्ठ ७२ तथा टिप्पण ५।

दिया था, इस कारण से सांतल के गद्दी पर बैठने पर कोई हस्तक्षेप न किया, परन्तु जब सूजा ने सांतल की मृत्यु पर जोधपुर की गद्दी स्वयं हस्तगत कर ली तब तो बीका ने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई का उल्लेख बीकानेर तथा जोधपुर की ख्यातों में मिलता है। जोधपुर के प्रसिद्ध कविराजा बांकीदास के 'ऐतिहासिक बातों के संग्रह' से पाया जाता है कि जोधपुर सूजा के पास रहा, परन्तु बीका और सूजा में बीका बड़ा था तथा सूजा छोटा। राज-माता हाड़ी ने भंवर ढोल, भुंजाई की देग, लक्ष्मीनारायण की मूर्ति, नागणेची की मूर्ति, तख़्त इत्यादिक पूजनीक चीज़ें[1] बीका को दीं, जिन्हें लेकर वह बीकानेर लौट गया[2]। कविराजा श्यामलदास-लिखित 'वीरविनोद' में बीकानेर के इतिहास में लिखा है—"सूजा के गद्दी पर बैठने के बाद राव-बीका ने जंगी फ़ौज के साथ जोधपुर पर चढ़ाई की, क्योंकि सांतल के बाद जोधा के पुत्रों में यही सब से बड़ा था।......बीका ने शहर और क़िले पर घेरा डाला। आख़िर इस शर्त पर फ़ैसला हुआ कि जो चीज़ें इज़्ज़त और करामात की समझी जाती थीं बीका ने ले लीं और जोधपुर का राज्य मारवाड़-सहित सूजा के कब्ज़े में रहा[3]।" 'इतिहास राजस्थान' का रचयिता रामनाथ रत्नू राव सूजा के प्रसंग में लिखता है—"सूजा के गद्दी बैठते ही जोधाजी के तीसरे पुत्र बीका ने सूरजमल (सूजा) से बड़े होने के कारण जोधपुर की गद्दी का दाइया (दावा) किया और बहुत कुछ सेना के साथ जोधपुर को कूच किया। ......सूजा ने जोधा को छत्र आदि पूजनीक चीज़ें देकर संधि कर ली[4]।"

---

(१) इन पूजनीक चीज़ों की संख्या १४ है, जिनमें तख़्त, राव जोधा की ढाल तलवार, नागणेची की १८ हाथोंवाली मूर्ति आदि हैं, जो बीकानेर के क़िले में अब तक सुरक्षित हैं। प्रति वर्ष विजयादशमी और दीपावलि के दिन स्वयं महाराजा साहब इनकी पूजा करते हैं।

(२) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११।

(३) वीरविनोद; भाग २, पृष्ठ ४८०।

(४) इतिहास राजस्थान; पृष्ठ १४३-४।

सिंढायच कवि दयालदास लिखता है—"बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई कर गढ़ को घेर लिया। बारह दिन बाद सूजा की माता ने स्वयं उसके पास आकर उसे बड़ा माना तथा पूजनीक वस्तुएं उसे देकर सुलह कर ली[1]।" कैप्टेन पी० डब्ल्यू० पाउलेट अपने 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में लिखता है—"सांतल के बाद सूजा गद्दी पर बैठा, तब बीका ने जोधा के जीवित पुत्रों में सब से बड़ा होने के कारण पूजनीक चीज़ें जोधपुर से लाने के लिए बेला पड़िहार को भेजा, परन्तु जब उसने ये वस्तुएं देने से इनकार कर दिया तो एक विशाल सेना के साथ बीका ने सूजा पर चढ़ाई कर दी और उस(सूजा)की भेजी हुई सेना को परास्त कर गढ़ को घेर लिया। कुछ दिनों बाद पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग बहुत घबरा गये तो सूजा की माता जसमादेवी ने स्वयं बीका के पास जा कर उसे पूजनीक चीज़ें दीं और सुलह कर ली[2]।"

मुंशी देवीप्रसाद ने भी 'राव बीकाजी के जीवनचरित्र' में बीका की इस चढ़ाई का उल्लेख किया है और उसे कई स्थल पर जोधा का उत्तराधिकारी माना है तथा यह भी लिखा है—"बारह दिन तक गढ़ पर घेरा रहने के बाद सूजा ने अपनी माता को बीका के पास भेजा, जिसने बीका को बड़ा स्वीकार किया तथा पूजनीक चीज़ें उसे दीं[3]।" जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना पर परदा डालने का प्रयत्न किया गया है। राव जोधा, बीका, सांतल तथा सूजा के प्रसंग में कहीं भी इस घटना का उल्लेख नहीं है, किंतु वरजांग भीमावत के प्रसंग में सांतल की मृत्यु के बाद सूजा के मारवाड़ की गद्दी पर बैठने पर बीका का जोधपुर पर चढ़ आना लिखा है। ख्यातों में बहुधा कुंवरों के नाम राणियों के साथ दिये जाते हैं, इसलिए उनसे छोटे बड़े का कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता[4]।

(१) दयालदास की ख्यात, जिल्द २, पत्र ५-६।

(२) पृ० ६।

(३) पृ० ३५-३६।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५६ तथा ७६-७७।

उपर्युक्त अवतरणों से तो यही सिद्ध होता है कि बीका ने सूजा से ज्येष्ठ होने के कारण ही जोधपुर पर चढ़ाई की होगी और इस सम्बन्ध में टॉड का यह मत कि वह (बीका) जोधा का छठा पुत्र था[1], माननीय नहीं हो सकता।

(१) टॉड राजस्थान (ऑक्सफ़र्ड संस्करण); जि० २, पृ० ६९० ।

चौथा अध्याय

राव बीका से राव जैतसी तक

राव बीका

जन्म

जोधपुर के स्वामी राव जोधा की सांखली राणी नौरंगदे[1] से बीका (विक्रम) का जन्म वि० सं० १४६५ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १४३८ ता० ५ अगस्त) मंगलवार को हुआ था[2]।

बीका का जांगलदेश विजय करना

एक दिन जब राव जोधा दरबार में बैठा हुआ था, बीका भीतर से आया और उस(बीका)से तथा कांधल से कान में बातें होने लगीं। जोधा ने यह देखकर पूछा—"आज चाचा भतीजे क्या सलाह कर रहे हैं? क्या कोई नया ठिकाना जीतने की बात हो रही है?" कांधल ने उत्तर दिया—"आपके प्रताप से यह भी हो जायगा।" उन दिनों जांगलू का नापा

---

(१) विक्रमबीदानामकजातसुता सांखलाह्वगोत्रीया।
नवरंगदेऽभिधाना जज्ञे राज्ञः पुरा पत्नी ॥ १०६ ॥
(जयसोम; कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। देशदर्पण; पृ० २३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १।

जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्री में बीका का जन्म वि० सं० १४९७ (ई० स० १४४०) में होना लिखा है तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में भी ऐसा ही दिया है (जि० १, पृ० ४६)।

सांखला[1] भी दरबार में आया हुआ था। उसने बीका से कहा—"परगना जांगलू बिलोचों के आक्रमण से कमज़ोर हो गया है और कुछ सांखले उसका परित्याग कर अन्यत्र चले गये हैं। यदि आप चाहें तो वहां सरलता से अधिकार किया जा सकता है।" राव जोधा को भी यह बात पसन्द हुई और उसने बीका तथा कांधल को नापा के साथ जाकर नया राज्य स्थापित करने के लिए आज्ञा दे दी। तब बीका ने अपने चाचा कांधल, रूपा, मांडण, मंडला, नाथू; भाई जोगा, बीदा; पड़िहार बेला, नापा सांखला, महता लाला, लाखण, बच्छावत महता वरसिंह तथा अन्य राजपूतों आदि के साथ वि० सं० १५२२[2] आश्विन सुदि १० (ई० स० १४६५ ता० ३० सितंबर) को जोधपुर से प्रस्थान किया। कहते हैं कि इस अवसर पर बीका के साथ १०० घोड़े तथा ५०० राजपूत थे[3]। बीका के मिले हुए मृत्यु-स्मारक लेख में भी लिखा है कि पिता का वचन सुनकर बीका ने प्रणाम किया तथा राजा (जोधा) के छोटे भाई(कांधल)द्वारा प्रेरित होकर शत्रुओं के समूह का नाशकर नया राज्य प्राप्त किया[4]।

---

(१) सांखले महीपाल का पुत्र रायसी रूण को छोड़कर जांगलू आया और विवाह के मिस से वहां के स्वामी को मार जांगलू का स्वामी बन बैठा। उसके आठवें वंशधर माणकराव का पुत्र नापा जब गद्दी पर बैठा तो बिलोचों ने उसे आ दबाया, जिससे वह राव जोधा के पास जोधपुर चला गया।

(मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० २३९-४०)।

(२) देशदर्पण में वि० सं० १५२७=ई० स० १४७० (पृ० २३) तथा टॉड-कृत 'राजस्थान' में वि० सं० १५१५=ई० स० १४५८ (जि० २, पृ० ११२३ ऑक्सफ़र्ड संस्करण) दिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १-४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १। टॉड-कृत 'राजस्थान' में बीका के साथ ३०० राठोड़ों का आना लिखा है (जिल्द २, पृ० ११२३)।

(४) श्रुत्वा पितृवचः प्रणाममकरोद् भूपानुजप्रेरितः।
हत्वा शत्रुवनं स्वभिच्च (?) सहितः राज्यं परं प्राप्तवान्॥

मंडोवर होता हुआ बीका देशणोक पहुंचा, जहां उसने करणीजी[1] का दर्शन किया, जिसने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—"तेरा प्रताप जोधा से सवाया बढ़ेगा और बहुत से भूपति तेरे चाकर होंगे।" वहां से वह चांडासर आदि स्थानों पर अपना अधिकार जमाता हुआ कोड़मदेसर में जाकर रहा[2], जहां उसने अपने को वि० सं० १५२६ (ई० स० १४७२) में राजा घोषित किया[3]। फिर उसने जांगलू पहुंचकर सांखलों के ८४ गांव अपने अधीन कर[4] अपनी सेना और राज्य का विस्तार बढ़ाना शुरू किया।[5]

ख्यातों आदि से पाया जाता है कि पूगल का भाटी राव शेखा[6]

(१) करणीजी, जिनका जन्म वि० सं० १४४४ आश्विन सुदि ७ (ई० स० १३८७ ता० २० सितम्बर) को हुआ था, गांव सुवाप (जोधपुर राज्य) के चारण मेहा की पुत्री थीं और सांठी (बीकानेर राज्य) के बीठू केलू के पुत्र देपा को ब्याही गई थीं। उनको आस पास के लोग देवी का अवतार मानते थे और उनका विश्वास था कि उनमें भविष्य की बातें बता देने की अभूतपूर्व शक्ति है। कहते हैं कि बीका को बीकानेर का राज्य उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुआ था। बीकानेर के राजघराने में अब तक करणीजी पर पूर्ण श्रद्धा है और प्रति वर्ष हज़ारों यात्री दर्शनार्थ देशणोक जाते हैं, जहां आश्विन की नवरात्रि में मेला लगता है। वर्तमान बीकानेर नरेश को भी करणीजी पर बड़ी श्रद्धा है।

(२) दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र १। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १९८।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६।

(५) 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' (श्लोक १२४) से भी पाया जाता है कि कठिनता से वश में आनेवाले सब पुराने भूस्वामियों (भोमियों) को वहां से बलात्कारपूर्वक निकालकर बलवान् (विक्रम) राजा ने उसी देश से सवारों आदि की सेना तैयार की।

(६) जैसलमेर के रावल केहर का ज्येष्ठ पुत्र केलण था। उसने पिता की आज्ञा के बिना अपना विवाह महेचों के यहां कर लिया था, जिससे केहर ने उसको निर्वासित कर अपने दूसरे पुत्र लक्ष्मण को उत्तराधिकारी बनाया। केलण ने अपने बाहुबल से

बड़ा लुटेरा था और इधर-उधर लूटमार किया करता था। एक बार वह मुलतान की ओर चला गया। वहां से लूट-मार कर जब लौट रहा था तो वहां के सूबेदार की सेना से उसकी मुठभेड़ हो गई, जिसमें उसके बहुत से साथी काम आये तथा वह पकड़ा जाकर मुलतान में क़ैद कर दिया गया। उसको मुक्त कराने के बदले में उसकी ठकुराणी ने अपनी पुत्री रंगकुंवरी का विवाह बीका के साथ कर दिया[1]।

शेखा की पुत्री से बीका का विवाह

उपर्युक्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' से भिन्न, उसी नाम का एक अन्य समकालीन ग्रंथ मिला है, जिसके बनाने-वाले के नाम का पता नहीं, पर वह बीठू सूजा के ग्रन्थ से बड़ा है। उसमें लिखा है—'राव शेखा लंगों[2] के लिए कांटे के समान था, अतएव उन्होंने उसके भाई तिलोकसी और जगमाल को अपने पक्ष में मिलाकर उनकी

नया इलाक़ा—बीकमपुर—क़ायम किया। उसका पुत्र चाचा पूगल का स्वामी हुआ। चाचा का पुत्र वैरसल और उसका बेटा शेखा था।

(मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३२०, ३२१, ३६५)।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १; मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ६-७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २-३।

बीका की राणी रंगकुंवरी का उल्लेख 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' के श्लोक १२६ में भी है, जहां उसका नाम रंगादेवी दिया है।

(२) सिन्ध तथा उसके आसपास के प्रदेश पर ई० स० १०५० से १३५१ (वि० सं० ११०७ से १४०८) तक सुमरा राजपूतों का अधिकार रहा, जो पीछे से मुसलमान बना लिये गये। उनके बाद क्रमशः सम्मा, अर्गून् तथा तरखानों का वहां पर राज्य रहा। तैमूर के आक्रमण के बाद मुलतान की गद्दी पर कुरेशी शेख़ बैठा, जिसको हटाकर ई० स० १४५४ (वि० सं० १५११) में सीवी के स्वामी ने वहां पर अधिकार कर लिया और कुतुबुद्दीन मुहम्मद लंघा का विरुद धारण किया। उसका पुत्र हुसेन लंघा (ई० स० १४६६-१५०२=वि० सं० १५२६-१५५९) बीका का समकालीन हो सकता है। संभव है उसके काल में उपरोक्त घटना हुई हो।

(इम्पीरियल गैज़ेटियर ऑव् इंडिया; जि० २, पृ० ३७०)।

सहायता से उस(शेखा)को पकड़ने की व्यवस्था की। शेखा के उक्त भाइयों ने ही उसे पकड़कर लंघों के सुपुर्द कर दिया। पीछे तिलोकसी ने मुसलमानों की सहायता से पूगल पर अधिकार कर लिया, लेकिन बीका ने ससैन्य लंघों तथा भाटियों पर चढ़ाई कर उन्हें तितर-बितर कर दिया और शेखा को लंघों के हाथ से छुड़ा लिया[1]। शेखा पुनः पूगल का स्वामी बना। इस विजय के पश्चात् बीका ने पूगल आकर उसकी पुत्री से विवाह किया[2]।'

भाटियों से युद्ध

वि० सं० १५३५ (ई० स० १४७८) में बीका ने कोड़मदेसर तालाब के पास गढ़ बनवाने का आयोजन किया, जिसपर राव शेखा ने कहलाया कि यहां गढ़ न बनवाकर जांगलू की हद में बनवाओ, परन्तु बीका ने इसपर ध्यान न दिया। तब तो भाटियों ने उसे वहां से हटाने के लिए सलाह की और शेखा से कहा—"अब तो अपनी भूमि जाने का भय है, इसलिए शीघ्र कोई प्रबन्ध करना चाहिये।" परन्तु शेखा ने उत्तर दिया—"मैं तो प्रकट रूप से सहायता नहीं दे सकता, तुम्हीं कुछ उपाय करो।" तब भाटियों ने मिलकर जैसलमेर के रावल केहर के छोटे पुत्रों में से कलिकर्ण[3] को,

(१) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी बीका-द्वारा शेखा के छुड़ाये जाने का उल्लेख है (छन्द ४८)। उसी ग्रन्थ के ४३ वें छन्द में बीका का बहुत से लंगाह लोगों (लंघों) को मारना भी लिखा है।

(२) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १९१७, पृ० २३३।

बीका के आश्रित बारठ चोहथ ने उस(बीका)की प्रशंसा में एक गीत लिखा है, जिसमें उसके पूगल तथा वरसलपुर के गढ़ों को मुसलमानों के हाथ से छुड़ाने का वर्णन है। (ज० ए० सो० बं०; सन् १९१७, पृ० २३४)।

(३) जैसलमेर के दीवान नथमल की आज्ञा से लिखित 'जैसलमेर के इतिहास' में ८० वर्ष के वृद्ध कालिकर्ण के स्थान में रावल देवीदास का बीका पर चढ़कर जाने का उल्लेख है। उक्त पुस्तक से पाया जाता है कि देवीदास बीका का गढ़ नष्ट कर वहां के किवाड़ तथा एक तराजू ले गया, जिनमें से किवाड़ वरसलपुर के दरवाज़े में लगवाये गये और तराजू सदर सायर में रक्खी गई (पृ० ४८)। व्यास

जो ८० वर्ष का था, सहायता के लिए बुलवाया। वह २००० सेना सहित बीका पर चढ़ा और उसने शेखा को भी आने को कहा, पर वह न आया। उधर बीका भी अपने काका कांधल और भाई बीदा तथा अन्य सरदारों से सलाह कर लड़ने के लिए सम्मुख आया। इस युद्ध में भाटियों की हार हुई और कलिकर्ण ३०० साथियों सहित काम आया[1]।

इतना होने पर भी भाटियों ने बीका को तंग करना न छोड़ा। तब तो किसी अन्य स्थान पर गढ़ बनवाने का मन में विचार कर बीका

गोविन्द मधुवन रचित 'भट्टिवंश प्रशस्ति' नामक काव्य में यह घटना लूणकर्ण के समय में लिखी है।

श्रीबीकानगराधिपोतिबलवान्श्रीलूणकर्णः प्रभुः
सेहे यस्य पराक्रमं न महतो विद्रावितः संगरात् ॥
उद्वास्यास्य पुरं कपाटयुगलं चानीय तत्पत्तनात्
संस्थाप्याशु निजे पुरे यदुपतिः प्रीतोभवद् विक्रमी ॥ ४४ ॥
............कपाट युगलं दानीं तुलां चाप्यथो
नूनं नेत्रयुगं श्रियं च वसतेर्नीत्वा ययौ स्वं पुरं ॥ ४७ ॥

(भट्टिवंशप्रशस्तिकाव्य)।

परंतु उपर्युक्त कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। यदि इस घटना में सत्य का अंश हो तो यही मानना पड़ेगा कि बीका के समय जब राठोड़ कोड़मदेसर में गढ़ बनाते थे उस समय भाटियों ने उसपर चढ़ाई की हो और वहां के किवाड़ आदि ले गये हों। गोविन्द मधुवन ने अपना काव्य रावल कल्याणसिंह के समय—जिसका देहान्त वि० सं० १६८३ और १६८५ (ई० स० १६२६ और १६२८) के बीच किसी समय हुआ था—अर्थात् उक्त घटना से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पीछे बनाया था। ऐसी दशा में बीका के स्थान में लूणकर्ण लिखा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र २। मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ८-१०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३।

मुंहणोत नैणसी ने बीकानेर का गढ़ पूर्ण हो जाने पर कलिकर्ण का बीका पर चढ़ आना तथा मारा जाना लिखा है (जि० २, पृ० २०४-५), जो ठीक नहीं प्रतीत होता।

गढ़ तथा नगर बीकानेर की स्थापना

ने नापा सांखला से सलाह की। शुभलक्षण आदि का विचार करने के उपरान्त रातीघाटी पर वि० सं० १५४२ (ई० स० १४८५) में गढ़ की नींव रक्खी गई और वि० सं० १५४५ वैशाख सुदि २ (ई० स० १४८८ ता० १२ अप्रेल) को उस गढ़ के आस-पास बीका ने अपने नाम पर बीकानेर नामक नगर बसाया[1]।

राणा ऊदा का बीकानेर आना

प्रतापी महाराणा कुंभा को मारकर वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में उसका ज्येष्ठ पुत्र ऊदा मेवाड़ का स्वामी बन गया, परन्तु राजपूताने के लोग पितृघाती को प्राचीन काल से ही 'हत्यारा' कहते और उसका मुख देखने से घृणा करते थे; इतना ही नहीं, किन्तु वंशावली-लेखक उसका नाम तक वंशावली में नहीं लिखते थे। ठीक वैसा ही व्यवहार ऊदा के साथ भी हुआ। राजभक्त राजपूतों ने धीरे-धीरे उससे किनारा करना आरंभ कर दिया और उसको राज्यच्युत करने का उद्योग

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १९८-९९। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १०-११। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४।

इस विषय में नीचे लिखा हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

पनरे सै पैतालवे, सुद वैशाख सुमेर।
थावर बीज थरप्पियो, बीके बीकानेर॥

'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में एक स्थान में बीका के गढ़ और नगर का नाम 'कोड़िमदेसर' दिया है (श्लोक १३१), जो भूल है, क्योंकि आगे १३८ वें श्लोक में उसी का नाम विक्रमपुर (बीकानेर) दिया है।

टॉड-कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि जिस स्थान पर बीका ने गढ़ बनवाना निश्चय किया, वह नेर नाम के एक जाट की भूमि थी। उसने इस शर्त पर अपनी भूमि बीका को दी कि नवनिर्मित नगर के नाम में उसका नाम भी रहे। इसी से बीका की राजधानी का नाम बीकानेर पड़ा (जि० २, पृ० ११२९-३०); परन्तु टॉड का यह अनुमान ठीक नहीं है, क्योंकि 'नेर' का अर्थ 'नगर' होता है, जैसे भटनेर, जोबनेर, सांगानेर आदि।

बीकानेर नगर का दृश्य

करने लगे। ऊदा ने उनकी प्रीति प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता न मिली, जिससे उसने पड़ोसी राज्यों को सहायक बनाने के लिए उन्हें अपने राज्य के परगने देने शुरू किये। इस कार्य से मेवाड़ के सरदार उससे और भी अप्रसन्न हो गये और परस्पर सलाह कर उन्होंने ऊदा के छोटे भाई रायमल को ईडर से बुलाया, जिसने वहां आकर उन-(सरदारों)की सहायता से जावर, दाड़िमपुर, जावी और पानगढ़ के युद्धों में विजय प्राप्तकर चित्तोड़ को घेर लिया। एक बड़ी लड़ाई के उपरान्त वहां भी रायमल का अधिकार हो गया और ऊदा ने भागकर कुम्भलगढ़ में शरण ली। वहां भी उसका पीछा किया जाने पर वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में वह अपने दोनों पुत्रों—सैंसमल तथा सूरजमल—सहित अपनी सुसराल सोजत में जाकर रहा और पीछे से वह बीका के पास चला गया[1]। बीका ने उसको शरण तो दी, परन्तु उसकी सहायता करना स्वीकार न किया, जिससे कुछ समय तक वहां रहकर वह मांडू के सुलतान ग़यासशाह (ग़यासुद्दीन) ख़िलजी के पास चला गया[2]।

जाटों से युद्ध

उन दिनों बीकानेर के आसपास उत्तर-पूर्व में जाटों का काफ़ी अधिकार था[3]। शेखसर का इलाका गोदारा जाट पांडू के तथा भाडंग, सारन जाट पूला के अधीन थे। गोदारा पांडू बड़ा दानी था। एक दिन उसका एक ढाढ़ी पूला

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृष्ठ ३१। नैणसी लिखता है कि ऊदा की मृत्यु बीकानेर में हुई, परन्तु यह ठीक नहीं है। उसकी मृत्यु मांडू में उसपर बिजली गिरने से हुई थी (वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३८)।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३३८।

(३) ख्यातों आदि के अनुसार उस समय जाटों के निम्नलिखित सात बड़े इलाक़े थे—

१—गोदारा पांडू के अधिकार में लाधड़िया तथा शेखसर।

२—सारण पूला के अधिकार में भाडंग।

३—कस्वां कंवरपाल के अधिकार में सीधमुख।

के यहां मांगने के लिए गया। पूला ने जो कुछ हो सका उसे दिया, परन्तु जब वह अपने महलों में गया तो उसकी स्त्री मल्की ने उससे कहा—"चौधरी ऐसा दान करना था, जिससे पांडू से अधिक यश प्राप्त होता।" पूला उस समय नशे में था, उसने मल्की को मारते हुए कहा—"तुझे पांडू अच्छा लगता है तो तू उसी के पास चली जा।" मल्की को भी यह बात सुनकर क्रोध आ गया। उसने उत्तर दिया—"चौधरी, मैंने तो एक बात कही थी, परन्तु जब तू यही सोचता है तो मैं यदि आज से तेरे पास आऊं तो भाई के पास आऊं।" उसी दिन से मल्की ने पूला से बोलना बंद कर दिया और कुछ दिनों पश्चात् पांडू को सारी घटना का वृत्तान्त पहुंचाकर कहलवाया कि आकर मुझे ले जाओ। प्रायः छः मास बाद पांडू के कहने से उसका पुत्र नकोदर भाड़ंग आकर मल्की से मिला और वह अपने स्थान पर अपनी दासी को छोड़कर उस(नकोदर)के साथ शेखसर चली गई। पांडू बहुत वृद्ध हो गया था, फिर भी उसने मल्की को अपने घर में डाल लिया, परन्तु नकोदर की मां से मल्की की अनबन रहने लगी, जिससे वह (मल्की) गोपलाणा गांव में आ रही। फिर उसने अपने नाम पर मल्कीसर गांव बसाया।

उधर जब भाड़ंग में मल्की की खोज हुई, तो उसी दासी के द्वारा, जिसे मल्की अपने स्थान में छोड़ गई थी, पूला को उसके पांडू के यहां जाने का हाल मालूम हुआ। तब पूला ने रायसाल[४], कंवरपाल[५] आदि जाटों को बुलाकर सलाह की, परन्तु पांडू का सहायक धोका था,

---

४—बेणीवाल रायसाल के अधिकार में रायसलाणा।

५—पूनिया काना (कान्हा) के अधिकार में बड़ी लूंबी।

६—सीहागां चोखा के अधिकार में सूंई।

७—सोहुवा अमरा के अधिकार में धानसी।

ख्यातों के अनुसार उपर्युक्त जाटों के पास बहुत गांव थे।

(१) बेणीवाल जाट, रायसलाणा का स्वामी।

(२) करवा जाट, सीधमुख का स्वामी।

अतएव किसी की भी हिम्मत उसपर चढ़ाई करने की नहीं पड़ती थी। फिर सब मिलकर सिवाणी के स्वामी नरसिंह जाट के पास गये और उसे पांडू पर चढ़ा लाये, जिसपर वह (पांडू) अपने बहुत से साथियों के साथ निकल भागा। बीका तथा कांधल उस समय सीधमुख को लूटने गये थे। पांडू ने उनके पास जाकर सब समाचार कहा और सहायता की याचना की। उन्होंने तुरन्त पूला का पीछा किया और सीधमुख से दो कोस पर नरसिंह आदि को जा घेरा। बीका का आगमन सुनते ही उस गांव के जाट उससे आ मिले और वह स्थल उसे बता दिया जहां नरसिंह सोया हुआ था। बीका ने नरसिंह को जगाकर कहा—"उठ, जोधा का पुत्र आया है।" नरसिंह ने तत्काल वार किया, पर वह खाली गया। तब बीका ने एक ही वार में उसका काम तमाम कर दिया[1]। अनन्तर अन्य जाट आदि भी भाग गये तथा रायसल, कंवरपाल, पूला आदि ने, जो बीका के मारे तंग हो रहे थे, आकर उससे क्षमा मांग ली। इस प्रकार जाटों के सब ठिकाने बीका के अधिकार में आ गये। पांडू को उसकी खैरख्वाही के बदले में यह अधिकार दिया गया कि बीकानेर के राजा का राजतिलक उस(पांडू)के ही वंशजों के हाथ से हुआ करेगा[2] और अब तक यह प्रथा प्रचलित है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०१-३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ११-१८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४-६।

बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी बीका-द्वारा नरसिंह जाट के मारे जाने एवं भाड़ंग के ज़िले के कई भाग ध्वंस किये जाने का उल्लेख है (छन्द ४२), जिससे उपर्युक्त घटना की वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

टॉड-कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि गोदारों का जोइयों तथा भाटियों से वैर रहता था। अतएव बीका के आने पर अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उन्होंने उसे बड़ा मान उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और बीका ने भी यह वचन दिया कि अब से बीकानेर के राजाओं का टीका उसी के वंशजों के हाथ से हुआ करेगा (भाग २, पृ० ११२८-६)।

फिर बीका ने वहां के राजपूतों तथा मुसलमानों की भूमि पर आक्रमण करना शुरू किया। सर्वप्रथम उसने सिंघाणे पर चढ़ाई की, जहां का जोइया स्वामी उसके पैरों में आ गिरा[1]। फिर खीचीवाड़े के स्वामी देवराज खीची को मारकर उसने वह इलाक़ा भी अपने राज्य में मिला लिया[2]। अनन्तर उसने पूगल के भाटी शेखा को अपना चाकर बनाया तथा खड़लां का परगना वहां के स्वामी सुभराम ईसरोत को मारकर लिया। धीरे-धीरे सारा जांगल प्रदेश बीका के अधिकार में आ गया। यही नहीं उसने हिसार के पठानों की भी भूमि छीनी तथा बाघोड़ों भूटों व बिलोचों को भी पराजित किया। कहते हैं कि इस समय बीका की आन ३००० गांवों में चलती थी और उसके राज्य की सीमा पंजाब के पास तक पहुंच गई थी[3]।

राजपूतों तथा मुसलमानों से युद्ध

बीका की मृत्यु से क़रीब ३१ वर्ष पीछे के रचे हुए बीठू सूजा के 'जैतसी रो छन्द' से भी पाया जाता है कि उस (बीका) ने देरावर, मुम्मण-वाहण,[4] सिरसा, भटिंडा, भटनेर, नागड़, नरहड़ आदि स्थानों

---

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ११। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

टॉड कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि जोहियों ने बहुत दिनों तक गोदारों तथा राठोड़ों के सम्मिलित आक्रमण का सामना किया पर अन्त में उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ी (जि० २, पृ० ११३०-१)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३-४। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० १६-२१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

टॉड-कृत 'राजस्थान' में बीका का २६७० गांवों पर क़ब्ज़ा करना लिखा है (जि० २, पृ० ११२७)।

(४) वाहण=बस्ती या बसाया हुआ गांव। मुम्मण-वाहण का आशय मुम्मण का बसाया हुआ गांव है। पंजाब में कई गांवों के नामों के अन्त में वाहण शब्द जुड़ा हुआ मिलता है।

पर आक्रमण कर उन्हें अधिकृत किया तथा नागोर पर चढ़ाई कर उसे दो बार जीता[1]। उपर्युक्त ग्रन्थ ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण उसके कथन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। इस हिसाब से उसके राज्य का विस्तार चालीस हज़ार वर्ग मील भूमि पर होना अनुमान किया जा सकता है।

राव जोधा ने छापर-द्रोणपुर का इलाक़ा बरसल (बैरसल, मोहिल[2]) से लेकर वहां का अधिकार अपने पुत्र बीदा को दे दिया था। बरसल अपना राज्य खोकर अपने भाई नरबद को साथ ले दिल्ली के सुलतान बहलोल[3] लोदी के पास चला गया। उस समय उसके साथ कांधल का ज्येष्ठ पुत्र बाघा भी था। बहुत दिनों बाद जब उनकी सेवा से सुलतान प्रसन्न हुआ तो उसने बरसल का इलाक़ा उसे वापस दिलाने के लिए हिसार के सूबेदार सारंगखां को फ़ौज देकर उसके साथ कर दिया। जब यह फ़ौज द्रोणपुर पहुंची तो बीदा ने इसका सामना करना उचित न समझा, अतएव बरसल से सुलह कर वह अपने भाई बीका के पास बीकानेर चला गया और छापर-द्रोणपुर पर पीछा बरसल का अधिकार हो गया।

बीदा को छापर-द्रोणपुर दिलाना

बीदा के बीकानेर पहुंचने पर, बीका ने अपने पिता (जोधा) से

(१) छन्द ४३, ४४, ४५ और ४७।

(२) मोहिल चौहानों की एक शाखा का नाम है, जिसके अधिकार में छापर-द्रोणपुर आदि इलाक़े थे। छापर बीकानेर से पूर्व-दक्षिण में सुजानगढ़ से कुछ मील उत्तर में है और द्रोणपुर सुजानगढ़ से १० मील पश्चिम में 'कालाडूंगर' नाम की पहाड़ी के नीचे था। इन दोनों गांवों के नाम से वह परगना छापर-द्रोणपुर कहलाता था। श्रीमोर परगने के स्वामी सजन के ज्येष्ठ पुत्र का नाम मोहिल था, जिसके नाम से मोहिल शाखा चली।

(३) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' से भी बहलोल लोदी का बीका का समकालीन होना पाया जाता है (छन्द ४६), परन्तु सिकन्दर और बहलोल (लोदी) दोनों ही बीका के समकालीन थे।

कहलाया कि यदि आप सहायता दें तो फिर बीदा को द्रोणपुर का इलाक़ा दिला देवें। जोधा ने एक बार राणी हाड़ी के कहने से बीदा से लाडणू मांगा था, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। इस कारण उसने बीका की इस प्रार्थना पर कुछ ध्यान न दिया। तब बीका ने स्वयं सेना एकत्र कर कांधल, मंडला आदि के साथ बरसल पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर राव शेखा, सिंघाणे का सरदार तथा जोइये आदि भी उसकी सहायता के लिए आये। नापा सांखला, पड़िहार बेला आदि बीकानेर की रक्षा करने के लिए वहीं छोड़ दिये गये। देशणोक में करणीजी के दर्शन कर बीका द्रोणपुर की ओर अग्रसर हुआ तथा वहां से चार कोस की दूरी पर उसकी फ़ौज के डेरे हुए। सारंगख़ां उन दिनों वहीं था। एक दिन बाघा को, जो बरसल का सहायक था, एकान्त में बुलाकर बीका ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा—"काका कांधल तो ऐसे हैं कि जिन्होंने जाटों के राज्य को नष्टकर बीकानेर राज्य को बढ़ाया और तू (कांधल का पुत्र) मोहिलों के बदले में मेरे ऊपर ही चढ़कर आया है। ऐसा करना तेरे लिए उचित नहीं।" तब तो वह भी बीका का मददगार बन गया और उसने वचन दिया कि वह मोहिलों को पैदल आक्रमण करने की सलाह देगा, जिनके दांई ओर सारंगख़ां की सेना रहेगी तथा ऐसी दशा में उन्हें पराजित करना कठिन न होगा। दूसरे दिन युद्ध में ऐसा ही हुआ, फलतः मोहिल एवं तुर्क भाग गये, नरबद और बरसल मारे गये तथा बीका की विजय हुई। कुछ दिन वहां रहने के उपरान्त बीका ने छापर-द्रोणपुर का अधिकार बीदा को सौंप दिया और स्वयं बीकानेर लौट गया[1]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४। मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २१-२७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६-८।

इसके विपरीत मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि जोधा ने जिन दिनों छापर द्रोणपुर पर अधिकार कर लिया उन्हीं दिनों नरबद दिल्ली जाकर लोदी बादशाह के पास से सारंगख़ां के साथ ५००० सवार अपनी सहायता को ले आया।

इस युद्ध के बाद कांधल हिसार के पास साहवा नामक स्थान में आ रहा और हिसार में लूट-मार करने लगा। जब सारंगखां इस उत्पात का दमन करने लगा तो कांधल अपने राजपूतों सहित राजासर (परगना सारण) में चला गया और वहां से चढ़कर हिसार में आया तथा खूब लूट-मार कर फिर वापस चला गया। उस समय कांधल के साथ उसके तीन पुत्र—राजसी, नींबा तथा सूरा—थे और बाघा चाचावाद में एवं अरडकमल बीकानेर में था। जब हिसार के फ़ौजदार सारंगखां ने उसपर चढ़ाई की तो कांधल ने सब साथियों सहित उसका सामना किया। अचानक कांधल के घोड़े का तंग टूट गया, जिससे उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरे तंग सुधार लेने तक तुम सब शत्रु का सामना करो, परन्तु वह तंग आदि ठीककर अपने घोड़े पर पुनः सवार हो सका इसके पूर्व ही सारंगखां ने आक्रमण कर उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया। कांधल ने अपने पास बचे हुए राजपूतों के साथ वीरतापूर्वक सारंगखां का सामना किया, पर शत्रु की संख्या बहुत अधिक होने से अंत में

कांधल का मारा जाना

नरबद, बैरसल, बाघा (कांधलोत) तथा सारंगखां ने मिलकर जोधा पर चढ़ाई की। जोधा ने गुप्त रीति से बाघा को अपने पास बुलाया और कहा कि शाबाश भतीजे, मोहिलों के वास्ते तू अपने भाइयों पर तलवार उठाकर भोजाइयों और स्त्रियों को क़ैद करावेगा। तब तो बाघा के मन में भी विचार उठा कि मोहिलों के वास्ते अपने भाइयों को मारना उचित नहीं है और वह जोधा का मददगार हो गया। फलतः युद्ध में सारंगखां ५५५ पठानों के साथ मारा गया, बरसल पीछा मेवाड़ को चला गया तथा नरबद फ़तहपुर के पास पड़ा रहा (जि० १, पृ० १६३-६५)।

परन्तु मुंहणोत नैणसी का उपर्युक्त कथन विश्वासयोग्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि आगे चलकर वह स्वयं बीका के कहलवाने पर कांधल को मारने के वैर में जोधा का सारंगखां पर चढ़ाई करना लिखता है। इस अवसर पर राव बीका का भी उसके साथ होना उसने माना है (जिल्द २, पृ० २०६)। इससे स्पष्ट है कि सारंगखां बाद की दूसरी लड़ाई में मारा गया था।

तेईस मनुष्यों को मारकर वह वीर अपने साथियों सहित काम आया[1]।

बीका ने जब कांधल के मारे जाने का समाचार सुना तो उसी समय सारंगखां को मारने की प्रतिज्ञा की तथा अपनी सेना को युद्ध की तैयारी करने के लिए आज्ञा दी। इसकी सूचना राव जोधा को देने के लिए कोठारी चोथमल जोधपुर भेजा गया। जोधा ने मेड़ते से दूदा व

बीका की कांधल के वैर में सारंगखां पर चढ़ाई

वरसिंह को भी बुला लिया और सेना सहित बीका की सहायता के लिए प्रस्थान किया। बीकानेर से बीका भी चल चुका था। द्रोणपुर में पिता-पुत्र एकत्र हो गये, जहां से दोनों फ़ौजें सम्मिलित होकर आगे बढ़ीं। सारंगखां भी अपनी फ़ौज लेकर सामने आया तथा गांव झांस (झांसल) में दोनों दलों में युद्ध हुआ, जिसमें सारंगखां की फ़ौज के पैर उखड़ गये और वह बीका के पुत्र नरा के हाथ से मारा गया[2]।

वहां से लौटते हुए फिर द्रोणपुर में डेरे हुए। राव जोधा ने बीका को अपने पास बुलाकर कहा—"बीका तू सपूत है, अतएव तुझसे एक वचन मांगता हूं।" बीका ने उत्तर दिया—"कहिये, आप मेरे पिता हैं, अतएव आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।" जोधा ने कहा—"एक तो

जोधा का बीका को पूजनीक चीजें देने का वचन देना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४। मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २८-३०। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ८।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४। मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३०-३१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ८।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि जब राव बीका ने कांधल के मारे जाने की ख़बर राव जोधा के पास जोधपुर भिजवाई, तब वह बोला कि कांधल का वैर मैं लूंगा। अतएव एक बड़ी सेना के साथ वह सारंगखां पर चढ़ा। बीका हरावल (हिरोल) में रहा। गांव झांसल के पास लड़ाई हुई, जिसमें सारंगखां और उसके बहुत से साथी मारे गये (जिल्द २, पृ० १०६)।

लाडणू मुझे दे दे और दूसरे अब तूने अपने बाहुबल से अपने लिए नया राज्य स्थापित कर लिया है, इसलिए जोधपुर के अपने भाइयों से राज्य के लिए दावा न करना।" बीका ने इन बातों को स्वीकार करते हुए कहा— "मेरी भी एक प्रार्थना है। मैं बड़ा पुत्र हूं, अतएव तख्त, छत्र आदि तथा आपकी ढाल-तलवार मुझे मिलनी चाहियें।" जोधा ने इन सब वस्तुओं को जोधपुर पहुंच कर भेज देने का वचन दिया। अनन्तर दोनों ने अपने-अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया[1]।

बीका की जोधपुर पर चढ़ाई

जोधा का जोधपुर में देहांत हो जाने पर वहां की गद्दी पर सांतल[2] बैठा, परन्तु वह अधिक दिनों तक राज्य न करने पाया था कि मुसलमानों के हाथ से मारा गया। उसके कोई सन्तान न होने से उसके बाद उसका छोटा भाई सूजा गद्दी पर बैठा। यह समाचार मिलते ही बीका ने राज्य-चिह्न आदि लाने के लिए पड़िहार वेला को सूजा के पास जोधपुर भेजा, परन्तु सूजा ने ये वस्तुएं देने से इनकार कर दिया। जब बीका को यह खबर मिली तो उसने अपने सरदारों से सलाहकर बड़ी फौज के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर द्रोणपुर से बीदा ३००० फ़ौज लेकर उसकी सहायता को आया और कांधल के पुत्र अरड़कमल (साहवा का) तथा राजसी (राजासर का) और पौत्र वणीर (चाचावाद का) भी अपनी-अपनी सेना के साथ आये। इनके

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३१-३३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(२) एक प्राचीन गीत प्राप्त हुआ है, जिसमें सांतल का जैसलमेर के रावल देवीदास, पूगल के राव शेखा तथा नागोर के ख़ां के साथ बीका पर चढ़कर जाने का उल्लेख है, परन्तु इस चढ़ाई में उन्हें सफलता न मिली (जर्नल ऑव् दी एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३५)। इस गीत के रचयिता का नाम अज्ञात है और न यही पता चलता है कि इसकी रचना कब हुई, जिससे इसकी सत्यता में सन्देह है। यदि उक्त गीत में कुछ सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि पहले सांतल ने बीका पर चढ़ाई की थी, फिर उसका देहांत हो जाने और सूजा के गद्दी बैठने पर बीका ने जोधपुर पर चढ़ाई की हो।

अतिरिक्त सांखले से मंडला भी सहायतार्थ आया तथा भाटी और जोहिये आदि भी बीका के साथ हो गये। इस बड़ी सेना के साथ बीका देशणोक होता हुआ जोधपुर पहुंचा। सूजा ने स्वयं गढ़ के भीतर रहकर कुछ सेना उसका सामना करने के लिए भेजी, परन्तु वह अधिक देर तक बीका की फ़ौज के सामने ठहर न सकी। अनन्तर बीका की सेना ने जोधपुर के गढ़ को घेर लिया। दस दिन में ही पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग घबड़ाने लगे तो सूजा की माता हाड़ी जसमादे के कहलाने से बीका ने अपने मुसाहिबों को गढ़ में सुलह की शर्तें तय करने के लिए भेजा, परन्तु कुछ तय न हो सका, जिससे दो दिन बाद सूजा के कहने से जसमादे ने स्वयं बीका से मिलकर कहा—"तू ने तो अब नया राज्य स्थापित कर लिया है। अपने छोटे भाइयों को रक्खेगा तो वे रहेंगे।" बीका ने उत्तर दिया—"माता, मैं तो पूजनीक चीज़ें[1] चाहता हूं।" तब जसमादे ने पूजनीक चीज़ें उसे देकर सुलह कर ली, जिनको लेकर बीका बीकानेर लौट गया[2]।

---

(१) ख्यातों आदि में इन पूजनीक चीज़ों के ये नाम मिलते हैं—

१—राव जोधा की ढाल तलवार। २—तख़्त। ३—चंवर। ४—छत्र। ५—सांखले हरभू की दी हुई कटारी। ६—हिरण्यगर्भ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति। ७—अठारह हाथोंवाली नागणेची की मूर्ति। ८—करंड। ९—भंवर ढोल। १०—बैरीसाल नक्कारा। ११—दलसिंगार घोड़ा। १२—भुंजाई की देग।

इनमें से अधिकांश चीज़ें अर्थात् तख़्त, ढाल, तलवार, कटार, छत्र, चंवर आदि बीकानेर के क़िले में रक्खी हुई हैं और वर्ष में दो बार—दशहरे (विजयादशमी) और दीवाली के दिन—बीकानेर नरेश स्वयं इनका पूजन करते हैं।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५-६। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २५-२६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६। कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११। रामनाथ रत्नू; इतिहास राजस्थान; पृ० १५४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६-४८०।

जोधपुर राज्य की ख्यात में सूजा के प्रसंग में इस चढ़ाई का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उसी पुस्तक में वरजांग (भीमोत) के प्रसंग में बीका का सूजा के राजत्व-काल में जोधपुर पर चढ़कर आना स्वीकार किया है (जि० १, पृ० ५६)।

उन दिनों मेड़ते पर बीका के भाई दूदा तथा वरसिंह का अमल था। वरसिंह[1] इधर-उधर बहुत लूटमार किया करता था। एक बार उसने सांभर को लूटा तथा अजमेर की भूमि का बहुत बिगाड़ किया। इसपर अजमेर के सूबेदार (मल्लूखां) ने अपने आपको उससे लड़ने में असमर्थ देख उसे लालच देकर अजमेर बुलाया और गिरफ़्तार कर लिया। इस ख़बर के मिलने पर मेड़ता के प्रबन्ध के लिए अपने पुत्र वीरम को छोड़कर दूदा बीकानेर चला गया, जहां उसने बीका को यह घटना कह सुनाई। इसपर बीका ने कहा—"तुम मेड़ते जाकर फ़ौज एकत्र करो, मैं आता हूं।" दूदा के जाने पर बीका ने इसकी ख़बर सूजा के पास भिजवाई और स्वयं सेना लेकर रीयां पहुंचा, जहां दूदा अपनी फ़ौज के साथ उससे आ मिला। जोधपुर से चलकर सूजा ने कोसाणे में डेरा किया। अजमेर का सूबेदार इन विशाल सेनाओं का आना सुनते ही डर गया और उसने वरसिंह को छोड़कर सुलह कर ली। अनन्तर दूदा तो वरसिंह को लेकर मेड़ते गया और बीका बीकानेर लौट गया। सूजा सुलह का हाल सुन कोसाणे से जोधपुर चला गया। कहते हैं कि वरसिंह को भोजन में ज़हर दे दिया गया था, जिससे मेड़ता लौटने के कुछ मास बाद उसका देहांत हो गया[2]।

बीका का वरसिंह को अजमेर की क़ैद से छुड़ाना

शेखावाटी के खंडेला प्रदेश का स्वामी रिड़मल प्रायः बीका के राज्य में लूट-मार किया करता था। उसने एक बार बीकानेर और कर्णावाटी का बहुत नुक़सान किया, जिसपर बीका ने ससैन्य उसपर आक्रमण कर दिया। रिड़मल ने दो कोस सामने आकर उसका सामना किया, पर

बीका का खंडेले पर आक्रमण

(१) झाबुआवालों का पूर्वज। वरसिंह का पुत्र सीया, पौत्र भीमा और प्रपौत्र केशोदास था, जिससे झाबुआ का राज्य क़ायम हुआ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६। मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३६-४१। कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; सं० ६२१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

उसे पराजित होकर भागना पड़ा। तब बीका की सेना ने उस प्रदेश को लूटा, जिससे बहुतसा माल वहां से हाथ लगा[1]।

बीका का अंतिम आक्रमण रेवाड़ी पर हुआ। बहुत दिनों से उसकी इच्छा दिल्ली की तरफ़ की भूमि दबाने की थी। अतएव फ़ौज के साथ उसने रेवाड़ी की ओर कूच किया और उधर की बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया[2]। खंडेले के स्वामी रिड़मल को जब इसकी खबर लगी तो उसने दिल्ली के सुलतान से सहायता की याचना की, जिसपर सुलतान ने ४००० फ़ौज के साथ नवाब हिंदाल[3] को उसके साथ कर दिया। ये दोनों बीका पर चढ़े, जिसपर बीका ने वीरतापूर्वक इनका सामना किया तथा रिड़मल और हिन्दाल दोनों को तलवार के घाट उतार नवाब की सारी सेना को भगा दिया[4]।

बीका की रेवाड़ी पर चढ़ाई

ख्यातों में लिखा है कि बीकानेर लौटकर सुखपूर्वक राज्य करते हुए वि० सं० १५६१ आश्विन सुदि ३ (ई० स० १५०४ ता० ११ सितंबर) को बीका का देहांत हो गया तथा उसकी आठ राणियां सती हुईं[5]। बीका के मरने का यह संवत्

बीका की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुन्शी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४१-४३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(२) बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में बीका का बहलोलशाह के राज्य में फ़तहपुर से झूंझनूं तक अपना डंका बजाने का उल्लेख मिलता है (छन्द ४६)।

(३) नवाब हिन्दाल बाबर के चौथे पुत्र मिर्ज़ा हिन्दाल से भिन्न व्यक्ति होना चाहिये, क्योंकि मिर्ज़ा हिन्दाल तो ई० स० १५५१ (वि० सं० १६०८) में खैबर के पास कामरां की सेना के साथ की लड़ाई में रात के समय मारा गया था। कर्नल पाउलेट ने अपने 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' के टिप्पण में हिन्दाल को बाबर का भाई लिखा है (पृ० १०), जो भ्रमपूर्ण ही है।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४३-४४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी

तो ठीक है, परन्तु तिथि अशुद्ध है, क्योंकि बीका के मृत्यु स्मारक शिलालेख में उसका आषाढ़ सुदि ५ (ता० १७ जून) सोमवार को देहांत होना लिखा है[1], जो विश्वसनीय है।

बीका के दस पुत्र हुए[2]—

बीका की संतति

१ नरा, २ लूणकर्ण, ३ घड़सी,[3] ४ राजसी,[4] ५ मेघराज, ६ केलण, ७ देवसी, ८ विजयसिंह, ६ अमरसिंह और १० बीसा।

का जीवनचरित्र; पृ० ४५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर; स्टेट, पृ० १०।

टॉड ने बीका की मृत्यु वि० सं० १५५१ (ई० स० १४६४) में लिखी है (राजस्थान; भाग २, पृ० ११३२), जो ठीक नहीं है। दयालदास की ख्यात में बीका के साथ आठ राणियों के सती होने का उल्लेख है, परन्तु उसके स्मारक लेख में केवल तीन राणियों का सती होना लिखा है, जो अधिक विश्वसनीय है।

(१) ············संवत् १५६१ वर्षे शाके १४२६ प्रवर्तमाने ·········आषाढ़मासे शुभे शुक्लपक्षे·········तिथौ पंचम्यां सोमवासरे·········रावजी श्रीजोधाजी तत्पुत्रः रावजी श्रीबीकोजी व श्री पुंगलाणी निरवांणजी एवं द्वाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां·········परमधाम मुक्तिपदं प्राप्तः················।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४६।

(३) इसके दो पुत्रों में से देवीसिंह को गारबदेसर और डालूसिंह (डूंगरसिंह) को घड़सीसर की जागीर मिली। घड़सी के वंशज घड़सीयोत बीका कहलाये।

(४) राजसी को जागीर में राजलदेसर मिला था, जहां से उसकी मृत्यु का स्मारक शिलालेख वि० सं० १५८१ आषाढ़ सुदि १० (ई० स० १५२४ ता० ११ जून) शुक्रवार का मिला है, जिसमें लिखा है कि राठोड़वंशी राव श्री बीका का पुत्र राजसी उक्त दिन मृत्यु को प्राप्त हुआ और सोढ़ी रत्नादे उसके साथ सती हुई।

·········संवत् १५८१ वर्षे आसाड मासे सुकल पषे १० सुक्र

जिस राजपूती वीरता से राजस्थान का इतिहास भरा पड़ा है, राव बीका उसका एक जाज्वल्यमान उदाहरण था। वह बड़ा ही पितृभक्त, उदार, वीर एवं सत्यवक्ता था। जिस प्रकार पितृ-भक्ति के लिए मेवाड़ के इतिहास में रावत चूंडा का नाम प्रसिद्ध है, वैसे ही जोधपुर और बीकानेर के इतिहास में राव बीका का नाम भी अग्रगण्य है। पिता की इच्छा का आभास पाते ही उसने जोधपुर के राज्य की आकांक्षा छोड़ दी और अपने बाहुबल से अपने लिए एक नया राज्य क़ायम कर लिया। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर बड़ा होने पर भी, उसने अपने पैतृक राज्य से सदा के लिए स्वत्व त्याग दिया। ऐसी अनन्य पितृभक्ति बहुत कम लोगों में प्रस्फुटित होती है। इसके अतिरिक्त उसका सत्य-आचरण भी कम प्रशंसनीय नहीं है। पिता को दिया हुआ वचन उसने पूर्ण रूप से निभाया और कभी छल या कपट से अपना स्वार्थ सिद्ध न किया।

राव बीका का व्यक्तित्व

उसने अपने जीवनकाल में ही बीकानेर-राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा दिया था। जब उसने पहले-पहल कोड़मदेसर में गढ़ बनवाना प्रारंभ किया तो भाटियों ने उसका विरोध किया, जिससे उस स्थान को छोड़कर उसने वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में बीकानेर के नवनिर्मित गढ़ के आस पास शहर बसाया। इसके बाद उसने विद्रोही भाटियों, जाटों, जोइयों, खीचियों, पठानों, बाघोड़ों, बलूचियों और भूटों को हराकर अभूतपूर्व वीरता, साहस एवं युद्ध-कौशल का परिचय दिया। पंजाब के हिसार तक उसने अपना अधिकार जमा दिया था और ऐसी प्रसिद्धि है कि उसकी जीवितावस्था में ही दूर-दूर तक ३००० गांवों में उसकी आन (दुहाई) फिरने लगी थी। उसकी

दिने घटिका ५ उपरांत ११ मध(ध्ये) देवलोके भवतु राठवड़ वंसि राव स्री(श्री)बीका सुत राजसीजी देवलोक भवतु सती सोढी रतना दे सहत················।

(मूल लेख की छाप से)।

शक्ति कितनी बढ़ गई थी, यह इसीसे स्पष्ट है कि पूजनीक चीज़ें लेने के लिए उसकी जोधपुर पर चढ़ाई होने पर राव सूजा के लिए उसका सामना करना कठिन हो गया, जिससे अन्त में अपनी माता जसमादे के द्वारा पूजनीक चीज़ें भिजवाकर उस(सूजा)ने सुलह कर ली।

बीका का हृदय बड़ा उदार था। दूसरों का कष्ट मिटाने के लिए वह अपनी जान को संकट में डाल देता था। पूगल के राव शेखा के लंघों-द्वारा बन्दी कर लिये जाने पर उस(बीका)ने ससैन्य उनपर चढ़ाई कर उसे मुक्त कराया था। पितृभक्ति के साथ-साथ उसमें भ्रातृप्रेम का भी प्रचुर मात्रा में समावेश था। भाइयों पर संकट पड़ने पर, उसने उन्हें आश्रय भी दिया और सहायता भी पहुंचाई। राव बीदा के हाथ से छापर-द्रोणपुर का इलाक़ा निकल जाने पर वह बीका के पास चला गया। यह बीका की समयोचित सहायता का ही फल था कि उसका वहां पुनः आधिपत्य होना संभव हो सका। उसके बाद भी बीका के वंशज समय-समय पर बीदावतों की सहायता करते रहे, जिससे बीदावत बीकानेर के ही अधीन हो गये। मेड़ते के स्वामी वरसिंह के अजमेर के सूबेदार-द्वारा गिरफ़्तार कर लिये जाने पर बीका ने ससैन्य जाकर उसे भी छुड़ाया।

वह माता करणीजी का अनन्य उपासक था और राज्य की वृद्धि को उसी की कृपा का फल समझता था।

राव नरा

राव बीका का परलोकवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा बीकानेर का स्वामी हुआ, परन्तु केवल कुछ मास राज्य करने के बाद ही वि० सं० १५६१ माघ सुदि ८ (ई० स० १५०५ ता० १३ जनवरी) को उसका देहांत हो गया[1]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ४६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

'वीरविनोद' में नरा का जन्म सं० १५२५ कार्तिक वदि ४=ई० स० १४६८

राव लूणकर्ण

बीका की राणी रंगकुंवरी के गर्भ से वि० सं० १५२६ माघ सुदि १० (ई० स० १४७० ता० १२ जनवरी) को लूणकर्ण का जन्म हुआ था[1]।

जन्म तथा राज्याभिषेक

नरा के निःसन्तान मरने पर उसका छोटा भाई होने के कारण वि० सं० १५६१ फाल्गुन वदि ४ (ई० स० १५०५ ता० २३ जनवरी) को वह (लूणकर्ण) बीकानेर की गद्दी पर बैठा[2]।

उसके राज्यारंभ में ही आस-पास के इलाक़ों के मालिक, जिन्हें उसके पिता ने अपने राज्य में मिला लिया था, बिगड़ गये और लूट-मार कर प्रजा का अहित करने लगे। अतएव अपने

दद्रेवा पर चढ़ाई

भाइयों तथा अन्य राजपूतों आदि के साथ एक बड़ी सेना एकत्र कर उस (लूणकर्ण) ने उनका दमन करने के लिए प्रस्थान किया। सर्वप्रथम उसने वि० सं० १५६६ आश्विन सुदी १० (ई० स० १५०६ ता० २३ सितंबर) को बीकानेर से पूर्व दद्रेवा पर आक्रमण किया। वहां के स्वामी मानसिंह चौहान (देपालोत) ने सात मास तक तो क़िले के भीतर रहकर लूणकर्ण का सामना किया, परन्तु रसद की कमी हो जाने के कारण अन्त में गढ़ के द्वार खोलकर वह ५०० साथियों

ता० ५ अक्टोबर (भाग २, पृ० ४८०) तथा मुंशी देवीप्रसाद की पुस्तक (राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र) में वि० सं० १५२६ कार्तिक वदि ४=ई० स० १४६६ ता० २५ सितंबर (पृ० ४७) दिया है। इसने थोड़े ही समय राज्य किया, इसलिए किसी-किसी वंशावली लेखक ने इसका नाम तक छोड़ दिया है। टॉड ने भी इसका नाम नहीं दिया है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में पौष मास में लूणकर्ण का गद्दी पर बैठना लिखा है (पृ० १०), जो ठीक नहीं हो सकता।

सहित उसकी सेना पर टूट पड़ा और घड़सी[1] के हाथ से मारा गया। फलस्वरूप ददेवा का सारा परगना लूणकर्ण के हाथ में आ गया, जहां अपने थाने स्थापित कर वह बीकानेर लौट गया। इस युद्ध में बीदा के पुत्र संसारचन्द तथा उदयकरण, पूगल का राव हरा, चाचावाद का वणीर, साइवे का अरड़कमल, सारूंडे का महेशदास आदि भी अपनी-अपनी सेना सहित उसके साथ थे[2]।

इन दिनों फ़तहपुर पर क़ायमख़ानियों[3] का अधिकार था और वहां दौलतख़ां शासन करता था। उससे तथा रंगख़ां से भूमि के लिए सदा झगड़ा रहता था। इस अवसर से लाभ उठाकर लूणकर्ण ने वि० सं० १५६६ वैशाख सुदि ७ (ई० स० १५१२ ता० २२ अप्रेल) को फ़तहपुर पर चढ़ाई कर दी। इसपर दौलतख़ां तथा रंगख़ां मिलकर लड़ने को आये, परन्तु उन्हें हारकर भागना पड़ा। जब राव लूणकर्ण के आदमियों ने उनका पीछा किया, तब उन्होंने १२० गांव उसे देकर सुलह कर ली। इन गांवों में भी राव लूणकर्ण ने अपने थाने स्थापित कर दिये[4]।

फ़तहपुर पर चढ़ाई

(१) लूणकर्ण का छोटा भाई।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७-८। मुन्शी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४८-५१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। ठाकुर बहादुरसिंह; बीदावतों की ख्यात; पृ० ४८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११।

(३) हिसार के फ़ौजदार सैय्यद नासिर ने ददेरे के निवासी चौहानों को परास्त कर वहां से निकाल दिया। इस अवसर पर केवल दो बालक—एक चौहान और दूसरा जाट—वहां रह गये, जिनको उसने महाजन के सुपुर्द कर दिया। बाद में बादशाह बहलोल लोदी ने चौहान बालक को मुसलमान कर, सैय्यद नासिर का मनसब देकर उसका नाम क़ायमख़ां रक्खा। उसने अपने लिए झूंझणू की भूमि में फ़तहपुर बसाया। इसी क़ायमख़ां के वंशज क़ायमख़ानी कहलाये।

(४) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र ८। मुन्शी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११।

अनन्तर राव लूणकर्ण ने चायलवाड़े पर, जो वर्तमान सिरसा और हिसार के किनारे पर बसा हुआ था, आक्रमण किया, क्योंकि वहां के राजपूत भी बिगड़ रहे थे। उसके ससैन्य आगमन का समाचार पाते ही वहां का चायल स्वामी पूना भागकर भटनेर चला गया और हिरदेसर, साहवा एवं गडीणियां के बीच के चायलवाड़े के ४४० गांव लूणकर्ण के अधीन हो गये, जहां उसके थाने स्थापित हो गये[1]।

चायलवाड़े पर चढ़ाई

वि० सं० १५७० (ई० स० १५१३) में नागोर के स्वामी मुहम्मदखां ने बीकानेर पर चढ़ाई कर दी। वीर लूणकर्ण ने अपनी सेना सहित उसका सामना किया और अवसर देखकर रात्रि के समय मुसलमानी फ़ौज पर आक्रमण कर दिया, जिसमें मुहम्मदखां बुरी तरह घायल हुआ तथा उसकी पराजय हुई[2]।

नागोर के खान की बीकानेर पर चढ़ाई

चित्तोड़ के महाराणा रायमल की पुत्री का सम्बन्ध राव लूणकर्ण से हुआ था, इसलिए वि० सं० १५७० फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १५१४ ता० १२ फ़रवरी) को उस(लूणकर्ण)ने चित्तोड़ आकर खूब धूम-धाम से अपना विवाह किया[3]।

महाराणा रायमल की पुत्री से विवाह

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११।

(२) बीठू सूजा; जैतसी रो छन्द; संख्या ५७-६१।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ५३-५४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११।

ख्यातों में यह विवाह महाराणा रायमल के समय में ही होना लिखा है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि उक्त महाराणा का तो वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५०९ ता० २४ मई) को देहान्त हो चुका था। अतएव यह विवाह उक्त महाराणा के पुत्र महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के समय होना चाहिये।

ख्यातों में लिखा है कि राठोड़ों का चारण लाला, जैसलमेर के रावल जैतसी के पास मांगने के लिए गया। जब भी लाला रावल के पास जाता वह (रावल) उसके सामने राठोड़ों की हंसी करता।

जैसलमेर पर चढ़ाई

इसपर एक दिन लाला ने कहा—"रावल, चारणों से ऐसी हंसी नहीं करनी चाहिये, राठोड़ बहुत बुरे हैं।" रावल ने प्रत्युत्तर में बिगड़कर कहा—"जा, तेरे राठोड़ मेरी जितनी भूमि पर अपना घोड़ा फिरा देंगे, वह सब भूमि मैं ब्राह्मणों को दान कर दूंगा।" लाला ने बीकानेर लौटने पर लूणकर्ण से सारी घटना कही तथा अनुरोध किया कि आप कांधल अथवा बीदा के पुत्रों को आज्ञा दें कि वे जाकर रावल के कुछ गांवों में अपने घोड़े फिरा दें। तब राव ने उत्तर दिया—"लाला तू निश्चिन्त रह। जब रावल ने ऐसा कहा है, तो मैं स्वयं जाऊंगा।" अनन्तर उसने एक बड़ी सेना एकत्रकर जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया। इस अवसर पर बीदा का पौत्र सांगा, बाघा का पुत्र वणीर (वणवीर) और राजसी (कांधलोत) तथा अन्य सरदार आदि भी सेना सहित लूणकर्ण की फ़ौज के साथ थे। गांव राजोबाई (राजोलाई) में फ़ौज के डेरे हुए, जहां से मंडला का पुत्र महेशदास ५०० सवारों के साथ चढ़कर गया और जैसलमेर की तलहटी तक लूटमार करके फिर वापस आ गया। उधर जैतसी ने अपने सरदारों आदि से सलाह कर रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करना निश्चित किया। अनन्तर गढ़ की रक्षा की व्यवस्था कर वह ५००० आदमियों सहित राजोबाई में लूणकर्ण के डेरे पर चढ़ा। राव ने, जो अपनी सेना सहित तैयार था, उसका सामना किया। सेना कम होने के कारण जैतसी अधिक देर तक लड़ न सका और भाग निकला, परन्तु सांगा ने उसका पीछाकर उसे पकड़ लिया और लूणकर्ण के पास उपस्थित किया, जिसने उसे हाथी पर बैठाकर सांगा को ही उसकी चौकसी पर नियत किया। अनन्तर राठोड़ों की फ़ौज ने जैसलमेर पहुंचकर लूट मचाई, जिससे बहुतसा धन इत्यादि उसके हाथ लगा। लाला जब पुनः जैतसी के पास गया तो वह बहुत लज्जित हुआ। लूणकर्ण एक मास तक धड़सीसर पर

रहा, परन्तु भाटी गढ़ से बाहर न निकले और उन्होंने भीतर से ही आदमी भेजकर सुलह कर ली। इसपर उस (लूणकर्ण) ने जैतसी को मुक्तकर जैसलमेर उसके हवाले कर दिया तथा अपने पुत्रों का विवाह उसकी पुत्रियों से किया। अनन्तर अपनी सेना-सहित लूणकर्ण बीकानेर लौट गया[1]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८-९। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४४-७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ११-१२। बीठू सूजा-रचित 'जैतसी रो छन्द' (संख्या ६५-७३) में भी इस चढ़ाई का उल्लेख है।

लूणकर्ण की मृत्यु के लगभग लिखे हुए चारण गोरा के एक छन्द में भी लूणकर्ण के जैसलमेर को नष्ट करने तथा इसके अतिरिक्त मुहम्मदख़ां से युद्ध करने एवं हांसी, हिसार और सिरसा तक विजय करने का उल्लेख है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १९१७, पृ० २३७)।

ऊपर लिखी हुई ख्यातों आदि में यह घटना रावल देवीदास के समय में लिखी है, जो ठीक प्रतीत नहीं होती। जैसलमेर की तवारीख़ के अनुसार देवीदास का उत्तराधिकारी जैतसिंह (वि० सं० १५५३-१५८६) राव लूणकर्ण का समकालीन था, जिसके समय में बीकानेर की फ़ौज ने जैसलमेर पर चढ़ाई की और कुछ लूटमारकर वापस चली गई (पृ० ५६)।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी भाटियों के प्रसंग में लिखा है कि देवीदास के किसी दोष के कारण बीकानेर के राव लूणकर्ण ने रावल जैतसी के समय जैसलमेर पर चढ़ाई की और नगर से दो कोस राजबाई की तलाई पर डेरा कर उस इलाक़े को लूटा। भाटियों ने रात को छापा मारने का विचार किया, परन्तु इसका पता किसी प्रकार लूणकर्ण को लग गया, जिससे उसने उन्हें मार भगाया। उसी ख्यात में एक और मत दिया है कि जैतसी के वृद्ध होने पर उसके छोटे पुत्रों ने उसे क़ैद कर लिया था, परन्तु फिर कुछ स्वतन्त्रता मिलने पर उसने भाटियों से सलाह कर अपने ज्येष्ठ पुत्र लूणकर्ण को सिंध से, जहां वह जा रहा था, बुलाया। उसने उसका पुनः जैसलमेर पर अधिकार करा दिया (जि० २, पृ० ३२७-२९)।

उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट है कि जिस-किसी कारण से भी हो लूणकर्ण ने जैसलमेर पर चढ़ाई अवश्य की थी। जैसलमेर के शान्तिनाथ के मन्दिर से एक

अवसर पाकर जोधपुर के राव गांगा ने नागोर के खान पर आक्रमण कर उसका गढ़ घेर लिया। तब राव लूणकर्ण ने नागोर के खान-द्वारा बुलाये जाने पर उसकी सहायतार्थ प्रस्थान किया और गांगा की सेना से लड़कर खान को बचा लिया तथा उन दोनों में मेल करा दिया[1]।

नागोर के खान की सहायता के लिए जाना

कुछ दिनों पश्चात् राव लूणकर्ण ने फीरोज़शाह(?)को जीता और कांठलिया, डीडवाणा, बागड़, नरहड़, सिंघाणा आदि पर आक्रमण कर उन्हें विजय करने के अनन्तर[2] पूगल के भाटी हरा, उदयकरण के पुत्र कल्याणमल[3], रायमल शेखावत (अमरसर का), तिहुणपाल (जोहिया) आदि के साथ नारनोल की तरफ़ ससैन्य कूच किया। मार्ग में छापर-द्रोणपुर में डेरे हुए, जहां की अच्छी भूमि देखकर उसके मन में उसे भी हस्तगत करने का विचार हुआ। लौटते समय वहां पर भी अधिकार करने का निश्चयकर उसने आगे प्रस्थान किया, परंतु इसकी सूचना किसी प्रकार कल्याणमल को, जो उसके साथ था, लग गई, जिससे उसके हृदय में राव लूणकर्ण की ओर से शंका हो गई। नारनोल

नारनोल पर चढ़ाई और लूणकर्ण का मारा जाना

शिलालेख मिला है, जिससे पाया जाता है कि वि० सं० १५८१ तथा १५८३ (ई० स० १५२४ तथा १५२६) में जैतसिंह जीवित था—

·········॥ १ ॥ संवत् १५८३ वर्षे मागसिर सुदि ११ दिने महाराजाधिराज राउल श्रीजयतसिंह विजयराज्ये·········। सं० १५८१ वर्षे मागसिर वदि १० रविवारे महाराजाधिराज राउल श्रीजयतसिंह······।

अतएव यह निश्चित है कि यह चढ़ाई रावल जैतसिंह के समय ही हुई होगी, क्योंकि वह राव लूणकर्ण के समय विद्यमान था।

(१) बीठू सूजा; राव जैतसी रो छन्द; संख्या ७४-५।

(२) वही; संख्या ७५-६, ७८, ८०-८१।

(३) बीदावतों की ख्यात; भाग १, पृ० ५४। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०७।

दयालदास की ख्यात आदि में कल्याणमल के स्थान में उसके पिता उदयकरण का नाम दिया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि वह तो वि० सं० १५६५ में ही मर गया था।

से तीन कोस की दूरी पर ढोसी नामक गांव में लूणकर्ण की फ़ौज के डेरे हुए। नारनोल का नवाब उन दिनों शेख अबीमीरा था। राव की शक्ति देखकर कछवाहों, तंवरों आदि को भी भय हुआ, तब पाटण के तंवर तथा अमरसर का रायमल (शेखावत) अपनी अपनी सेना सहित नवाब से मिल गये। नवाब ने एक बार सुलह करने का प्रयत्न किया, परन्तु लूणकर्ण ने ध्यान न दिया। उदयकरण के पुत्र कल्याणमल और रायमल में बड़ी मित्रता थी। अतएव उसने रायमल से मिलकर कहा—"मैं हूं तो राव की फ़ौज के साथ पर झगड़े के समय उसका साथ छोड़कर भाग जाऊंगा।" फिर उसने अपनी फ़ौज में आकर भाटी हरा तथा जोहिया तिहुणपाल को भी अपनी तरफ़ मिला लिया और यह समाचार नवाब को दे दिया। फलतः जब नवाब और राव लूणकर्ण में युद्ध हुआ तो कल्याणमल, भाटी तथा जोहियों ने किनारा कर लिया। विरोधी पक्ष की सेना अधिक होने से अन्त में लूणकर्ण की सेना के पैर उखड़ गये। फिर भी उसने तथा कुंवर प्रतापसी, वैरसी और नेतसी ने बचे हुए राजपूतों के साथ वीरता-पूर्वक नवाब का सामना किया, परन्तु नवाब की सेना बहुत अधिक थी और भाटी, जोहियों आदि के चले जाने से लूणकर्ण का पक्ष निर्बल हो गया था, इसलिए वे सब के सब बुरी तरह घिर गये। पुरोहित देवीदास ने बीदावतों को उलाहना भी दिया, पर वे सहायतार्थ न आये। अन्त में वि० सं० १५८३ श्रावण वदि ४ (ई० स० १५२६ ता० २८ जून) को २१ आदमियों को मारकर अपने पुत्र प्रतापसी, नैतसी, वैरसी तथा पुरोहित देवीदास और कर्मसी[1] के साथ लूण-कर्ण अन्य राजपूतों सहित परमधाम सिधारा। यह समाचार बीकानेर पहुंचने पर उसकी तीन राणियां सती हुईं[2]।

(१) जोधपुर के राव जोधा का पुत्र। बांकीदास रचित 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह लूणकर्ण की चाकरी में रहता था और गांव ढूसी (ढोसी) के युद्ध में उसके साथ ही मारा गया (संख्या १४५)। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इसका उल्लेख है (जिल्द १, पृ० ५०)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६'। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूण-

लूणकर्ण की मृत्यु का उपर्युक्त संवत् तो ठीक है, पर तिथि ग़लत है, क्योंकि उसकी छत्री (स्मारक) के लेख में वि० सं० १५८३ वैशाख वदि २ (ई० स० १५२६ ता० ३१ मार्च) शनिवार को उसकी मृत्यु होना लिखा है[1]।

लूणकर्ण[2] के नीचे लिखे बारह पुत्रों के नाम प्रायः प्रत्येक ख्यात में मिलते हैं[3]—

१—जैतसी

संतति २—प्रतापसी—इसके वंश के प्रतापसिंघोत बीका कहलाये।

कर्णजी का जीवनचरित्र; पृ० ४७-६ (तिथि श्रावण वदि ६ दी है)। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २२४८। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०७। वीरविनोद, भाग २, पृ० ४८१। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२।

बीठू सूजा रचित 'राव जैतसी रो छन्द' में भी मुसलमानों के हाथ से लूणकर्ण के मारे जाने का उल्लेख है (छन्द ६१-६२) एवं चारण गोरा की लिखी हुई एक कविता में भी इसका वर्णन है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३८-३६।

(१) ·········संवत् १५८३ वर्षे········ शाके १४४८ प्रवर्तमाने·········वैशाखमासे·········कृष्णपक्षे तिथौ द्वितीयायां शनिवासरे·········रावजी श्रीबीकोजी तदात्मजः रावजी श्रीलूणकर्णजी वर्मा तिसृभिः धर्मपत्निभिः सः (सह) दिवं गतः।

(२) लूणकर्ण की एक स्त्री लालांदेवी का नाम बीठू सूजा के 'जैतसी रो छन्द' (संख्या ७३) तथा जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' (श्लोक १४७) में मिलता है। उसी के गर्भ से जैतसी का जन्म होना भी संस्कृत काव्य के उपर्युक्त श्लोक से सिद्ध है।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६। मुंशी देवीप्रसाद; राव लूणकर्ण का जीवनचरित्र; पृ० ५६-६०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२।

जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में भी लूणकर्ण के ११ पुत्रों (कृष्णसी को छोड़कर) के नाम दिये हैं—

३—वैरसी—इसका पुत्र नारण हुआ जिसके वंश के नारणोत बीका कहलाये।

४—रतनसी—इसने महाजन में ठिकाना बांधा। इसके वंश के रतनसिंघोत बीका कहलाये।

५—तेजसी—इसके वंशज तेजसिंघोत बीका कहलाये।

६—नेतसी

७—करमसी

८—किशनसी

९—रामसी

१०—सूरजमल

११—कुशलसी

१२—रूपसी

राव लूणकर्ण का व्यक्तित्व

राव लूणकर्ण वीर पिता का वीर पुत्र था। पिता के स्थापित किये हुए राज्य की उसने अपने पराक्रम से बहुत वृद्धि की। द्द्रेवा आदि के विद्रोही सरदारों का दमन करने के अतिरिक्त उसने फ़तहपुर और चायलवाड़े को भी अपने अधीन बनाया। साहसी और असामान्य वीर होने के साथ ही वह बड़ा उदार, दानी, प्रजापालक और गुणियों का सम्मान करनेवाला था। नागोर के खान की बीकानेर पर चढ़ाई होने पर उसने बड़ी वीरता से उसका सामना कर उसे हराया था, परन्तु बाद में जब खान के ऊपर स्वयं संकट आ पड़ा और जोधपुर के राव गांगा ने उसपर चढ़ाई की तो बुलाये जाने पर उस(लूणकर्ण)ने उसकी सहायतार्थ जाकर अपनी उदार-हृदयता का परिचय दिया। यही नहीं जैसलमेर के रावल को परास्त कर बन्दी कर

जेतृसिंहो द्विषां जेता सप्रतापः प्रतापसी।
रत्नसिंहो महारत्नं तेजसी तेजसा रविः ॥ १५५ ॥

वैरिसिंहो कृष्णनामा रूपसीरामनामकौ।
नेतसीकर्मसीसूर्यमल्लाद्याः कर्णसूनवः ॥ १५६ ॥

लेने के बाद भी उसने मुक्त कर दिया। कवियों आदि गुणीजनों को वह दरबार की शोभा मानता और उनका बड़ा सम्मान करता था। जैसलमेर की चढ़ाई वास्तव में चारण लाला की बात रखने के लिए ही हुई थी। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में उसकी समानता दानी कर्ण से की है[1]। ऐसे ही बीठू सूजा रचित 'जैतसी रो छन्द' में भी उसे कलियुग का कर्ण कहा है। इससे स्पष्ट है कि वह दान देने का अवसर आने पर कभी पीछे नहीं हटता था[2]। 'जैतसी रो छन्द' में उसके चारणों, कवियों आदि गुणीजनों को हाथी, घोड़े आदि देने का उल्लेख है[3]।

प्रजा के हित और उसके कष्टों का ध्यान सदा उसके हृदय में बना रहता था। दुर्भिक्ष पड़ने पर वह खुले हाथों प्रजा की सहायता करता[4]

---

(१) आकर्णितः पुरा कर्णः स कर्णैरीक्षितोऽधुना।
दानाधिकतया लब्धावतारोऽयं स एव किं ॥ १५३ ॥

(२) कळि काळि परी क्रम क्रे करन्न
देखियइ दुवापुर दिख्या दन्न। ... ॥ ६३ ॥

(३) तेड़िय नट हूँता गुजरात
वीकउत उबारण सुजस वात।
ताजी हसत्ति दीन्हा तियाइ
रण हूंत पिता मोखावि राइ ॥ ५६ ॥
इळ राइ करन वारउ कि ईद
गुणियणां ग्रिहे बाधा गईद।
ताकुआं रेसि सोभाग तत्ति
हिन्दुवइ राइ दीन्हा हसत्ति ॥ ६२ ॥

(४) नवसहस राइ नीसाण नाद
पूजिजइ देव आगी प्रसाद।
चउपनउ समीसर करनि चाळि
देवराउ दुनी राखी दुकाळि ॥ ५५ ॥

और उसके प्रत्येक कष्ट को दूर करना अपना कर्तव्य मानता। जिस राज्य में प्रजा और राजा का ऐसा सम्बन्ध हो वहां पर शान्ति और समृद्धि का होना अवश्यंभावी है। लूणकर्ण के राज्यकाल में राज्य का वैभव बहुत बढ़ा और प्रजा भी सुखी और सम्पन्न रही।

छापर-द्रोणपुर पर अधिकार करने की लालसा उसका काल हुई। उसकी बढ़ी हुई शक्ति से वैसे ही पड़ोस के सरदार भयभीत रहते थे। वे भीतर ही भीतर उसकी बढ़ती हुई शक्ति को दबाने का अवसर देख रहे थे। अपनी शक्ति से मदमत्त होने अथवा मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता न होने के कारण लूणकर्ण परिस्थिति को ठीक-ठीक हृदयंगम न कर सका। फलतः नारनोल के नवाब पर जब उसकी चढ़ाई हुई तो उस(लूणकर्ण)के सरदार उसके विपक्षियों से जा मिले। फिर भी वह बड़ी वीरता से लड़ा और अपने थोड़े से साथियों-सहित मारा गया।

राव जैतसिंह

लूणकर्ण के ज्येष्ठ पुत्र[1] जैतसी(जैतसिंह) का जन्म वि० सं०

करन राउ करइ कुसमइ कड़ाहि
मेदनी उबारी मइल माहि।····॥ ५५ ॥

(बीठू सूजा-रचित 'जैतसी रो छन्द')।

(१) टॉड-कृत 'राजस्थान' में लिखा है कि लूणकर्ण के चार पुत्र थे, जिनमें से सब से बड़ा (नाम नहीं दिया है, रत्नसिंह होना चाहिये) महाजन और उसके साथ के एकसौ चालीस गांव मिलने पर बीकानेर से अपना स्वत्व त्याग वहीं अपना ठिकाना बांध रहने लगा। तब उसका छोटा भाई जैतसिंह वि० सं० १५६६ (ई० स० १५१२) में बीकानेर की गद्दी पर बैठा (जि० २, पृ० ११३२); परन्तु जैतसिंह के गद्दी पर बैठने के संवत् के समान ही टॉड का उपर्युक्त कथन निराधार है। जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्र-वंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से तो यही पाया जाता है कि जैतसिंह ही लूणकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र तथा उत्तराधिकारी था, क्योंकि उसका नाम उसने लूणकर्ण के पुत्रों में सर्व-प्रथम दिया है (श्लोक १५५-७)।

नैणसी ने भी जैतसी को ही लूणकर्ण का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है (ख्यात; जि० २, पृ० १९६)। ऐसा ही 'आर्यआख्यानकल्पद्रुम' से भी पाया जाता है (पृ० १०६)।

राव जेतसी

जन्म

१५४६ कार्तिक सुदि ८ (ई० स० १४८९ ता० ३१ अक्टोबर) को हुआ था[1]।

जब ढोसी नामक स्थान में पिता के मारे जाने का समाचार जैतसी के पास बीकानेर पहुंचा तो उसी समय उसने राज्य की बाग-डोर अपने हाथ में ले ली। उधर बीदावत उदयकरण के पुत्र कल्याणमल[2] ने बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा से शीघ्र ही उस ओर प्रस्थान किया, परन्तु इसी बीच जैतसी ने गढ़ तथा नगर की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लिया और उस (कल्याणमल) के आते ही उससे कहलाया कि वापस लौट जाओ। कल्याणमल ने इसके प्रत्युत्तर में कहलाया कि मैं शोकप्रदर्शन करने के लिए आया हूं, परन्तु जैतसी ने उसके इस कथन पर विश्वास न किया, जिसपर उसने वहां से लौट जाने में ही बुद्धिमानी समझी[3]।

बीदावत कल्याणमल का बीकानेर पर चढ़ आना

अपने पिता को धोखा देने का बदला लेने के लिए वि० सं० १५८४ आश्विन सुदि १० (ई० स० १५२७ ता० ४ अक्टोबर) को जैतसी ने अपनी सेना द्रोणपुर पर चढ़ाई करने के लिए भेजी। उदयकरण का पुत्र कल्याणमल सेना का आगमन सुनते ही भागकर नागोर के खान के पास चला गया। तब जैतसी ने वहां की गद्दी पर बीदा के पौत्र सांगा को, जो संसारचन्द का पुत्र था, बैठाया[4]।

द्रोणपुर पर चढ़ाई

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२।

(२) ठाकुर बहादुरसिंह की लिखी हुई 'बीदावतों की ख्यात' में कल्याणमल के साथ नवाब (नारनोल) का भी बीकानेर जाना लिखा है (पृ० ५५-६)।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ९-१०। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३। इनमें कल्याणमल के स्थान में उसके पिता उदयकरण का नाम दिया है, जो ठीक नहीं है।

(४) दयालदास की ख्यात, जि० २; पत्र १०। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी

अनन्तर उसने एक सेना के साथ सांगा को सिंहाणकोट की ओर जोहियों के विरुद्ध भेजा, क्योंकि उनमें से बहुतों ने उसके पिता के साथ छल किया था। इस आक्रमण में सांगा को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और जोहियों का सरदार तिहुणपाल लाहौर की तरफ़ भाग गया[1]।

सिंहाणकोट के जोहियों पर आक्रमण

जैतसी की बहन बालाबाई आमेर के राजा पृथ्वीराज को ब्याही थी। उस(पृथ्वीराज)के देहांत से कुछ पीछे रत्नसिंह आमेर का स्वामी हुआ। बालाबाई का पुत्र सांगा रत्नसिंह का सौतेला भाई था। उसमें और रत्नसिंह में अनबन हो गई, जिससे वह बीकानेर में अपने मामा जैतसी के पास चला गया। रत्नसिंह खूब शराब पिया करता था, अतएव यह अच्छा अवसर देखकर

कछवाहे सांगा की सहायता करना

का जीवनचरित्र; पृ० ६२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७८। ठाकुर बहादुरसिंह; बीदावतों की ख्यात; पृ० ५६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३।

टॉड लिखता है कि जैतसी ने बीदा के वंशजों को अधीन बनाया और वह उनसे ख़िराज लेने लगा (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२)। संभव है कि सांगा के गद्दी बैठने के समय से बीदावतों ने बीकानेर की अधीनता पूर्ण रूप से फिर स्वीकार की हो। बीदा और उसके वंशजों से बीदावतों की सात शाखाएं चलीं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

१. बीदा के प्रपौत्र गोपालदास के पुत्र केशोदास से 'केशोदासोत' शाखा।

२. उपर्युक्त केशोदास के भाई तेजसिंह से 'तेजसीयोत' शाखा।

३. उपर्युक्त तेजसिंह के भाई जसवंतसिंह के पुत्र मनोहरदास से 'मनोहरदासोत' शाखा।

४. उपर्युक्त मनोहरदास के भाई पृथ्वीराज से 'पृथ्वीराजोत' शाखा।

५. बीदा के पौत्र सांगा के भाई सूरा के पुत्र खंगार से 'खंगारोत' शाखा।

६. उपर्युक्त खंगार के पुत्र किशनदास के प्रपौत्र मानसिंह से 'मानसिंहोत' शाखा।

७. उपर्युक्त सांगा के भाई पाता के पुत्र मदनसिंह से 'मदनावत' शाखा।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १०। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३।

उसके सरदारों आदि ने भूमि दबाना शुरू किया। जब यह खबर सांगा को बीकानेर में मिली तो उसने अपने मामा जैतसी से सारा हाल कहकर सहायता मांगी। जैतसी ने वणीर[1], रत्नसिंह[2], किशनसिंह[3], खेतसी[4], सांगा[5], महेशदास[6], भोजराज[7], बीका देवीदास[8], राव वैरसी आदि सरदारों के साथ एक बड़ी सेना सांगा के संग कर दी। अमरसर पहुंचने पर रायमल शेखावत भी उनसे आ मिला। उन दिनों आमेर में रत्नसिंह का सारा राजकार्य उसका मंत्री तेजसी (रायमलोत) चलाता था। रायमल ने उससे कहलाया कि राज तो सांगा को ही मिलेगा, अतएव अच्छा हो कि तुम उससे मिल जाओ। इसपर तेजसी सांगा से मिला और उसी के पक्ष में हो गया। उस-(तेजसी)के द्वारा सांगा ने कर्मचन्द नरूका को, जिसने आमेर की बहुतसी भूमि अपने अधिकार कर में ली थी, मारने की सलाह की। फिर मौजाबाद पहुंचने पर तेजसी ने जैमल के द्वारा, जो कर्मचन्द का भाई था और तेजसी के यहां काम करता था, उस(कर्मचन्द)को अपने पास बुलवाया, जहां वह साला सांखला[9] के हाथ से मारा गया। जैमल ने, जो साथ में था, इसका बदला तेजसी को मारकर लिया और वह सांगा को भी मार लेता, परन्तु इसी बीच वह उस(सांगा)के आदमियों-द्वारा मारा गया। अनन्तर सांगा ने आमेर के बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया और आसपास के सरदार उससे आ मिले। आमेर के सिंहासनारूढ़ स्वामी से उसने छेड़-छाड़ करना उचित न समझा, अतएव अपने

(१) कांधल का पौत्र, चाचावाद का स्वामी।
(२) राव जैतसी का भाई, महाजन का ठाकुर।
(३) कांधल का पौत्र, राजासर का रावत।
(४) कांधल का पौत्र, साहबे का स्वामी।
(५) बीदा का पौत्र, बीदासर का स्वामी।
(६) मंडला का वंशज, सारूंडे का स्वामी।
(७) मेलू का स्वामी।
(८) चाड़ीसर का स्वामी।
(९) नापा सांखला का भाई।

लिए सांगानेर नामक नगर अलग बसाकर वह वहां रहने लगा। रत्नसिंह (महाजन) तो उसके पास ही रह गया और शेष सब फ़ौज बीकानेर लौट गई[1]।

जोधपुर के राव सूजा के बेटे—वीरम, बाघा और शेखा—थे। बाघा के पुत्र का नाम गांगा था। सूजा जब गद्दी पर था, तभी मारवाड़ के बड़े-बड़े सरदार पाटवी वीरम से अप्रसन्न रहते थे[2]। अतएव सूजा का परलोकवास होने पर उन्होंने वीरम के स्थान में गांगा को जोधपुर का राव बना दिया। स्वामिभक्त मेहता रायमल ने इसका विरोध किया, परन्तु सरदारों आदि ने जब न माना तो वह वीरम के साथ सोजत में, जो वीरम को जागीर में दे दिया गया था, जा रहा। वहां रहकर उसने कई बार वीरम को गद्दी दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में गांगा पर चढ़ाई करने में वह मारा गया और सोजत पर गांगा ने अधिकार कर लिया। अनन्तर शेखा, हरदास ऊहड़[3] से मिलकर, जोधपुर

जोधपुर के राव गांगा की सहायता करना

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६ (टिप्पण १)। दयालदास की ख्यात; जि० १, पत्र १०। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६३-४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १३।

(२) ख्यातों आदि में राजपूत सरदारों की अप्रसन्नता का कारण यह दिया है कि जिन दिनों मारवाड़ में सूजा राज करता था एक दिन कुछ ठाकुर वहां आये। उस दिन निरन्तर वर्षा होने के कारण वे अपने डेरों पर न जा सके और पाटवी वीरम की माता से उन्होंने अपने भोजन आदि का प्रबन्ध करा देने को कहलाया, परन्तु उसने ध्यान न दिया। तब उन्होंने गांगा की माता से अर्ज़ कराई, जिसने उनका बड़ा सत्कार किया। तभी से ठाकुर वीरम से अप्रसन्न रहने लगे और उन्होंने सूजा के बाद गांगा को गद्दी पर बैठाने का निश्चय कर लिया (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४४। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ११)।

(३) राठोड़ हरदास मोकलोत के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४७-१५२। यह राव आस्थान के पौत्र ऊहड़ का वंशधर था।

हस्तगत करने का उद्योग करने लगा। गांगा ने, जिसका पक्ष बहुत बलवान था, भूमि के दो भाग कर सुलह करनी चाही, परन्तु शेखा ने, हरदास के कहने के अनुसार, इस शर्त को स्वीकार न किया। तब गांगा ने आदमी भेजकर बीकानेर के राव जैतसी से सहायता मांगी, जिसपर उस(जैतसी)ने रतनसी, वणीर, खेतसी, सांगा, वैरसी (पूगल का), महेशदास आदि अपने सरदारों के साथ एक बड़ी सेना एकत्रकर वि० सं० १५८५ मार्गशीर्ष वदि ७ (ई० स० १५२८ ता० ३ नवम्बर) को जोधपुर की ओर प्रस्थान किया[1]। उधर शेखा ने हरदास को नागोर के सरखेलखां के पास से सहायता लाने के लिए भेजा। नागोर की सीमा पर के २०० गांव मिलने के वादे पर सरखेलखां और उसका पुत्र दौलतखां एक विशाल फ़ौज के साथ शेखा की मदद के वास्ते रवाना हुए और उन्होंने बिराई गांव में डेरा किया। गाग्रांणी गांव में गांगा के डेरे हुए, जहां जैतसी भी जाकर सम्मिलित हो गया। गांगा ने पुनः एक बार सन्धि करने का प्रयत्न किया, परन्तु शेखा ने कुछ ध्यान न दिया। दूसरे दिन विरोधी दलों की मुठभेड़ होने पर भी जब गांगा तथा उसके साथी भागे नहीं तो ख़ान ने शेखा से कहा कि तुमने तो कहा था कि हमारे सामने वे ठहरेंगे नहीं, अब यह क्या हुआ। शेखा ने उत्तर दिया कि वे भाग तो जाते, परन्तु जोधपुर की मदद पर बीकानेर है। ख़ान के हृदय में उसी समय सन्देह ने घर कर लिया। इतने ही में गांगा ने अपने धनुष से एक तीर छोड़ा जो ख़ान के महावत को लगा। फिर तो जैतसी के राजपूतों ने ख़ान के हाथी को जा घेरा और रत्नसिंह ने

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में गांगा-द्वारा जैतसी के बीकानेर से सहायतार्थ बुलवाये जाने का वृत्तान्त नहीं दिया है। उक्त ख्यात में केवल इतना लिखा है कि जैतसी उन दिनों नागाणा गांव में मानता करने गया था और युद्ध में शामिल हो गया। उक्त ख्यात में राठोड़ों की शेखा तथा मुसलमानों पर की इस विजय का सारा श्रेय गांगा को दिया है (जिल्द १, पृ० ६४); परन्तु उससे बहुत प्राचीन मुंहणोत नैणसी की ख्यात में स्पष्ट लिखा है कि गांगा ने राव जैतसी को बीकानेर से सहायतार्थ बुलवाया, जिसपर वह अपनी सेना-सहित गया और उसी की वजह से गांगा की विजय हुई (जिल्द २, पृ० १५०-२)।

हाथी के एक बर्छी ऐसी मारी, जिससे वह घूमकर भाग गया[1]। साथ ही सारी यवन-सेना भी रणक्षेत्र छोड़कर भाग गई[2]। शेखा के अकेले रह जाने से उसकी पराजय हो गई, हरदास मारा गया और नवाब का सारा सामान विजेताओं के हाथ लगा। गांगा तथा जैतसी को, शेखा युद्धक्षेत्र में निपट घायल दशा में मिला। होश में लाये जाने पर जब उसका जैतसी से सामना हुआ तो उसने कहा—"रावजी, भला मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो यह चढ़ाई की। हम चाचा-भतीजे आपस में निपट लेते।" इतना कहने के साथ ही वह मर गया। उसका अन्तिम संस्कार करने के उपरांत गांगा तथा जैतसी अपने-अपने डेरों में गये। वहां से विदा होकर जैतसी बीकानेर लौट गया[3]।

---

(१) ख्यातों आदि से पाया जाता है कि ख़ान का हाथी भागकर मेड़ते पहुंचा, जहां वीरम दूदावत ने उसे पकड़ लिया। राव गांगा के पुत्र मालदेव ने वीरम से वह हाथी मांगा, परन्तु वीरम ने देने से इनकार कर दिया। यही मालदेव और वीरम के बीच के वैमनस्य का कारण हुआ, जिसका वृत्तांत आगे लिखा जायगा।

(२) एक अज्ञातनामा चारण के बनाये हुए प्राचीन छप्पय में वि० सं० १५८५ कार्तिक वदि १३ (ई० स० १५२८ ता० ११ अक्टोबर) को राव जैतसी और मुग़ल (मुसलमान) ख़ान में जाखाणिया (बीकानेर और नागोर की सीमा पर नागोर से १८ मील पश्चिम) नामक स्थान में युद्ध होना तथा ख़ान का हारकर भागना लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़; संख्या १३, ई० स० १९१७, पृ० २४१)। सम्भवतः यह कथन सरखेलख़ां तथा उसके पुत्र दौलतख़ां से सम्बन्ध रखता हो। उनके साथ की लड़ाई का संवत् ख्यातों आदि में एक सा नहीं, किन्तु मूंदियाड़वालों की ख्यात में १५८५ तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में १५८६ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १५२९ ता० २ नवम्बर) दिया है (जि० १, पृ० ६४) और यह लड़ाई सेवकी के तालाब पर होना लिखा है। सेवकी शायद जाखाणिया के पास ही कोई स्थान अथवा तालाब हो।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जिल्द २, पृ० १४४-१५२। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ११-१३। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ६५-७०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १४-१५।

बीठू सूजा-रचित 'राव जैतसी रो छन्द' में लिखा है—'मुग़लों ने प्रवेशकर केवल थोड़े से समय में ही उत्तरी-भारत के बहुत से प्रदेशों पर अपना आधिपत्य कर लिया था। देवकरण पंवार ने बाबर के उत्कर्ष को रोकने की चेष्टा की, परन्तु मुग़लों के विशाल सैन्य के सामने उसे पराजित होना पड़ा। फिर भाखर, अरोड़, मुलतान, खेड़, सातलमेर, उच्च, मुम्मण-बाहण, मारोठ, देरावर, भरेहा, बगा, भंभेरी, मांगलोर, जम्मू, सिरमौर, लाहौर, देपालपुर आदि स्थान एक-एक करके उस (बाबर) के अधीन हो गये। जानू, खोखर, वरिहा, यादव, तंवर एवं चहुआण जातियों को परास्तकर बाबर ने उनके गढ़ों को नष्ट कर दिया। अनन्तर सुलतान इब्राहीम लोदी से दिल्ली, मीरों से आगरा तथा पठानों से बयाना भी उसने ले लिये और जौनपुर, अयोध्या एवं बिहार (प्रान्त) भी उसके अधिकार में आ गये। मेवाड़ का महाराणा सांगा उसका अवरोध करने के लिए आगरे गया, परन्तु वह पराजित हुआ। फिर बाबर ने अलवर और मेवात का विध्वंस करने के उपरान्त आमेर, सांभर तथा नागोर को विजय किया।

कामरां से युद्ध

'बाबर की मृत्यु होने पर, उसका राज्य उसके पुत्रों में विभाजित हो गया, जिनमें से कामरां ने लाहौर को अपने अधिकार में कर स्वतंत्र राज्य की स्थापना की[1]। उस समय तक भारत (उत्तरी) के प्रायः सभी छोटे-बड़े राज्य मुग़लों के अधीन हो गये थे (?), केवल राठोड़ों का राज्य ही ऐसा बच रहा था, जिसकी स्वतंत्रता पर आंच न आई थी। तब भारत के उत्तरी प्रदेश के स्वामी कामरां ने एक बड़ी फ़ौज के साथ मारवाड़ की ओर मुख मोड़ा। सतलज को पारकर बठिंडा (भटिंडा) तथा अभोहर के बीच से अग्रसर हो, मुग़ल सेना ने भटनेर पर चढ़ाई कर उसे घेर लिया। भटनेर (हनुमानगढ़) उन दिनों खेतसी (कांधल के पौत्र) के

(१) हुमायूं ने गद्दी पर बैठने के बाद कामरां को काबुल, कन्दहार, ग़ज़नी और पंजाब के इलाक़े सौंपे थे (बील; ओरिएन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० २०८)।

अधिकार में था[1]। मुग़लों ने उसके पास अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए दूत भेजे, परन्तु इसके उत्तर में निर्भीक वीर खेतसी युद्ध करने को उद्यत हो गया। तीरों और तोपों की वर्षा करते हुए जब मुग़लों ने गढ़ की दीवार पर चढ़कर भीतर प्रवेश करना प्रारम्भ किया, तब खेतसी द्वार खोल जैसा, राणिगदेव आदि अपने वीरों के साथ उनपर टूट पड़ा और लड़ता हुआ मारा गया। फल-स्वरूप भटनेर के गढ़ पर मुग़लों का अधिकार हो गया[2]।

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में खेतसी के भटनेर लेने की बात इस प्रकार लिखी है—'भटनेर में बादशाह हुमायूं का थाना रहता था। उस वक्त खेतसी से एक कानूंगो ने आकर कहा कि यदि तू मेरी सहायता करता रहे तो तुझे गढ़ दिलवाऊं। उस कानूंगो को निकालकर दूसरा नियत कर दिया गया था, उसी जलन के मारे वह खेतसी के पास गया था। खेतसी ने कहा—"भली बात है, मैं भी यही चाहता हूं।" अपने काका और बाबा पूरणमल कांधलोत और दूसरे कई राजपूतों को साथ ले, कानूंगो को आगे कर वह चढ़ धाया। कानूंगो ने पहले स्वयं गढ़ में प्रवेशकर एक रस्से के सहारे खेतसी तथा उसके साथियों को ऊपर चढ़ा लिया। इस प्रकार गढ़ खेतसी के कब्ज़े में आ गया (जिल्द २, पृ० १६२)।'

इसके विपरीत दयालदास की ख्यात में लिखा है कि राव जैतसी की आज्ञा पाकर पूरणमल आदि की सहायता से साहबे के ठाकुर अरड़कमल (कांधलोत) ने सहू चायल से भटनेर का गढ़ छीन लिया था (जि० २, पत्र १४)।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है—'बड़गच्छ का एक यती बीकानेर में रहता था। उसके पास कोई अच्छी चीज़ थी। राव जैतसी ने वह चीज़ उससे मांगी, परंतु यती ने दी नहीं, तब राव ने उसे मारकर वह वस्तु ले ली। फिर कामरां (हुमायूं का भाई जो काबुल में राज करता था) हिन्दुस्तान पर चढ़ आया। उस यती का चेला उससे मिलकर उसे भटनेर पर चढ़ा लाया (जि० २, पृष्ठ १६२-६३)।'

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि भावदेव सूरि नाम के एक जैन पंडित ने, जिससे राठोड़ों से कुछ कहा-सुनी हो गई थी, दिल्ली जाकर कामरां से भटनेर के गढ़ की बहुत प्रशंसा की, जिसपर उस(कामरां)ने ससैन्य आकर भटनेर को घेर लिया। कुछ दिनों के युद्ध के बाद उस गढ़ का स्वामी खेतसी मारा गया और वहां कामरां का अधिकार हो गया (जि० २, पत्र १४); परन्तु एक जैन पंडित के दिल्ली जाकर

'वहां से कामरां की फ़ौज बीकानेर की ओर अग्रसर हुई, जिसकी सूचना दूतों ने आकर राव जैतसी को दी। वहां पहुंचकर भी मुग़लों ने अधीनता स्वीकार करने का पैग़ाम जैतसी के पास भेजा, परन्तु उसने बीका के वंशज के अनुरूप ही उत्तर दिया—"जाओ, कामरां से कह देना कि जिस प्रकार मेरे वंश के मल्लीनाथ, सतसल्ल (सांतल), रणमल, जोधा, बीका, दूदा, लूणकर्ण गांगा आदि ने मुसलमानों का गर्व-भंजन किया था, उसी प्रकार मैं भी तेरा नाश करूंगा।" दूतों ने यह उत्तर जाकर अपने स्वामी से कहा, जिसपर उसने अपनी सेना सहित तलहटी में प्रवेश किया। जैतसी ने इस अवसर पर इतनी बड़ी सेना का सामना करना उचित न समझा और अपनी भयभीत प्रजा को आगे कर वह वहां से दूर हट गया। केवल भोजराज रूपावत कुछ भाटियों के साथ बीकानेर के गढ़ (पुराना) की रक्षा के लिए रह गया, जिसे मारकर मुग़लों ने वहां पर अधिकार कर लिया, परन्तु जैतसी भी चुप न बैठा रहा। इसी बीच में उसने एक बड़ी सेना मुग़लों का सामना करने के लिए एकत्र कर ली। अपने भाइयों में से तेजसी, रतनसिंह, नेतसी और रामसिंह एवं अपने सरदारों में से हरराज, सांगला (सांगा), डूंगरसिंह, जयमल (जग्गा का वंशज), संकरसी, नारायण, जग्गा (कछवाहा), अमरसिंह, गांगा, पृथ्वीराज, रायमल, भीम, संग्रामसिंह (सोढ़ा), दुर्जनसाल (ऊदावत) आदि चुने हुए १०६ वीर राजपूत सरदारों तथा सारी सेना के साथ उसने वि० सं० १५६१ मार्गशीर्ष वदि ४ (ई० स० १५३४ ता० २६ अक्टोबर) को रात्रि के समय मुग़लों की सेना पर आक्रमण कर दिया[1]। राठोड़ों के इस प्रबल हमले का सामना मुग़ल सेना

कामरां को भटनेर पर चढ़ा लाने की बात निराधार है, क्योंकि यह घटना बाबर की मृत्यु (वि० सं० १५८७=ई० स० १५३०) के बाद की है, जब कामरां लाहौर में था और वह वहां से ही चढ़कर आया होगा।

(१) ख्यातों आदि में वि० सं० १५९५ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १५३८ ता० २९ सितंबर) को रात्रि के समय राव जैतसी का कामरां की फ़ौज पर आक्रमण करना लिखा है (दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १४। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ७४ आदि); परन्तु इस सम्बन्ध में बीठू सूजा का

न कर सकी और मैदान छोड़कर लाहौर की ओर भाग खड़ी हुई। जैतसी की मुसलमानों पर यह विजय राठोड़ों के इतिहास में चिरकाल तक अमर रहेगी[1]।'

बीठू सूजा के कथन में अतिशयोक्ति अवश्य पाई जाती है, परन्तु मूल कथन विश्वसनीय है। डाक्टर टेसिटोरी के कथनानुसार यह ग्रंथ उक्त घटना से लगभग एक वर्ष पीछे लिखा गया था, इसलिए इसका अधिकांश ठीक होना चाहिये।

जोधपुर राज्य का अधिकांश भाग राव गांगा के हाथ से निकलकर, केवल दो परगने (जोधपुर और सोजत) ही उसके अधीन रह गये थे। यह बात उसके ज्येष्ठ पुत्र मालदेव को खटकती थी और वह उसे मारकर गद्दी हस्तगत करना चाहता था। पहले तो मालदेव ने विष देकर अपने पिता को मारने का प्रयत्न किया, परन्तु जब इसमें सफलता न मिली तो उसने अवसर पाकर एक दिन उस(गांगा)को झरोखे पर से, जहां बैठकर वह दातुन कर रहा था, नीचे गिराकर मार डाला और वि० सं० १५८८ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १५३१ ता० २८ जुलाई) को स्वयं जोधपुर की गद्दी पर बैठ गया[2]। नागोर, सिवांणा आदि स्थानों पर अधिकार

राव मालदेव की बीकानेर पर चढ़ाई और जैतसिंह का मारा जाना

कथन ही अधिक विश्वासयोग्य है, क्योंकि उसने उक्त घटना के कुछ समय बाद ही अपना ग्रन्थ रचा था।

(१) छन्द १०८-४०१। मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जिल्द २, पृ० १९३) में भी राव जैतसी का कामरां को परास्त कर भगाना लिखा है।

शिवा (सम्भवतः चारण) के बनाये हुए एक गीत में भी जैतसी-द्वारा कामरां की फ़ौज के परास्त किये जाने का उल्लेख है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़ १३, ई० स० १९१७, पृ० २४२-४३)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जिल्द १, पृ० ६८।

दयालदास की ख्यात में वि० सं० १५८८ ज्येष्ठ वदि ३ (ई० स० १५३१ ता० ४ मई) को मालदेव का जोधपुर की गद्दी पर बैठना लिखा है (जि० २, पत्र १५)।

करने के अनन्तर वि० सं० १५६८ (ई० स० १५४१) में उसने बीकानेर पर अधिकार करने के लिए कूंपा महराजोत[1] एवं पंचायण करमसियोत[2] की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी। इस सम्बन्ध में जयसोम अपने 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखता है—

'किसी समय मालदेव सेना के साथ जांगलदेश (बीकानेर राज्य) पर अधिकार जमाने की इच्छा करने लगा। तब जैतृसिंह (जैतसिंह) ने मंत्री (नगराज[3]) से कहा कि मालदेव बलवान है, हम लोगों से जीता नहीं जा सकता। इसलिए उसके साथ लड़ाई की इच्छा करना फलदायक नहीं। सुना जाता है, वह यहां पर चढ़ाई करनेवाला है, इसलिए उसके चढ़ आने के पहले ही उपाय की मंत्रणा करनी चाहिये। फिर आ जाने पर क्या हो सकता है? तब निपुण मंत्री ने यह सलाह दी कि शेरशाह का आश्रय लेना चाहिये। इसके बिना हमारा काम न निकलेगा; क्योंकि समर्थ की चिन्ता समर्थ ही मिटा सकता है—हाथी के सर की खुजलाहट बड़े वृक्ष से ही मिट सकती है। यह सुनकर जैतसिंह ने कहा—"अपना काम सिद्ध करने के लिए तुमने ठीक कहा। अपने से बढ़कर गुणवान की सेवा निष्फल होने पर भी अच्छी है; सफल होने पर तो कहना ही क्या! इसलिए तुम्हीं सोत्साह मन से शाह के समीप जाओ, क्योंकि मानस-सरोवर के बिना हंस प्रसन्न नहीं होते।" फिर नज़राने के उपायों में चतुर मंत्री नगराज "जो आज्ञा" कहकर क्षत्रियों की सेना लेकर (अच्छे) शकुनों से

(१) कूंपा जोधपुर के राव रिड़मल (रणमल) का प्रपौत्र, अखैराज का पौत्र और महराज का पुत्र था। कूंपा से राठोड़ों की कूंपावत शाखा चली। कई कूंपावत सरदार इस समय भी जोधपुर राज्य में विद्यमान हैं, जिनमें मुख्य आसोप का सरदार है।

(२) जोधपुर के राव जोधा के एक पुत्र का नाम कर्मसी था। कर्मसी का एक पुत्र पंचायण था।

(३) जोधपुर के राव जोधा ने जब अपने पुत्र विक्रम (बीका) को जांगल-देश विजयकर नवीन राज्य स्थापित करने को भेजा, उस समय मंत्री वत्सराज को भी उसके साथ कर दिया था। नगराज उक्त मंत्री वत्सराज के दूसरे पुत्र वरसिंह का पुत्र था।

अपने अर्थ के सिद्ध होने का अनुभव कर, बादशाह के पास पहुंचा। मंत्रणा में निपुण नगराज ने हाथी, घोड़े, ऊंट आदि भेट करके शूरवीरों की रक्षा करनेवाले सुलतान को प्रसन्न किया। (अपनी अनुपस्थिति में) शत्रु की चढ़ाई के डर से (राजकुमार) कल्याण सहित सब राजपरिवार को उस (नगराज) ने सारस्वत (सिरसा) नगर में छोड़ा था। मालदेव के मरुस्थल लेने के लिए आने पर जैतसिंह क्रोध से विकराल मुख होकर युद्ध करने के लिए शत्रुओं के सम्मुख आया। युद्ध आरंभ होने पर मंत्री भीम[1] योद्धाओं के साथ लड़ता हुआ, शुद्ध ध्यानपूर्वक राजा के सामने स्वर्ग को प्राप्त हुआ। संग्राम में जैतसिंह के मारे जाने पर मालदेव जांगल-देश छीनकर जोधपुर लौट गया[2]।'

इसके विपरीत ख्यातों आदि में लिखा है कि अपने सरदारों, कूंपा महराजोत एवं पंचायण करमसियोत को साथ ले मालदेव के बीकानेर पर चढ़ आने पर, राव जैतसी ससैन्य उसके मुक़ाबिले को आया और गांव साहेबा (सोहवा) में डेरे हुए। सांखला महेशदास और रूपावत भोजराज (भेलू व चारू का ठाकुर) को उसने गढ़ तथा नगर की रक्षा के लिए बीकानेर में छोड़ दिया। जैतसी ने किसी समय पठानों से कुछ घोड़े खरीदे थे, जिनका दाम कामदारों ने चुकाया नहीं था, जिससे वे सब सोहवे में अपने दाम मांगने आये। जैतसी ने ऐसे समय किसी का भी ऋण रखना उचित न समझा, अतएव अपने सेवकों को यह आदेश देकर कि मैं लौटकर न आऊं तब तक मेरे जाने का समाचार किसी पर खोला न जाय उसने तत्काल पठानों के साथ बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंचने पर उसने कार्यकर्त्ताओं को डांटा और रुपया चुका देने को कहा, परन्तु उस समय पठानों ने रुपया लेने से इनकार कर दिया। इन बातों के कारण जैतसी को सोहवे लौटने में प्रायः एक प्रहर लग गया; परन्तु इसी बीच

(१) भीम (भीमराज) मंत्री वत्सराज के तीसरे पुत्र नरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था।

(२) कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्; श्लोक २०४ से २१८।

उसके चले जाने का समाचार सारी सेना में फैल चुका था और अधिकांश सरदार आदि अपनी-अपनी सेना के साथ वापस जा चुके थे। उधर जैसे ही मालदेव को अपने चरों-द्वारा जैतसी के लौटने का समाचार मिला वैसे ही उसने उसपर आक्रमण कर दिया। जैतसी ने बचे हुए लगभग १५० राजपूतों के साथ उसका सामना किया, परन्तु मालदेव की सेना बहुत अधिक थी, जिससे १७ आदमियों को मारकर वह अपने सब साथियों सहित इसी युद्ध में काम आया। विजयी मालदेव ने नगर में प्रवेश किया, परन्तु इसके पहले ही भोजराज ने जैतसी के परिवार को सिरसा भिजवा दिया था। तीन दिन तक गढ़ के भीतर रहकर चौथे दिन भोजराज अपने साथियों सहित मालदेव की फ़ौज पर टूट पड़ा और वीरतापूर्वक लड़कर काम आया। मालदेव ने गढ़ तथा नगर पर अधिकार कर लिया और कूंपा तथा पंचायण को वहां का इन्तज़ाम करने के लिए नियुक्त किया[1]।

ख्यातों आदि में जैतसिंह के मारे जाने का समय वि० सं० १५९८ चैत्र वदि ११ (ई० स० १५४२ ता० १२ मार्च) दिया है[2], जो ठीक नहीं है, क्योंकि उसकी स्मारक छत्री के लेख में वि० सं० १५९८ फाल्गुन

---

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १५-१६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८३। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ७५-८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६-७। ख्यातों के अनुसार जैतसी की मृत्यु के उपरान्त कुंवर कल्याणमल का भोजराज-द्वारा सिरसा भिजवाया जाना कल्पना मात्र ही है। इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन कि मंत्री नगराज शेरशाह सूर के पास जाते समय ही कुंवर और राजपरिवार को सिरसा छोड़ गया था, अधिक विश्वासयोग्य है, क्योंकि उस(जयसोम)का ग्रन्थ ख्यातों आदि से बहुत प्राचीन है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८३। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६। जोधपुर राज्य की ख्यात में जैतसी के मारे जाने का समय वि० सं० १५९८ चैत्र वदि ५ (ई० स० १५४२ ता० ६ मार्च) दिया है (जि० १, पृ० ६६), परन्तु अन्य ख्यातों आदि के समान ही यह भी ग़लत है।

सुदि ११ (ई० स० १५४२ ता० २६ फ़रवरी) को उसकी मृत्यु होना लिखा है[1]।

सन्तति

जैतसी के १३ पुत्र हुए[2]—

(१) सोढ़ी राणी कश्मीरदे से[3]—

१—कल्याणमल

२—भींवराज—इसके वंश के भीमराजोत बीका कहलाये।

३—ठाकुरसी—इसने जैतपुर बसाया।

४—मालदे।

५—कान्हा।

(२) सोनगरी राणी रामकुंवरी से—

१—शृंग—इसके वंश के शृंगराजोत बीका कहलाये।

---

(१) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे······१५९८ वर्षे शाके १४६३ प्रवर्त्तमाने मासोत्तममासे फाल्गुनमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ एकादश्यां ················रावजी लूणकरणजी तत्पुत्रः रावजी श्रीजैतसिंहजी वर्मा तिसृभिः धर्मपत्नीभिः················परमधाम मुक्तिपदं प्राप्तः।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६। वीरविनोद भाग २; पृ० ४८३। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ८३-४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १७।

टॉड ने जैतसी के केवल ३ पुत्र—कल्याणसिंह, सिया तथा यशपाल—होना लिखा है और यह भी लिखा है कि उसने अपने दूसरे पुत्र सिया को नारनोत (नारनोल) विजय कर दिया (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२), परन्तु सिया का अन्य किसी ख्यात में नाम नहीं मिलता।

(३) सोढी कश्मीरदे तथा उससे उत्पन्न पांच पुत्रों के नाम जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में भी मिलते हैं—

तत्सुरतरं (?) लोके प्रथमः कल्याणमल्लराजोऽभूत्।
श्रीमालदेवभीमौ ठाकुरसीकान्हनामानौ ॥ १८० ॥
कसमीरदेविजाताः पंचामी पांडवा इवापूर्वाः।
व्यसनविमुक्ता दुर्योधनप्रियाः संत्यमी यस्मात् ॥ १८१ ॥

२—सुर्जन—इसने सुर्जनसर बसाया।

३—कर्मसेन।

४—पूरणमल्ल।

५—अचलदास।

६—मान।

७—भोजराज।

८—तिलोकसी।

राव जैतसी ने जिस समय शासन की बाग-डोर अपने हाथ में ली उस समय परिस्थिति बड़ी भीषण थी। विद्रोही सरदारों के किसी क्षण भी बीकानेर पर चढ़ आने की आशंका विद्यमान थी, परन्तु सतर्क जैतसी इसके लिए पहिले से ही तैयार था और उसने थोड़े समय में ही गढ़ आदि का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर लिया कि छापर-द्रोणपुर के स्वामी उदयकरण के बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा से आने पर उसे निराश होकर लौटना पड़ा।

राव जैतसी का व्यक्तित्व

जैतसी वीर और योग्य शासक होने के साथ ही युद्धनीति का भी अच्छा ज्ञाता था। सदैव युद्ध के हरएक पहलू पर गंभीरतापूर्वक विचार कर लेने के अनन्तर ही वह अपनी नीति निर्धारित करता था। प्रसिद्ध मुग़ल शासक बाबर की मृत्यु के बाद उसके पुत्र लाहौर के स्वामी कामरां की बीकानेर पर चढ़ाई होने पर जैतसी ने अद्भुत युद्ध-चातुर्य का परिचय दिया था। कामरां की विशाल वाहिनी को केवल वीरता से परास्त नहीं किया जा सकता था। जैतसी भी यह भलीभांति समझता था। इस अवसर पर उसने बड़े धैर्य और चातुर्य्य से काम लिया। गढ़ खाली छोड़कर उसने पहले यवन-सेना को भीतर बढ़ आने का लालच दिया, जिसमें वह फंस गई। फिर तो उसने उसे बुरी तरह हराकर भगा दिया और इस प्रकार अपने पूर्वजों की उपार्जित कीर्ति को और भी उज्ज्वल बनाया।

उसके अन्य गुणों में उदारता, दूरदर्शिता और वचन-पालन का उल्लेख करना आवश्यक है। जहां वह इतना कठोर था कि उसने सिंहासनारूढ़ होते ही अपने पिता के साथ धोका करनेवाले सरदारों को उपयुक्त दंड दिये बिना चैन न लिया, वहां उसकी उदारता भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। अपने भाइयों और अन्य सम्बन्धियों आदि को अवसर पड़ने पर उसने सहायता देने से कभी पैर पीछे न हटाया। जोधपुर के राव मालदेव की बीकानेर पर चढ़ाई करने का विचार सुनते ही, जब उसने देखा कि अकेले उसका सामना करना आसान नहीं है, तो उसने पहले से ही अपने चतुर मंत्री नगराज को शेरशाह के पास से सहायता लाने के लिए भेज दिया और अपने परिवार को भी सुरक्षित स्थान सिरसा में पहुंचवा दिया। यदि ख्यातों के कथन पर विश्वास किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि वचन-पालन के कारण ही उसकी जान गई। जहां इसे हम दुर्लभ गुण कहेंगे, वहां राजनीति की दृष्टि से इसे अदूरदर्शिता ही कहा जायगा।

राव जैतसी ने अपने पिता के समान ही अपने राज्य के वैभव में अभिवृद्धि की। उसके समय में प्रजा हर प्रकार से सुखी और सम्पन्न थी। दुर्भिक्ष आदि संकट के समयों पर उसके समय में भी राज्य की तरफ़ से अन्नक्षेत्र आदि खोलकर पीड़ित प्रजाजनों को हर प्रकार की सुविधाएं पहुंचाई जाती थीं[२]।

---

(१) बीठू सूजा; जैतसी रो छन्द; संख्या ६६-१०३।

(२) दीनानाथजनानामुपकारपरायणैकधिषणाभृत्।
तेने च सत्रशालां दुःकाले कालभावज्ञः ॥ १८८ ॥
(जयसोम; कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)।

पांचवां अध्याय

राव कल्याणमल से महाराजा सूरसिंह तक

राव कल्याणमल (कल्याणसिंह)

जन्म

राव जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र राव[1] कल्याणमल का जन्म सोढ़ी राणी कश्मीरदे के उदर से वि० सं० १५७५ माघ सुदि ६ (ई० स० १५१६ ता० ६ जनवरी) को हुआ था[2]।

कल्याणमल का सिरसा में रहना

राव जैतसी को मारकर जोधपुर के राव मालदेव ने बीकानेर पर अधिकार कर लिया और कूंपा महराजोत एवं पंचायण करमसीओत को वहां के प्रबन्ध के लिए छोड़कर वह जोधपुर लौट गया। ख्यातों आदि में लिखा है कि बीकानेर के आधे राज्य पर मालदेव का अधिकार हो गया था[3]। मंत्री नगराज ने दिल्ली के सुलतान शेरशाह[4] के पास जाते समय ही कुंवर

---

(१) कल्याणमल की छत्री के लेख में उसे 'महाराजाधिराज' और 'राई' (राव) लिखा है—

·········महाराजाधिराज राइ श्रीकल्याणमल·········

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८४। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ८५।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवनचरित्र; पृ० ८२।

(४) शेरशाह, जिसका असली नाम फ़रीद था हिसार का रहनेवाला था। उसका पिता हसन, सूर ख़ानदान का अफ़ग़ान था, जिसको जौनपुर के हाकिम जमालख़ां ने ससराम और टांडे के ज़िले ५०० सवारों से नौकरी करने के एवज़ में दिये थे। फ़रीद कुछ समय तक बिहार के स्वामी मुहम्मद लोहानी की सेवा में रहा और एक शेर को मारने पर उसका नाम शेरख़ां रक्खा गया। वीर प्रकृति का पुरुष होने के

कल्याणमल एवं अन्य राज-परिवार को सिरसा (सारस्वत) में पहुंचा दिया था, जैसा कि जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से पाया जाता है[1]। कल्याणमल सिरसे में रहकर ही गई हुई भूमि को पुनः हस्तगत करने का उद्योग करने लगा। इस कार्य में शेखसर का गोदारा स्वामी उसका सहायक रहा[2], परन्तु कल्याणमल को, क्षीण-शक्ति होने के कारण, इन प्रयत्नों में सफलता न मिली।

शेरशाह की राव मालदेव पर चढ़ाई

राव मालदेव वीर योद्धा होने के साथ ही महत्वाकांक्षी पुरुष था। शेरशाह-द्वारा हुमायूं के परास्त किये जाने का समाचार जब मालदेव को ज्ञात हुआ तो उसने भक्कर में हुमायूं के पास इस आशय के पत्र भेजे कि मैं तुम्हारी सहायता को तैयार हूं[3]। हुमायूं भक्कर की सीमा पर ता० २८ रमज़ान (वि० सं० १५९७ फाल्गुन वदि द्वितीय १४=ई० स० १५४१ ता० २६ जनवरी) के आसपास पहुंचा था[4]।

कारण उसकी शक्ति दिन-दिन बढ़ती गई। उसने ता० ९ सफ़र सन् ९४६ (वि० सं० १५९६ आषाढ सुदि द्वितीय १० = ई० १५३९ ता० २६ जून) को बादशाह हुमायूं को चौसा नामक स्थान (बिहार) में परास्त किया और दूसरी बार हि० स० ९४७ ता० १० मुहर्रम (वि० सं० १५९७ ज्येष्ठ सुदि १२ = ई० स० १५४० ता० १७ मई) को कन्नौज में हराकर आगरा, लाहौर आदि की तरफ़ उसका पीछा किया, जिससे वह सिंध की तरफ़ भाग गया। इस प्रकार हुमायूं पर विजय प्राप्तकर शेरख़ां उसके राज्य का स्वामी बना और शेरशाह नाम धारणकर हि० स० ९४८ ता० ७ शव्वाल (वि० सं० १५९८ माघ सुदि ९ = ई० स० १५४२ ता० २५ जनवरी) को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा (बील; ओरिएन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० ३८०)।

(१) शात्रवागममाशंक्य सकल्याणस्ततोऽखिलः ।
राजलोकोऽमुना मुक्तः श्रीसारस्वतपत्तने ॥ २१५ ॥

(२) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १७ ।

(३) तबकात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २०५ । इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ५, पृ० २११ ।

(४) बेवरिज; अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० ३६२ ।

उन्हीं दिनों शेरशाह को भी एक बड़ी सेना के साथ बंगाल के सूबेदार के खिलाफ़ जाना पड़ा था। संभवतः उसी अवसर पर मालदेव ने मुग़ल बादशाह से लिखा-पढ़ी की होगी, परन्तु हुमायूं ने उस समय इस विषय पर कोई ध्यान न दिया, क्योंकि उसे ठट्टा के शासक शाहहुसेन अर्घून से सहायता मिलने की आशा थी। जब शाहहुसेन की ओर से उसे निराशा हो गई, तो उसने उस(शाहहुसेन)पर आक्रमण किया, परन्तु इसमें भी उसे सफलता न मिली। तब उसने मालदेव की सहायता से लाभ उठाने का निश्चय किया[1] और उच्च व पोकरन होता हुआ वह फलोधी पहुंचा। वहां से उसने अत्काखां को मालदेव के पास भेजा[2]। निज़ामुद्दीन लिखता है—'जब हुमायूं भागकर मालदेव के राज्य में आया तब उसने शम्सुद्दीन अत्काखां को जोधपुर भेजा और स्वयं उसके आने की राह देखता हुआ वह मालदेव के राज्य की सीमा पर ठहर गया। जब मालदेव को हुमायूं की कमज़ोरी और शेरशाह से मुक़ाबला करने योग्य सेना का उसके पास न होना ज्ञात हुआ तब उसे भय हुआ, क्योंकि शेरशाह ने अपना एक दूत मालदेव के पास भेजकर बड़ी-बड़ी आशाएं दिलाई थीं और उसने भी शेरशाह से प्रतिज्ञा कर ली थी कि यथा-संभव मैं हुमायूं को पकड़कर आपके पास भेज दूंगा। उधर नागोर पर शेरशाह ने अधिकार कर लिया था, अतः उसे भय था कि हुमायूं के विरुद्ध होने से वह मारवाड़ पर भी बड़ी फ़ौज न भेज दे। हुमायूं को इस बात की सूचना न मिल जाय इसलिए उसके दूत अत्काखां को उसने वहीं रोक लिया, परन्तु वह मौक़ा पाकर हुमायूं के पास भाग गया और उसने उसे यह सब ख़बर दे दी[3]।'

---

(१) तबक़ात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २०३-२११। इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ५, पृ० २०७-२११।

(२) जौहर; तज़किरातुल वाक़यात (फ़ारसी); पृ० ७६-७८। स्टिवर्ट-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ३६-३८।

(३) तबक़ात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ५, पृ० २११ १२।

आगरा लौटने पर जैसे ही शेरशाह को हुमायूं के मालदेव के पास मारवाड़ में आने का समाचार मिला, उसने ससैन्य उस (मालदेव) के राज्य में प्रवेश किया और दूत भेजकर कहलाया कि या तो हुमायूं को अपने राज्य से निकाल दो या लड़ने के लिए तैयार हो जाओ। इस अवसर पर मालदेव ने शेरशाह का सामना करना बुद्धिमत्ता का कार्य न समझा, अतएव उसे लाचार होकर हुमायूं के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। हुमायूं को इसकी सूचना अत्काखां आदि से मिल गई और वह वहां से भागकर अमरकोट चला गया। इस प्रकार मालदेव के साथ शेरशाह की लड़ाई कुछ समय के लिए रुक गई[1]।

पर शेरशाह के दिल में मालदेव की तरफ़ से खटका बना ही रहा। उधर मालदेव की महत्वाकांक्षा में भी कमी न आई थी। शेरशाह को यह भी भय था कि कहीं सब राजपूत एकत्र होकर कोई बखेड़ा न करें। अतएव इन दोनों प्रबल शक्तियों में कभी न कभी युद्ध अवश्यंभावी था। ऐसे में राव जैतसी का मंत्री नगराज उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उससे अपने स्वामी की सहायता के लिए चलने की प्रार्थना की[2]। फलतः

(१) के० आर० कानूनगो; शेरशाह; पृ० २७५-७६।

(२) जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से ऐसा ही पाया जाता है—

राजन्यसैन्यमादाय दायोपायविशारदः।
शकुनानुमितस्वार्थसिद्धिः साहिमुपेयिवान् ॥ २१३ ॥
गजाश्वकरभव्रातमुपदीकृत्य सेवया।
शूरत्राणं सुरत्राणं प्रीणयामास मंत्रवित् ॥ २१४ ॥
साग्रहं साहिमभ्यर्थ्य सममेवास्य सेनया।
वैरिमंडलमुद्वास्य रणे हत्वा च तद्भटान् ॥ २१६ ॥

दयालदास की ख्यात में लिखा है—'राव जैतसी के मारे जाने पर आधे बीकानेर पर मालदेव का अधिकार हो गया और कल्याणमल सिरसा में रहने लगा, जिससे आज्ञा ले भीमराज (कल्याणमल का छोटा भाई) दिल्ली में बादशाह हुमायूं की सेवा में जा रहा। मालदेव ने वीरमदेव को मेड़ते से निकालकर वहां अपना

एक विशाल सैन्य के साथ हि० सन् ६५० के शव्वाल (वि० सं० १६०० माघ = ई० स० १५४४ जनवरी) के मध्य में उसने मालदेव के विरुद्ध प्रस्थान किया[1]। दिल्ली से चलकर शेरशाह नारनोल और फ़तहपुर होता हुआ मेड़ते पहुंचा[2]। कल्याणमल भी सिरसा से प्रस्थान कर मार्ग में शेरशाह की सेना के साथ मिल गया[3]।

अधिकार कर लिया था, जिससे वह (वीरम) भी कल्याणमल के पास सिरसा होता हुआ भीमराज के पास दिल्ली चला गया। उन दिनों शेरशाह अपने पिता के साथ बादशाह हुमायूं की सेवा में रहता था। शेरशाह की तनख़्वाह के १५ लाख रुपये बादशाह के पास बाक़ी थे, जो भीमराज ने बादशाह से कह-सुनकर दिलवा दिये। इन्हीं रुपयों के बल से शेरशाह ने लाहौर जाकर फ़ौज एकत्र की और हुमायूं को भगाकर वह स्वयं दिल्ली के तख़्त पर बैठ गया। भीमराज और वीरमदेव तब शेरशाह की सेवा में रहने लगे। कुछ दिनों बाद बादशाह उनकी सेवा से प्रसन्न हुआ और भीमराज तथा वीरमदेव के साथ एक विशाल सैन्य लेकर उसने मालदेव पर चढ़ाई कर दी। मार्ग में कल्याणमल भी मिल गया। मालदेव को परास्त कर शेरशाह ने बीकानेर कल्याणमल को और मेड़ता वीरमदेव को दे दिया। गया हुआ राज्य वापस दिलाने के बदले में कल्याणमल ने अपने भाई भीमराज को "गई भूम का बाहड़ू" का विरुद दिया और भीमसर में उसका ठिकाना बांधा (जिल्द २, पत्र १७-२०)', परन्तु उपर्युक्त कथन का अधिकांश निराधार ही प्रतीत होता है, क्योंकि जैतसी के मारे जाने से पूर्व ही शेरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया था। ऐसी दशा में शेरशाह का हुमायूं की सेवा में रहना और उसकी तनख़्वाह के १५ लाख रुपये बाक़ी रह जाना कैसे संभव हो सकता है। यह माना जा सकता है कि भीमसिंह तथा वीरमदेव भी शेरशाह की सेवा में रहे हों। जोधपुर राज्य की ख्यात में स्वयं कल्याणमल का दिल्ली जाना लिखा है (जि० १, पृ० ६६), पर यह कथन भी निराधार है, क्योंकि इसकी अन्य किसी ख्यात से पुष्टि नहीं होती। इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन ही विश्वासयोग्य है, क्योंकि यह संभवतः उसके जीवनकाल की ही घटना हो। बाक़ी की ख्यातें कई सौ वर्ष पीछे की लिखी हुई हैं।

(१) कानूनगो; शेरशाह; पृ० ३२१। अब्बासख़ां शेरवानी-कृत 'तारीख़-इ-शेरशाही' (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४) से पाया जाता है कि शेरशाह के पास इस अवसर पर बहुत बड़ी सेना थी।

(२) कानूनगो; शेरशाह; पृ० ३२१-४।

(३) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १६। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६।

उधर बीकानेर में राव मालदेव-द्वारा स्थापित किये हुए जोधपुर के थानों पर रावत किशनसिंह चढ़कर उत्पात करने लगा। लूणकरणसर, गारबदेसर आदि कुछ थानों को उजाड़कर वह गांव भीनासर तक आ पहुंचा। उस समय गढ़ में कूंपा महराजोत का अधिकार था। रावत ने उससे गढ़ खाली कर देने को कहलाया, पर वह गढ़ के बाहर न निकला और उसने मालदेव के पास से सहायता मंगवाने के लिए आदमी भेजे। शेरशाह का आगमन सुनते ही मालदेव ने कूंपा से कहलाया कि गढ़ छोड़कर तुरन्त चले आओ, जिसपर कूंपा अपने साथियों-सहित गढ़ खालीकर जोधपुर चला गया। तब रावत ने बीकानेर के गढ़ पर अधिकार कर वहां कल्याणमल की दुहाई फेर दी[1]।

रावत किशनसिंह का बीकानेर पर अधिकार करना

जोधपुर से एक बड़ी सेना के साथ कूचकर मालदेव शेरशाह का सामना करने के लिए अजमेर के निकट पहुंचा। शेरशाह भी अपनी फ़ौज के साथ अजमेर के निकट पड़ा हुआ था। प्रायः एक मास तक दोनों फ़ौजें एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं, पर लड़ाई न हुई। शेरशाह चाहता था कि शत्रु उसपर हमला करे, परन्तु जब मालदेव ने उसपर आक्रमण न किया तब बादशाह ने यह चाल चली कि मालदेव के सरदारों के नाम से झूठे खत लिखवाकर अपने एक दूत के द्वारा गुप्त रूप से मालदेव के

राव मालदेव का भागना और शेरशाह का जोधपुर पर अधिकार

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पत्र १८-१६। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६०-६२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १६।

'वीरविनोद' में कृष्णसिंह (किशनसिंह) को राव लूणकर्ण का पुत्र लिखा है (भाग २, पृ० ४८४)।

उपर्युक्त ख्यातों में रावत किशनसिंह-द्वारा बीकानेर के गढ़ पर अधिकार होने का समय वि० सं० १६०१ पौष सुदि १५ (ई० स० १५४४ ता० २६ दिसम्बर) दिया है। यह नगर के भीतर का प्राचीन गढ़ (क़िला) था।

डेरों में डलवाये। उनमें यह लिखा था कि यदि हमें अमुक-अमुक जागीरें दी जावें तो हम मालदेव को पकड़कर आपके सुपुर्द कर देंगे और आपको लड़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी[1]। ऐसे पत्र पाकर मालदेव घबराया और अपने सरदारों पर से उसका विश्वास उठ गया, इसलिए उसने अपने सरदारों को पीछे हटने की आज्ञा दी। सरदारों ने शपथ लेकर विश्वास दिलाया कि ये कृत्रिम पत्र शेरशाह ने लिखवाये हैं, परन्तु मालदेव को उनके कथन पर विश्वास न हुआ और उसने वहां से लौटना ही उचित समझा[2]। ज्यों-ज्यों मालदेव पीछा हटता गया त्यों-त्यों बादशाह आगे बढ़ता गया।

---

(१) ठीक ऐसी ही चाल शाहज़ादे अकबर के बाग़ी होकर चढ़ आने पर औरंगज़ेब ने भी उसके साथ चली थी।

(२) अल्बदायूनी की 'मुंतख़बुत्तवारीख़' का रैंकिंग-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ४७८।

भिन्न-भिन्न ख्यातों में भिन्न-भिन्न प्रकार से इस घटना का उल्लेख किया गया है। मुंहणोत नैणसी लिखता है—'वीरम जाकर सूर बादशाह को मालदेव पर चढ़ा लाया। राव भी अस्सी हज़ार सवार लेकर मुक़ाबिले को गया। वहां वीरम ने एक तरकीब की—कूंपा के डेरे पर बीस हज़ार रुपये भिजवाये और कहलाया कि हमें कम्बल मंगवा देना और बीस ही हज़ार जेता के पास भेजकर कहा, सिरोही की तलवारें भेज देना; फिर राव मालदेव को सूचना दी कि जेता और कूंपा बादशाह से मिल गये हैं, वे तुमको पकड़कर हज़ूर में भेज देंगे। इसका प्रमाण यह है कि उनके डेरे पर रुपयों की थैली भरी देखना तो जान लेना कि उन्होंने मतलब बनाया है। राव मालदेव के मन में वीरम के वाक्यों से शंका उत्पन्न हो गई। उसने ख़बर कराई कि बात सच है या नहीं। जब अपने उमरावों के डेरों पर थैलियां पाईं तो मन में भय उत्पन्न हो गया (जि० २, पृ० १४७-४८)।'

दयालदास का वर्णन भी मुंहणोत नैणसी जैसा ही है। उसमें अन्तर केवल इतना ही है कि वीरम ने रुपये भिजवाकर कूंपा से सिरोही की तलवारें और जेता से कम्बल मंगवाये थे (जि० २, पत्र १६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है—'बादशाह ने मालदेव से कहलाया कि एक आदमी आप भेजें, एक मैं, इस प्रकार द्वंद्व युद्ध करें। मालदेव ने बीदा भारमलोत का नाम लिखवाकर भेज दिया। वीरमदेव ने बादशाह से कहा कि उससे

जब बादशाह समेल में पहुंचा, उस समय मालदेव गिरी में ठहरा हुआ था। राव ने वहां से भी पीछा हटना चाहा, परन्तु कूंपा, जैता आदि राठोड़ सरदारों ने कहा कि हम तो यहां से पीछे न हटेंगे और यहीं मर मिटेंगे। तब मालदेव अपने कितने एक सरदारों के साथ रात के समय उनको छोड़कर बिना लड़े जोधपुर की तरफ़ लौट गया। जैता, कूंपा आदि ने रात्रि के समय शत्रु पर आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु मार्ग भूल जाने के कारण उनका प्रातःकाल समेल नदी के पास मुसलमानों से युद्ध हुआ, जिसमें सबके सब काम आये और विजय शेरशाह की हुई[1]। यह घटना वि० सं० १६०० के चैत्र मास (ई० स० १५४४ मार्च) के आरम्भ में हुई[2]। फिर शेरशाह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। उसका आना सुनते ही मालदेव घूंघरोट के पहाड़ों में भाग गया और जोधपुर पर शेरशाह का अधिकार हो गया, जहां वह कई मास तक रहा।

बीकानेर राज्य के विषय में प्रमोद माणिक्य गणि के शिष्य जयसोम-रचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखा है कि मंत्री नगराज ने शेरशाह

युद्ध करने योग्य आपके पास कोई योद्धा नहीं है, मैं ही जाऊं, पर वीरमदेव को उसने जाने न दिया। तब उस (वीरमदेव) ने फ़रेब कर ढालों के भीतर रुक्के रखकर राठोड़ों में भिजवाये और इस प्रकार जैता, कूंपा आदि राजपूतों की तरफ़ से राव के मन में अविश्वास उत्पन्न कराया (जि० १, पृ० ७०-७१)।'

ख्यातों में दिये हुए उपर्युक्त सभी वर्णन कल्पित हैं। इस सम्बन्ध में बदायूनी का कथन ही विश्वासयोग्य कहा जा सकता है, क्योंकि वह अकबर के समय में विद्यमान था। अपने बाहुबल एवं चातुरी से भारत के सिंहासन पर अधिकार करनेवाला शेरशाह अपने आश्रित की राय पर चले, यह कल्पना से दूर की बात प्रतीत होती है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७०-७१।

(२) क़ानूनगो; शेरशाह; पृ० ३२९।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १५८-९। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १३। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दी बीकानेर स्टेट; पृ० २१।

शेरशाह का कल्याणमल को बीकानेर का राज्य देना

के हाथ से ही कल्याणमल को टीका दिलवाकर विक्रमपुर (बीकानेर) भेजा और आप बादशाह के साथ गया। फिर किसी समय बादशाह की आज्ञा पाकर नगराज अपने देश की ओर चला, परन्तु मार्ग में, अजमेर में उसका देहांत हो गया[1]।

भटनेर के चायल स्वामी अहमद और राव कल्याणमल के भाई ठाकुरसी में अनबन रहा करती थी, जिससे वह (ठाकुरसी) भटनेर लेने

कल्याणमल के भाई ठाकुरसी का भटनेर लेना

के उपाय में था। ठाकुरसी का विवाह जैसलमेर में हुआ था। पीछे से उसने अपने लिए राव की आज्ञा से जैतपुर का इलाक़ा क़ायम किया। भटनेर का एक तेली जैतपुर में ब्याहा था, वह जब अपनी ससुराल आया तो ठाकुरसी ने उसे अपने पास बुलवाकर भटनेर का हाल पूछा और उसकी खूब खातिरदारी की। इस प्रकार उस तेली को प्रसन्नकर ठाकुरसी ने उसे अपना सहायक बना लिया। तेली ने भी वचन दिया कि जब कभी आप भटनेर पधारेंगे तब मैं आपको ऐसी रीति से भीतर बुला लूंगा कि किसी को पता न चलेगा। जब तेली वहां से जाने लगा तो ठाकुरसी ने उसे वस्त्र, आभूषण, धन आदि बहुतसा सामान विदायगी में दिया और अपना एक मनुष्य उसके साथ कर दिया, जो जाकर भटनेर का एक-एक मार्ग देख

(१) साम्राज्यतिलकं साहिकरेणाकारयत्तरां।
कल्याणमल्लराजस्य स्वामिधर्मधुरंधरः ॥ २२१ ॥
राजानं प्रेषयामास विक्रमाख्यपुरं प्रति।
स्वयं त्वनुययौ साहेर्न संतः स्वार्थलंपटाः ॥ २२२ ॥
आज्ञामासाद्य साहेयीमन्यदा मंत्रिनायकः।
संतोषपोषभृज्जातः स्वदेशमभिगामुकः ॥ २२४ ॥
तूर्णं पथि समागच्छन्मंत्री पूर्णमनोरथः ॥
अजमेरपुरे स्वर्गमगात्पंडितमृत्युना ॥ २२५ ॥

आया। फिर धीरे-धीरे ठाकुरसी ने भटनेर पर आक्रमण करने की तैयारी आरंभ की और मूंज के मज़बूत रस्सों की एक सीढ़ी बनवाई।

जब कुछ दिनों बाद भटनेर का चायल स्वामी (अहमद) अपने पुत्र का विवाह करने के लिए गया तो तेली ने ठाकुरसी के पास इसकी सूचना भेजी और कहलाया कि गढ़ लेने का यही उपयुक्त अवसर है। यहां सिर्फ़ फ़ीरोज़ है। यह समाचार सुनकर ठाकुरसी ने अपने सारे साथियों सहित भटनेर की ओर प्रस्थान किया और उसी तेली के घर की तरफ़ जाकर इशारा किया, जिसपर उस (तेली) ने रस्सा ऊपर खींच लिया और तीरकस (तीर मारने के छिद्र) में कसकर बांध दिया। इस रस्से के सहारे ठाकुरसी अपने एक हज़ार राजपूतों के साथ गढ़ के भीतर घुस गया। फ़ीरोज़ ने खबर पाते ही अपने ५०० आदमियों के साथ उसका सामना किया, पर वह मारा गया। इस प्रकार वि० सं० १६०६ (ई० स० १५४९) में भटनेर का क़िला जीतकर ठाकुरसी ने वहां अपने बड़े भाई कल्याणमल की दुहाई फेर दी और उसकी तरफ़ से २० वर्ष तक वह वहां का हाकिम रहा[1]।

अनन्तर ठाकुरसी ने सिरसा, फतिहाबाद, सिवाणी, अहरवा, रतिया, बिठंडा (भटिंडा), लखी जंगल आदि को भी अपने इलाक़े में शामिल किया और फ़ौज भेज-भेजकर बटुआ (भट्टू) के आसपास झगड़ा करता रहा, जिससे उसे नज़राने में काफ़ी सामान मिला[2]।

ठाकुरसी की अन्य विजय

हि० स० ९५२ ता० १२ रबीउल्अव्वल (वि० सं० १६०२ ज्येष्ठ

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पत्र १९३-९४। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २१-२२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ९९-१०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २२-२३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २३।

सुदि १२=ई० स० १५४५ ता० २४ मई) को शेरशाह का कालिंजर की चढ़ाई में देहांत हो गया[1]। इसकी खबर मिलते ही मालदेव ने जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लिया[2]। वीरमदेव[3] के पीछे जब जयमल मेड़ते का स्वामी हुआ, तब मालदेव ने उससे छेड़-छाड़ करना आरम्भ किया और कहलाया कि मेरे रहते हुए तू सब भूमि दूसरों को न दे, कुछ खालसे के लिए भी रख। जयमल ने अर्जुन रायमलोत को ईडवे की जागीर दी थी, अतएव उस(जयमल)ने यह सब हाल उससे भी कहला दिया। राव मालदेव के तो दिल से लगी थी अतएव दशहरे के बाद ही उसने ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई कर दी और गांव गांगरडे में डेरे हुए। उसकी सेना चारों ओर घूम-घूम कर निरीह प्रजा को लूटने और मारने लगी[4]। तब जयमल ने बीकानेर आदमी भेजकर राव कल्याणमल से मदद करने के लिए कहलाया, जिस-पर उसने निम्नलिखित सरदारों को उस(जयमल)की सहायता के लिए मेड़ते भेजा[5]—

कल्याणमल का जयमल की सहायतार्थ सेना भेजना

(१) बील; ओरिएन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० ३८०-८१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७४। दयालदास की ख्यात में मालदेव का १५ वर्ष कष्ट में रहना तथा जब शेरशाह से अकबर ने दिल्ली छुड़ाई तब उस(मालदेव)का जोधपुर पर अधिकार करना लिखा है (जि० २, पत्र २०), परन्तु यह कथन निराधार है, क्योंकि अकबर ने गया हुआ राज्य शेरशाह से नहीं, किन्तु सिकन्दरशाह सूर से पीछा लिया था।

(३) मालदेव को परास्तकर जब शेरशाह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया तो मेड़ते का अधिकार उसने पुनः वीरम को सौंप दिया था।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २; पृ० १६१-२।

(५) मुंहणोत नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में बीकानेर से मेड़ते-वालों की सहायता के लिए सरदारों का जाना नहीं लिखा है। अधिक संभव तो यही है कि बीकानेर से जयमल को सहायता प्राप्त हुई हो, क्योंकि बिना किसी प्रकार की सहायता के मालदेव की शक्ति का अकेले सामना करना जयमल के लिए संभव नहीं था।

१—महाजन का स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह ।

२—शृंगसर का स्वामी शृंग (श्रीरंग) ।

३—वाचावाद का स्वामी वणीर ।

४—जैतपुर का स्वामी किशनसिंह ।

५—पूगल के भाटी हरा का पुत्र वैरसी ।

६—बछावत महता सांगा ।

बीकानेर से इन सरदारों के आ जाने से जयमल की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने इस सम्मिलित सेना के साथ मालदेव का सामना करने के लिए प्रस्थान किया[1] । जैतमाल, जयमल का प्रधान था। अखैराज भादावत और चांदराव जोधावत जयमल के प्रतिष्ठित सरदार थे। जयमल के कहने से वे राव मालदेव के प्रधान पृथ्वीराज से मिले और उसके साथ मालदेव के पास जाकर उन्होंने कहा कि मेड़ता आप जयमल के पास रहने दें तो हम आपकी चाकरी करें । पर मालदेव ने इसे स्वीकार न किया, तब वे वापस लौट गये और उन्होंने जयमल से सारी बात कही[2] । अनन्तर दोनों दलों में युद्ध हुआ[3] । मेड़ते की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को मालदेव की सेना सह न सकी और पीछे हटने लगी। अखैराज और सुरताण पृथ्वीराज तक पहुंच गये और कुछ ही देर में वह (पृथ्वीराज) अखैराज के हाथ से मारा गया । फिर तो मालदेव की सेना के पैर उखड़ गये । जयमल के सरदारों ने कहा कि मालदेव को दबाने का यह उपयुक्त अवसर है. पर जयमल ने ऐसा करना उचित न समझा । फिर भी बीकानेर के सरदारों ने मालदेव का पीछा किया । इस अवसर पर नगा भारमलोत शृंग के हाथ से मारा

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २० ।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६२-६३ । दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२१ ।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६१० (चैत्रादि १६११) वैशाख सुदि २ (ई० स० १५५४ ता० ४ अप्रेल) दिया है (जि० १, पृ० ७४) ।

गया और मालदेव अपनी सेना के साथ भाग गया। लगभग एक कोस पर बीकानेर के सरदारों ने उसको पुनः जा घेरा। मालदेव के सरदार चांदा ने रुककर कुछ साथियों सहित उनका सामना किया, परन्तु वह वणीर के हाथ से मारा गया[1]। इतनी देर में मालदेव अन्य साथियों सहित बहुत दूर निकल गया था, अतः बीकानेर के सरदार लौट आये और मालदेव के भाग जाने पर उन्होंने जयमल को बधाई दी। जयमल ने कहा—"मालदेव के भागने की क्या बधाई देते हो? मेड़ता रहने की बधाई दो। पहले भी मेड़ता आपकी मदद से रहा था और इस बार भी आपकी सहायता से बचा।" इस लड़ाई में मालदेव का नगारा बीकानेरवालों के हाथ लग गया था, जिसको जयमल ने एक भांभी (ढोली) के हाथ वापस भिजवाया। गांव लांबिया में पहुंचते-पहुंचते उस (भांभी) के मन में नगारे को बजाने की उत्कट इच्छा हुई, जिससे उसने उसे बजा ही दिया। मालदेव ने जब नगारे की आवाज़ सुनी तो समझा कि मेड़ते की फ़ौज आ रही है और उसने शीघ्रता से जोधपुर का रास्ता लिया। भांभी ने वहां जाकर जब नगारा लौटाया तब उसपर सारा भेद खुला[2]। कुछ दिनों बाद जब बीकानेर के सरदार मेड़ते से लौटने लगे तो जयमल ने उनसे कहा—"राव से मेरा मुजरा कहना। मैं उन्हीं की रक्षा के भरोसे मेड़ते में बैठा हूं[3]।"

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार चांदा मारा नहीं गया, वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारों को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुंचाया था (जि० २, पृ० १६५-६६)।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी मेड़तेवालों के हाथ मालदेव का नगारा लगने और उसके भांभी (बलाई) द्वारा लौटाये जाने का उल्लेख है। बलाई जब गांव लांबिया के पास पहुंचा तो उसने सोचा कि नगारा तो बजा लेवें, यह तो मालदेव का है सो कल मेरे हाथ से जाता रहेगा। ऐसा सोचकर उसने नगारा बजा दिया, जिसकी आवाज़ सुनकर मालदेव ने चांदा से कहा कि भाई मुझे जोधपुर पहुंचा दे। तब चांदा ने उसे सकुशल जोधपुर पहुंचा दिया (ख्यात; जि० २, पृ० १६५)।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२१। मुन्शी देवीप्रसाद; राव

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीर मुहम्मद सरवानी (नासिरुल्मुल्क) को उसपर भेजा, जिसके पहुंचने से पहले ही वह (हाजीखां) भागकर अजमेर चला गया[1]। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा। हाजीखां की अकेले उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी, अतएव उसने महाराणा उदयसिंह के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। ऐसे ही उसने राव कल्याणमल से सहायता मांगी। इसपर महाराणा ५००० फ़ौज लेकर अजमेर आया और इतनी ही सेना बीकानेर से राव कल्याणमल ने निम्नलिखित सरदारों के साथ उस (हाजीखां) की सहायतार्थ भेजी[2]—

हाजीखां की सहायतार्थ सेना भेजना

१—महाजन का स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह।

२—जैतपुर का स्वामी रावत किशनदास और

३—पेवारे का स्वामी नारण।

इस बड़े सम्मिलित कटक को देखकर जोधपुर के सरदारों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे-अच्छे सरदार पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके हैं; यदि हम भी मारे गये तो राव का बल बहुत

कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६६-६६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २१।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी मालदेव का जयमल-द्वारा परास्त होकर भागना लिखा है।

जयमलजी जपियो जपमालो। भागो राव मंडोवर वालो॥

(जि० १, पृ० ७५)।

(१) अकबरनामा—इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ६, पृ० २१-२२।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १८।

घट जायगा। इतनी बड़ी सेना का सामना करना कठिन है इसलिए लौट आना ही अच्छा है। इसपर मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई[1] और महाराणा तथा कल्याणमल के सरदार आदि भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

बैरामखां का बीकानेर में आकर रहना

बैरामखां मुग़ल दरबार का एक प्रसिद्ध दरबारी था। वह हुमायूं के साथ फ़ारस से भारतवर्ष में आया था और जब उस(हुमायूं)का पुत्र अकबर सिंहासन पर बैठा तो उसने उसे ख़ानखाना का ख़िताब देकर प्रधान-मन्त्री के पद पर नियुक्त किया, परन्तु उसके दबाव से बादशाह उससे अप्रसन्न रहने लगा। इसलिए अपने राज्य के पांचवें वर्ष[2], वि० सं० १६१७ (ई० स० १५६०) के प्रारम्भ में ही उसने बैरामखां को मन्त्री-पद से हटाकर राज्य का सारा कार्य अपने हाथ में ले लिया। तब उस(बैरामखां)ने मक्का जाने की आज्ञा मांगी और बादशाह ने उसके निर्वाह के लिए ५०००० रुपये वार्षिक नियत कर दिये, परन्तु जब उसका इरादा पंजाब में जाकर बग़ावत करने का मालूम हुआ, तब बादशाह ने उसपर चढ़ाई कर

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६८-६।

मेरे 'राजपूताने के इतिहास' (जि० २, पृ० ७२०) में मुंहणोत नैणसी और बांकीदास के आधार पर कल्याणमल का हाजीखां की दूसरी लड़ाई में राणा उदयसिंह के पक्ष में लड़ना लिखा गया है, परन्तु बाद के शोध से यह निश्चित रूप से पता लग गया है कि मालदेव के हाजीखां पर चढ़ाई करने के समय कल्याणमल ने हाजीखां की सहायतार्थ सेना भेजी थी। उस समय उदयसिंह भी उस(हाजीखां) की सहायता को गया था। कल्याणमल का मालदेव से वैर था और शेरशाह ने उसको राज्य दिलवाया था, जिससे वह (कल्याणमल) उसका अनुगृहीत था। ऐसी दशा में उसका शेरशाह के ग़ुलाम की सहायतार्थ पहली लड़ाई में ही सेना भेजना अधिक संभव है।

(२) वि० सं० १६१६ फाल्गुन सुदि १४ से वि० सं० १६१७ चैत्र वदि १० (ई० स० १५६० ता० ११ मार्च से ई० स० १५६१ ता० १० मार्च) तक।

दी। उस समय खानखाना ने मालदेव के राज्य से होकर गुजरात जाना चाहा, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि मालदेव ने उधर का रास्ता रोक लिया है तब वह गुजरात का रास्ता छोड़कर बीकानेर चला गया और कुछ समय तक राव कल्याणमल और उसके कुंवर रायसिंह के आश्रय में रहा, जिन्होंने उसको बड़े सत्कार-पूर्वक रक्खा[1]।

बादशाह की सेना की भटनेर पर चढ़ाई और ठाकुरसी का मारा जाना

एक बार जब बादशाह (अकबर) का ख़ज़ाना काश्मीर और लाहौर से दिल्ली को जा रहा था, तो भटनेर परगने के गांव मछली में लूट लिया गया। इसकी सूचना जब बादशाह के पास पहुंची तो उसने हिसार के सूबेदार निज़ामुल्मुल्क को फ़ौज लेकर भटनेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा भेजी। निज़ामुल्मुल्क ने आज्ञानुसार भटनेर को घेर लिया, परन्तु जब बहुत दिन बीत जाने पर भी वह वहां अधिकार करने में समर्थ न हुआ, तब उसने हिसार की तरफ़ से और फ़ौज एकत्र कर गढ़ पर प्रबल रूप से आक्रमण किया तथा रसद का भीतर पहुंचना रोक दिया। तब ठाकुरसी अपने कुटुम्ब को दूसरे स्थान में भेज अपने १००० राजपूतों के साथ गढ़ से बाहर निकलकर मुसलमानों पर टूट पड़ा और वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। निज़ामुल्मुल्क का क़िले पर अधिकार हो गया और वहां बादशाह का थाना स्थापित हो गया[2]।

ठाकुरसी का पुत्र बाघा कुछ दिनों बीकानेर में राव कल्याणमल

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २६५। मआसिर-उल्-उमरा—बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० ३७३। आईने अकबरी—ब्लाकमैन-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३१६। अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १५१। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०६ और अकबरनामा, पृ० १२-३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२। मुन्शी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २१।

के पास रहकर दिल्ली में बादशाह की सेवा में चला गया। एक बार एक कारीगर ने ईरान से एक धनुष लाकर बादशाह को नज़र किया। बादशाह ने अपने सरदारों को उसे चढ़ाने का हुक्म दिया, पर किसी से चढ़ा नहीं, तब बाघा ने उसे चढ़ा दिया। ऐसे ही एक अवसर पर उसने वीरता के साथ एक शेर को मार डाला, जिसपर बादशाह उससे बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि बाघा जो तुम्हारी इच्छा हो मांगो। तब बाघा ने उत्तर दिया कि मुझे भटनेर इनायत किया जाय। बादशाह ने उसी समय भटनेर का अधिकार उसे सौंप दिया, जहां लौटने पर उसने गोरखनाथ का एक मंदिर बनवाया[1]।

बादशाह का बाघा को भटनेर देना

अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष[2] वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में ता० ८ रबिउस्सानी हि० स० ९७८ (वि० सं० १६२७ द्वितीय भाद्रपद सुदि १०=ई० स० १५७० ता० ९ सितम्बर) को अकबर ने ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर की ओर प्रस्थान किया। बारह दिन फ़तहपुर में रहकर वह अजमेर पहुंचा। शुक्रवार ता० ४ जमादिउस्सानी (वि० सं० १६२७ कार्तिक सुदि ६=ई० स० १५७० ता० ३ नवंबर) को अजमेर से चलकर वह ता० १६ जमादिउस्सानी (मार्गशीर्ष वदि ३=ता० १६ नवंबर) को नागोर पहुंचा, जहां एक तालाब अपने सैनिकों से खुदवाकर उसने उसका नाम 'शुकरतालाब' रक्खा। इन दिनों बादशाह का प्रभाव बहुत बढ़ रहा था, इसलिए कई राजा उससे मैत्री करने अथवा उसकी सेवा स्वीकार करने के लिए उत्सुक थे। जब बादशाह नागोर में ठहरा हुआ था उस

कल्याणमल का नागोर में बादशाह के पास जाना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२-२३। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०५-१०६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

(२) वि० सं० १६२७ चैत्र सुदि ५ (ई० स० १५७० ता० ११ मार्च) से वि० सं० १६२७ फाल्गुन सुदि १४ (ई० स० १५७१ ता० १० मार्च) तक।

समय अन्य राजाओं के अतिरिक्त बीकानेर का राव कल्याणमल भी अपने कुंवर रायसिंह के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। नागोर में ६० दिन रहने के बाद जब बादशाह ने पट्टन (? पंजाब) की ओर प्रस्थान किया, तब कल्याणमल तो बीकानेर लौट गया, पर उसका कुंवर रायसिंह बादशाह के साथ रहा[1]।

कल्याणमल की मृत्यु

ख्यातों के अनुसार बीकानेर में ही वि० सं० १६२८ वैशाख वदि ५ (ई० स० १५७१ ता० १४ अप्रेल) को कल्याणमल का स्वर्गवास हो गया[2], परंतु उस (कल्याणमल) की स्मारक छत्री के लेख से वि० सं० १६३० माघ सुदि २ (ई० स० १५७४ ता० २४ जनवरी) को उसका देहांत होना पाया जाता है[3]।

कल्याणमल की संतति

कल्याणमल के १० पुत्र हुए[4]—

१—रायसिंह, २—रामसिंह, ३—पृथ्वीराज, ४—अमरसिंह, ५—भाण, ६—सुरताण, ७—सारंगदेव, ८—भाखरसी, ९—गोपालसिंह और १०—राघवदास।

---

(१) अबुलफज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५१६-९। मुंतखबुत्तवारीख—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १३७।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०७ (तिथि वैशाख वदि २ दी है) पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २३।

(३) ·········संवत् १६३० वर्षे माघ मासे शुक्ले पक्षे बीज दिने·················बीकानेर मध्ये पर्मपवित्र महाराजाधिराज राइ श्री कल्याणमल सत्य रुह·········वैकुंठ लक प्रप्त शुभं भवतु कल्याणमस्तु

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में कल्याणमल के पुत्र रायसिंह का वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में गद्दी बैठना लिखा है (जिल्द २, पृ० १९९), जिससे स्पष्ट है कि कल्याणमल का देहांत उसी संवत् में हुआ होगा।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २२-२३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८५। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० १०८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २४।

राव कल्याणमल के छोटे पुत्रों में पृथ्वीराज का चरित्र बड़ा आदर्श और महत्वपूर्ण है, अतएव उसका संक्षिप्त परिचय यहां देना आवश्यक है।

पृथ्वीराज

उसका जन्म वि० सं० १६०६ मार्गशीर्ष वदि १ (ई० स० १५४६ ता० ६ नवंबर) को हुआ था। वह बड़ा वीर, विष्णु का परम भक्त और ऊंचे दर्जे का कवि था। उसका साहित्यिक ज्ञान बड़ा गंभीर और सर्वांगीय था। संस्कृत और डिंगल साहित्य का उसको अच्छा ज्ञान था।

कर्नल टॉड ने उसके विषय में लिखा है—'पृथ्वीराज अपने समय का सर्वोच्च वीर व्यक्ति था और पश्चिमीय "ट्रूबेडार" राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकता था तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकता था[1]।'

बादशाह अकबर के दरबारियों में उसका बड़ा सम्मान था और प्रायः वह उसके दरबार में बना रहता था। मुंहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह ने उसे गागरोन (कोटा राज्य) का क़िला दिया था, जो बहुत समय तक उसकी जागीर में था[2]। अकबर के समय के लिखे हुए इतिहास 'अकबरनामे' में उसका नाम केवल दो-तीन स्थानों पर आया है। वि० सं०

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में ६ पुत्रों के नाम मिलते हैं, जिनमें डूंगरसिंह का नाम उपरोक्त ख्यातों से भिन्न है (जि० २, पृ० १६६)।

जयसोम रचित 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में कल्याणमल की दो स्त्रियों से उसके ८ पुत्र होना लिखा है—

राज्ञीरत्नावतीकुक्षिरत्नं कल्याणनंदनाः।
रायसिंहो रामसिंहः सुरत्राणश्च पार्थराट् ॥ २५८ ॥
अन्यपत्नीसुता अन्ये भाणगोपालनामकौ।
अमरो राघवः सर्वे विख्याताः सर्वदाभवन् ॥ २५६ ॥

(१) राजस्थान; जि० १, पृ० ३६६।

(२) भाग १, पृ० १८८।

१६३८ (ई० स० १५८१) की मिर्ज़ा हकीम के साथ की काबुल की[1] और वि० सं० १६५३ (ई० स० १५९६) की अहमदनगर की लड़ाइयों में यह वीर राठोड़ भी शाही सेना के साथ था[2]।

उसमें देश-प्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ था। स्वयं शाही सेवा में रहने पर भी स्वदेश-प्रेमी प्रसिद्ध महाराणा प्रताप पर उसकी असीम श्रद्धा थी। राजपूताने में यह जनश्रुति है कि एक दिन बादशाह ने पृथ्वीराज से कहा कि राणा प्रताप अब हमें बादशाह कहने लग गया है और हमारी अधीनता स्वीकार करने पर उतारू हो गया है; इस पर उसे विश्वास न हुआ और बादशाह की अनुमति लेकर उसने उसी समय निम्नलिखित दो दोहे बनाकर महाराणा के पास भेजे—

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूंतां वयण।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत ॥ १ ॥
पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक[3] ॥ २ ॥

इन दोहों का उत्तर महाराणा ने इस प्रकार दिया—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूं इकलिंग।
ऊगै जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥
खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जेतै पतौ, कलमाँ सिर केवाण ॥ २ ॥

(१) बेवरिज; अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ५१८।

(२) ठाकुर रामसिंह तथा पं० सूर्यकरण पारीक; 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की भूमिका; पृ० १८।

(३) आशय—महाराणा प्रतापसिंह यदि अकबर को अपने मुख से बादशाह कहे तो कश्यप का पुत्र (सूर्य) पश्चिम में उग जावे अर्थात् जैसे सूर्य का पश्चिम में उदय होना सर्वथा असम्भव है वैसे ही आप(महाराणा)के मुख से बादशाह शब्द का निकलना भी असम्भव है ॥ १ ॥ हे दीवाण (महाराणा)! मैं अपनी मूंछों पर ताव दूं अथवा अपनी तलवार का अपने ही शरीर पर प्रहार करूं, इन दो में से एक बात लिख दीजिये ॥ २ ॥

सांग मूंड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भलां बैण तुरक सूं वाद ।। ३ ।।

यह उत्तर पाकर पृथ्वीराज बहुत प्रसन्न हुआ और महाराणा प्रताप का उत्साह बढ़ाने के लिए उसने नीचे लिखा हुआ गीत लिख भेजा—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक बट अबट ।।
चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
बेचे किम रजपूत बट ।। १ ।।
रोजायतां तणैं नवरोजै,
जेथ मसाणा जणो जण ।।
हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न खरचै खत्रीपण ।। २ ।।
परपंच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ।।
रज बेचवा न आवै राणो,
हाटे मीर हमीर हरो ।। ३ ।।
पेखे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणैं बळ राण ।।
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ।। ४ ।।

---

(१) आशय—(भगवान) 'एकलिंगजी' इस शरीर से (प्रतापसिंह के मुख से) तो बादशाह को तुर्क ही कहलावेंगे और सूर्य का उदय जहां होता है वहां ही पूर्व दिशा में होता रहेगा ।। १ ।। हे वीर राठोड़ पृथ्वीराज ! जबतक प्रतापसिंह की तलवार यवनों के सिर पर है तबतक आप अपनी मूंछों पर खुशी से ताव देते रहिये ।। २ ।। (राणा प्रतापसिंह) सिर पर सांग का प्रहार सहेगा, क्योंकि अपने बराबरवाले का यश ज़हर के समान कटु होता है । हे वीर पृथ्वीराज ! तुर्क (बादशाह) के साथ के वचन-रूपी विवाद में आप भलीभांति विजयी हों ।। ३ ।।

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राख्यो खत्री ध्रम राणै,
सारा ले बरतो संसार ॥ ५ ॥

पृथ्वीराज की विष्णु-भक्ति की कई कथाएं प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' को समाप्तकर जब वह उसे द्वारिका में श्रीकृष्ण के ही चरणों में अर्पित करने जा रहा था, तो मार्ग में द्वारिकानाथ ने स्वयं वैश्य के रूप में मिलकर उक्त पुस्तक को सुना था। श्रीलक्ष्मीनाथ का इष्ट होने से वह उसकी मानसिक पूजा किया करता था।

अकबर के पूछने पर उसने छः मास पूर्व ही बता दिया था कि मेरी मृत्यु मथुरा के विश्रान्त घाट पर होगी। कहते हैं कि बादशाह को इसपर विश्वास न हुआ और इस कथन को असत्य प्रमाणित करने की इच्छा से उसने पृथ्वीराज को राज्य-कार्य के निमित्त अटक पार भेज दिया। कुछ समय बीत जाने पर एक दिन एक भील कहीं से चकवा-चकई का एक

---

(१) आशय—जहां पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रियां हैं और जैसा चाहिये वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाज़ार में जाकर चित्तोड़ का स्वामी (प्रतापसिंह) रजपूती को कैसे बेचेगा ? ॥ १ ॥ मुसलमानों के नौरोज़ में प्रत्येक व्यक्ति लुट गया, परन्तु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह दिल्ली के उस बाज़ार में अपने क्षत्रिय-पन को नहीं बेचता ॥ २ ॥ हम्मीर का वंशधर (राणा प्रतापसिंह) प्रपंची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रजपूती बेचने के लिए कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥ अपने पूर्व पुरुषों के उत्तम कर्तव्य देखते हुए आप(महाराणा)ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रक्खा, जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥ ४ ॥ अकबररूपी ठग भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और उसकी यह हाट भी उठ जायगी, परन्तु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रतापसिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी भर में सब को उचित है कि उस क्षत्रियत्वको अपने बर्ताव में लावें अर्थात् राणा प्रतापसिंह की भांति आपत्ति भोगकर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करें ॥ ५ ॥

जोड़ा पकड़कर राजधानी में बेचने के लिए लाया। पक्षियों का यह जोड़ा मनुष्य की भाषा में बोलता था। बादशाह अकबर ने इसे मंगाकर देखा और आश्चर्य प्रकट किया। नवाब खानखाना उस समय मौजूद था, उसने बादशाह को प्रसन्न करने के लिए दोहे का एक चरण बनाकर कहा—

सज्जन वारूं कोड़धां या दुर्जन की भेंट।

पर इसका दूसरा चरण बहुत प्रयत्न करने पर भी न बन सका। उस अवसर पर बादशाह को पृथ्वीराज की याद आई और उसने उसी समय उसे बुलाने के लिए आदमी भेजे। अभी बताई हुई अवधि में पन्द्रह दिन शेष थे। ठीक पन्द्रहवें दिन पृथ्वीराज मथुरा पहुंचा, जहां दोहे का दूसरा चरण लिखकर बादशाह के पास भिजवाने के अनन्तर उसने विश्रान्त घाट पर प्राण-त्याग किया। यह घटना वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में हुई। पृथ्वीराज का कहा हुआ दूसरा चरण इस प्रकार है—

रजनी का मेला किया बेह (विधि) के अच्छर मेट ॥

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इस ग्रन्थ-रत्न का निर्माण वि० सं० १६३७ (ई० स० १५८०) में हुआ था। इसके अतिरिक्त उसके राम-कृष्ण सम्बन्धी तथा अन्य फुटकर गीत एवं छन्द भी उपलब्ध हैं, जो अपने ढंग के अनोखे हैं।

पृथ्वीराज के वंश के पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं, जो ददेवा के पट्टेदार हैं और छोटी ताज़ीम का सम्मान रखते हैं।

राव कल्याणमल का व्यक्तित्व

राव कल्याणमल बड़ा दूरदर्शी, दानी और वीरों का सम्मान करनेवाला व्यक्ति था। जिन मुसलमानों की सहायता से वह अपना गया हुआ राज्य पीछा पा सका था, उनकी शक्ति को वह खूब अच्छी तरह से समझ गया था। वह समय मुग़लों के उत्कर्ष का था जिनका प्रबल प्रवाह बरसाती नदी के समान अपने आगे सब को बहाता हुआ बहुधा भारत में बड़े वेग से फैल रहा था। बड़े-बड़े राज्य तक उनकी अधीनता स्वीकार करते

जा रहे थे और जिन्होंने ऐसा नहीं किया था वे भी उनकी बढ़ती हुई शक्ति से भय खाते थे। राजपूताने के विभिन्न राज्यों की दशा भी बड़ी कमज़ोर हो रही थी। परस्पर ऐक्य का सर्वथा अभाव था। ऐसी परिस्थिति में दूरदर्शी कल्याणमल ने मुग़लों की बढ़ती हुई शक्ति से मेल कर लेने में ही भलाई समझी और बादशाह अकबर के नागोर में रहते समय वह अपने पुत्र रायसिंह के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हो गया। वास्तव में राव कल्याणमल का यह कार्य बहुत बुद्धिमानी का हुआ, जिससे अकबर और जहांगीर के समय शाही दरबार में जयपुर के बाद बीकानेर का ही बड़ा सम्मान रहा।

उसके दान की प्रशंसा का उल्लेख 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में मिलता है[1]। राज्य के हितैषी वीरों का वह बड़ा आदर करता था और ऐसे व्यक्तियों को उसने जागीर और ख़िताब आदि देकर सम्मानित किया। उसमें साहस और धैर्य्य का प्रचुर मात्रा में समावेश था। राव जैतसी के हाथ से राज्य चला जाने पर भी वह एक क्षण के लिए हताश न हुआ और उसकी पुनः प्राप्ति के उद्योग में निरन्तर लगा रहा। वह शरीर से इतना स्थूल था कि घोड़े पर कठिनता से बैठ सकता था।

महाराजा रायसिंह

जन्म और गद्दीनशीनी

महाराजा रायसिंह का जन्म वि० सं० १५९८ श्रावण वदि १२ (ई० स० १५४१ ता० २० जुलाई) को हुआ था[2] और अपने पिता का देहांत होने पर वि० सं० १६३०

(१) येन दानादिधर्मेण कलिः कृतयुगी कृतः।
..................................॥ २२७ ॥

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८५। चंडू के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह।

महाराजा रायसिंह

(ई० स० १५७४) में वह बीकानेर का स्वामी हुआ[1] तथा उसने अपनी उपाधि महाराजाधिराज और महाराजा रक्खी[2]।

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १९९ । टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२ ।

दयालदास की ख्यात (जिल्द २, पत्र २४) तथा पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० २४) में रायसिंह का वि० सं० १६२८ वैशाख सुदि १ (ई० स० १५७१ ता० २५ अप्रेल) को बीकानेर की गद्दी पर बैठना लिखा है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि राव कल्याणमल की स्मारक-छत्री के लेख से वि० सं० १६३० (ई० स० १५७४) में उस(कल्याणमल)की मृत्यु होना निश्चित है ।

(२) संवत् १६३१ वर्षे श्रावणसुदि ८ सोमदिने घटी १६ पल ३५ विशाखा नक्षत्रे घटी ३१ । ४४ ब्रह्मनामयोगे घटी ५४ । १० अचलदास खीची री वचनिका ॥ महाराजाधिराय(ज) महाराय(जा) श्रीराइसींघजी विजैराज्ये ॥............

(डा० टेसीटोरी; बारडिक एण्ड हिस्टॉरिकल मेन्युस्क्रिप्ट्स, सेक्शन २, पोइटरी, बीकानेर स्टेट; पृ० ४१) ।

संवत् १६५० वर्षे आसा(ढ) मा(से) शु(क्लप)क्षे नवम्यां तिथौ रव(वि)वारे घटिका ५१ चि(त्रा)नक्षत्र घटिका १ उ(प)रांत स्व(स्वा)ति नक्षत्रे महाराजाधिराज महाराजा श्रीश्रीश्रीरायसिंघजी वि(जइ) रा(ज्ये) । फल(व)र्धि(कानगर) भुरज करावित‌ा ।......

(ज० ए० सो० बं०, न्यू सीरीज़; ई० स० १९१६; जि० १२, पृ० ९९) ।

......अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठयां गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराजमहाराजश्रीश्रीश्री २ रायसिंहेन दुर्गप्रतोली संपूर्णीकारिता...... ॥

[बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल दरवाज़े की बड़ी प्रशस्ति का अंतिम भाग; ज० ए० सो० बं० (न्यू सीरीज़) जि० १६, पृ० २७९] ।

मुसलमान इतिहासलेखक हिन्दू राजा महाराजाओं को सदा तुच्छ दृष्टि से देखते थे । इसीलिए वे अपनी पुस्तकों आदि में उनको 'राय', 'राव', 'राणा' आदि शब्दों से संबोधन करते थे । मुसलमान बादशाहों के फ़रमानों में भी प्रायः सभी राजा-

राम के ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी, जोधपुर के राव मालदेव ने, अपनी झाली राणी स्वरूपदे पर विशेष अनुराग होने के कारण उससे उत्पन्न तीसरे पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। तब राम केलवा (मेवाड़) गांव में जा रहा और उससे छोटे उदयसिंह को मालदेव ने निर्वाह के लिए फलौदी दे दिया। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में राव मालदेव की मृत्यु होने पर चन्द्रसेन जोधपुर की गद्दी पर बैठा, परन्तु कुछ ही दिनों में उसके दुर्व्यवहार से वहां के कुछ सरदार उससे अप्रसन्न रहने लगे और उन्होंने इसकी सूचना राम, उदयसिंह तथा रायमल (जो मालदेव का चौथा पुत्र था) के पास भेज उन्हें गद्दी लेने के लिए उकसाया। तब वे सब चन्द्रसेन के इलाक़ों पर आक्रमण करने लगे, परन्तु इसमें उन्हें सफलता न मिली। इसपर सरदारों की सलाह से राम बादशाह अकबर के पास पहुंचा और वहां से सैनिक सहायता लाकर उसने जोधपुर का गढ़ घेर लिया। १७ दिन बाद प्रतिष्ठित सरदारों के बीच में पड़ने से परस्पर सन्धि हो गई, जिसके अनुसार राम को सोजत का इलाक़ा मिल गया और शाही सेना वापस चली गई। उसी वर्ष हुसेनकुलीख़ां[1] की अध्यक्षता में शाही सेना ने पुनः जोधपुर में प्रवेश किया,

अकबर का रायसिंह को जोधपुर देना

महाराजाओं को ज़मींदार ही लिखा है, परन्तु उन (राजा-महाराजाओं) के शिलालेखों में उनकी पूरी उपाधि मिलती है। वे अपनी-अपनी उपाधि के अनुसार अपने को राजा, महाराजा, महाराणा, राव और महाराव ही लिखते रहे और प्रजा भी उन्हें वैसा ही मानती रही। बीकानेर के राजाओं के शिलालेखों में बीका, लूणकर्ण और जैतसी को सर्वत्र 'राव' ही लिखा है। जैतसी के उत्तराधिकारी कल्याणमल के स्मारक लेख में उसे 'महाराजाधिराज महाराइ' और रायसिंह के सब लेखों में उसे 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखा है, जिससे सिद्ध है कि राज्यासन पर बैठते ही रायसिंह ने अपनी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' रख ली थी, जैसा कि ऊपर के अवतरणों से प्रकट है।

(१) हुसेनकुली बेग, वली बेग ज़ुल्क़द्र का पुत्र तथा बैरामख़ां का सम्बन्धी था। जब सरकार मेवात में बैरामख़ां को शाही सेना के आगमन का समाचार

तब ४००००० रुपये देने का वादा कर चन्द्रसेन ने उससे सुलह कर ली। जब तीसरी बार हुसेनकुलीख़ां की अध्यक्षता में शाही सेना जोधपुर में आई तब चन्द्रसेन ने ससैन्य उसका सामना किया, परंतु अंत में उसे गढ़ छोड़ना पड़ा और मुग़लों का जोधपुर पर अधिकार हो गया[1]।

वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में बादशाह नागोर गया, उस समय जोधपुर की गद्दी के हक़दार राम और उदयसिंह दोनों बादशाह के पास गये तथा राव चन्द्रसेन भी पुनः राज्य पाने की आशा से अपने पुत्र रायसिंह सहित बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। वह कई दिनों तक वहां रहा, परन्तु जब राज्य पीछा मिलने की कोई आशा न देखी तब वह अपने पुत्र को शाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण लौट गया। उसी वर्ष अपने पिता की विद्यमानता में ही, बीकानेर का रायसिंह भी बादशाह की सेवा में चला गया था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। अकबर के सत्रहवें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६२८=ई० स० १५७१) में गुजरात में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। उधर मेवाड़ के महाराणा प्रताप का आतंक भी बढ़ने लगा। अतएव ता० २० सफ़र हि० स० ६८० (वि० सं० १६२६ श्रावण वदि ७=ई० स० १५७२ ता० २ जुलाई) को उस(अकबर)ने गुजरात विजय करने के लिए फ़ौज के साथ प्रस्थान किया। इस अवसर पर

मिला तो वह हुसेनकुली बेग के हाथ अपने पद के सब चिह्न बादशाह के पास भिजवाकर मक्का जाने के बहाने पंजाब की तरफ़ चला गया। बादशाह ने हुसेनकुली बेग की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे ख़ानेजहां का ख़िताब दिया।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८५-८८।

अकबरनामे में भी अकबर के ८ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६१६=ई० स० १५६३) में हुसेनकुलीख़ां-द्वारा जोधपुर पर चढ़ाई होने और वहां पर मुग़लों का अधिकार हो जाने का उल्लेख है (बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०५)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तीन बार अकबर की सेना की चढ़ाई होने पर जोधपुर छूटना लिखा है, परन्तु अकबरनामे में एक ही चढ़ाई होने का उल्लेख है।

रायसिंह भी मुग़ल सेना के साथ था। ता० १५ रबीउल्‌अव्वल (भाद्रपद वदि १=ता० २६ जुलाई) को अजमेर पहुंचने पर अकबर ने मीरमुहम्मद ख़ांनेकलां[1] को तो कुछ फ़ौज के साथ आगे रवाना कर दिया और आप पीछे रहकर ता० ६ जमादिउल्‌अव्वल (आश्विन सुदि १० = ता० १७ सितंबर) को नागोर पहुंचा। मार्ग में ही उसे तीसरे शाहज़ादे के जन्म का शुभ सम्वाद प्राप्त हुआ। अजमेर में शेख़ दानियाल के यहां शाहज़ादे का जन्म होने से, उसने उसका नाम भी दानियाल रक्खा। मेड़ता पहुंचने पर उसे ज्ञात हुआ कि सिरोही से मीरमुहम्मद ख़ांनेकलां के पास मेल करने के लिए गये हुए दूतों में से एक ने उसपर धोखे से वार कर दिया, परन्तु सौभाग्य से घाव गहरा न लगा था। जब बादशाह सिरोही पहुंचा तो १५० राजपूतों ने उसका सामना किया, परन्तु वे सब के सब मारे गये। विद्रोह की अग्नि को आरंभ में ही रोकना आवश्यक था। अतएव रायसिंह को अकबर ने जोधपुर देकर गुजरात की तरफ़ भेजा, ताकि राणा कीका (प्रतापसिंह) गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुंचा सके[2]।

---

(१) मीर मुहम्मद, शम्सुद्दीन मुहम्मद अत्काख़ां का ज्येष्ठ भ्राता था। वह हुमायूं तथा कामरां की सेवा में रहा था तथा अकबर के राज्य-काल में उसकी काफ़ी पद-वृद्धि हुई। जब वह पंजाब का हाकिम था तो गक्खरों के साथ के युद्ध में उसने बड़ी ख्याति पाई। अकबर के तेरहवें राज्यवर्ष (वि० सं० १६२५=ई० स० १५६८) में उसे पंजाब से बुला लिया और सम्भल की जागीर दी गई। गुजरात की विजय के पश्चात् अकबर ने उसे पट्टन का हाकिम नियुक्त किया, जहां वि० सं० १६३२ (हि० स० ९८३=ई० स० १५७५) में उसकी मृत्यु हो गई। वह एक वीर योद्धा होने के साथ ही बड़ा अच्छा कवि भी था। अकबर के समय में उसे पांच-हज़ारी मनसब प्राप्त था।

(२) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ५, पृ० ३४०-१। अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५३८-४४ तथा जि० ३, पृ० ६-८। अलबदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १४३-४। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; पृ० ३५५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ४७-८ (इस ग्रन्थ में दिये हुए संवतों और बेवरिज-कृत अकबरनामे के अनुवाद में लगभग एक वर्ष का अन्तर है)।

बादशाह (अकबर) ने गुजरात के अन्तिम सुलतान मुजफ्फरशाह (तीसरा) से गुजरात को फ़तह कर उसे मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया था। कुछ ही समय बाद उधर मिर्ज़ा-बन्धुओं ने उपद्रव खड़ा किया। मालवे से जाकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा[1] ने बड़ोदा, मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा[2] ने

रायसिंह की इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा पर चढ़ाई

जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १६२९ (ई० स० १५७२) में बादशाह-द्वारा रायसिंह को जोधपुर दिया जाना लिखा है (जि० १, पृ० ८८)।

जोधपुर पर रायसिंह का अधिकार कब तक रहा, यह फ़ारसी तवारीख़ों से स्पष्ट नहीं होता। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि वहां उसका तीन वर्ष तक अधिकार रहा और वहां रहते समय उसने ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को बहुत से गांव दान में दिये (जि० २, पत्र ३०)। ख्यात में दिये हुए संवत् ठीक न होने से समय के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

उक्त (दयालदास की) ख्यात में यह भी लिखा है—'उदयसिंह (राव मालदेव का कुंवर) ने महाराजा रायसिंह से मिलकर कहा -''जोधपुर सदा आपके पास नहीं रहेगा। आप भाई हैं और बड़े हैं तथा बादशाह आपका कहना मानता है। अपने पूर्वजों का बांधा हुआ जोधपुर का राज्य अभी तो अपना ही है, पर संभव है पीछे से बादशाह के खालसे में रह जाय और अपने हाथ से चला जाय।'' महाराजा ने जाना कि बात ठीक है; अतएव उसने बादशाह के पास अर्ज़ी भेजकर वि० सं० १६३९ (ई० स० १५८२) में जोधपुर का मनसब उदयसिंह के नाम करा उसको 'राजा' का ख़िताब दिला दिया (जि० २, पत्र ३०), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। उस (महाराजा) के वि० सं० १६४४ माघ वदि ५ (ई० स० १५८८ ता० ५ जनवरी) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने चारण माला सादू को सरकार नागोर की पट्टी का गांव भदहरा सासण में दिया था (मूल ताम्रपत्र के फ़ोटो से)। इससे स्पष्ट है कि रायसिंह का अधिकार नागोर और उसके आसपास तो बहुत वर्षों तक रहा था।

(१) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा तैमूर के वंशज मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा का पुत्र और कामरां का दामाद था। अपने अन्य भाइयों के साथ जब वह विद्रोही हो गया तो हि० स० ९७५ (वि० सं० १६२४=ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर के हुक्म से सम्भल के क़िले में क़ैद कर दिया गया; परन्तु कुछ ही दिनों बाद वह वहां से निकल भागा। वह हि० स० ९८१ (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७३) में फिर शाही सेना-द्वारा बन्दी बना लिया गया और मख़सूसख़ां-द्वारा मार डाला गया।

(२) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बड़ा भाई।

सूरत तथा शाह मिर्ज़ा[1] ने चांपानेर पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने उन तीनों पर अलग-अलग सेनाएं भेजीं। जब उसको यह ज्ञात हुआ कि इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा ने भड़ोच के क़िले में रुस्तमख़ां रूमी[2] को मार डाला है और वह विद्रोह करने पर कटिबद्ध है, तब उसने आगे गई हुई फ़ौजों को वापस बुला लिया और आप (बादशाह) सरनाल (तत्कालीन अहमदाबाद की सरकार के अन्तर्गत) की ओर अग्रसर हुआ, जहां उसे इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा के होने का पता लगा था। शाही सेना के आक्रमण से इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा की फ़ौज के पैर उखड़ गये और वह भाग गई। वहां से भागकर वह ईडर में मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा और शाह मिर्ज़ा के पास पहुंचा, परन्तु उनसे कहा सुनी हो जाने के कारण, वह अपने भाई मसऊद[3] को साथ लेकर जालोर होता हुआ नागोर पहुंचा। खानेकलां का पुत्र फर्रुखख़ां उन दिनों वहां का शासक था। इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा ने उसे घेर लिया और निकट था कि नागोर पर उसका अधिकार हो जाता, परन्तु ठीक समय पर रायसिंह को जोधपुर में इसकी सूचना मिल गई, जिससे उसने नागोर की ओर फ़ौज लेकर प्रस्थान किया। इस अवसर पर मीरक कोलाबी, मुहम्मद हुसेन शेख़, राय राम (मालदेव का पुत्र) आदि कई अफ़सर भी उस(रायसिंह)के साथ थे। इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा को जब उसके आने की ख़बर मिली तो वह घेरा उठाकर भाग गया। ता० ३ रमज़ान (वि० सं० १६३० पौष सुदि ४ = ई० स० १५७३ ता० २८ दिसम्बर) सोमवार को रायसिंह नागोर पहुंचा, जहां फ़र्रुखख़ां भी उससे आकर मिल गया। अन्य सरदारों का इरादा तो इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पीछा करने का न था, परन्तु रायसिंह के ज़ोर देने पर उसका पीछा किया गया और कठौली नामक

(१) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पांचवां भाई।

(२) शाही अफ़सर, गुजरात में भड़ोच के क़िले का हाकिम।

(३) मसऊद को बाद में ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया गया था, जहां कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

स्थान में वह शाही सेना-द्वारा घेर लिया गया। वहां की लड़ाई में मुग़ल सेना की स्थिति डावां-डोल हो ही रही थी, कि रायसिंह, जो पीछे था, पहुंच गया, जिससे मिर्ज़ा भागकर पंजाब की तरफ़ चला गया[1]।

गुजरात के विद्रोहियों का दमन कर तथा मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकल्ताश[2] को वहां का हाकिम नियुक्त कर बादशाह फ़तहपुर लौट गया, परन्तु उसके उधर प्रस्थान करते ही विद्रोहियों ने फिर सिर उठाया। मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा को जब दौलताबाद में इस बात की सूचना मिली तो वह भी गुजरात में चला आया और इख़्तियारुल्मुल्क[3] आदि उपद्रव-कारियों से मिल गया। बादशाह को जब इस उपद्रव का समाचार मिला तो हि० स० ६८१ ता० २४ रबीउल्आख़िर (वि० सं० १६३० भाद्रपद वदि ११=ई० स० १५७३ ता० २३ अगस्त) रविवार को उसने स्वयं फ़तहपुर से प्रस्थान किया और चार सौ कोस का लम्बा सफ़र, केवल ६ दिन में ही समाप्त कर वह विद्रोहियों के सम्मुख जा पहुंचा। रायसिंह भी, जो गुजरात के निकट था, बादशाह की सेना से मिल गया। मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा ने अपनी फ़ौज के साथ शाही सेना का मुक़ाबला किया, परन्तु वह अधिक देर तक ठहर न सका और शाही सैनिकों-द्वारा बन्दी कर लिया गया।

रायसिंह का बादशाह के साथ गुजरात को जाना

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ५०-५१। तबक़ात-इ-अकबरी—इलियट् हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ३५४। बदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १५३-४। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ५२।

(२) यह शम्सुद्दीन मुहम्मद अत्काख़ां का पुत्र और अकबर का एक सरदार था। इसकी एक पुत्री का विवाह शाहज़ादे मुराद से हुआ था। जहांगीर के १६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६८१=ई० स० १६२४) में इसकी अहमदाबाद (गुजरात) में मृत्यु हुई।

(३) यह अबीसीनिया का निवासी तथा गुजरात का एक अमीर था और इसी युद्ध में शाही सैनिकों-द्वारा मार डाला गया।

रायसिंह ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। बादशाह ने बन्दी मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा को उस (रायसिंह) के सुपुर्द कर दिया, ताकि वह उसे हाथी पर बिठाकर नगर में ले जाय। ठीक इसी समय इख़्तियारुल्मुल्क ५००० सेना के साथ शाही सेना पर चढ़ आया। बादशाह ने भी युद्ध के नक़ारे बजवा दिये और रायसिंह तथा राजा भगवानदास[1] के कहने से उसी समय मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा क़त्ल करवा दिया गया[2]।

बादशाह का रायसिंह को चन्द्रसेन पर भेजना

१६ वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६३०=ई० स० १५७४) के आरंभ में जब बादशाह अजमेर में था, उसे चन्द्रसेन (मालदेव का पुत्र) के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला। चन्द्रसेन ने उन दिनों सिवाना के गढ़ को, जिसे उसने अपना निवास स्थान बना लिया था और भी दृढ़ कर लिया था। बादशाह ने तत्काल रायसिंह को शाहकुलीख़ां महरम[3], शिमालख़ां[4], केशोदास (मेड़ते के जयमल का पुत्र), जगतराय (धर्मचन्द का पुत्र) आदि सरदारों के साथ चन्द्रसेन को दंड देने के लिए भेजा। उस समय सोजत पर कल्ला[5] का अधिकार था, जो शाही सेना के पहुंचते ही

(१) आमेर के राजा भारमल कछवाहे का पुत्र। हि० स० ६६८ (वि० सं० १६४६=ई० स० १५८६) के आरंभ में लाहौर में इसका देहांत हुआ।

(२) अकबरनामा—बेवारिज कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ५६-६२, ७३, ८१-२, ८५-६।

आईने अकबरी (ब्लाकमैन-कृत अनुवाद; जि० १, पृष्ठ ४६३) में रायसिंह के हाथ से मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा का मारा जाना लिखा है। मुंतख़बुत्तवारीख़ (लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १७२) में उसका रायसिंह के नौकरों-द्वारा मारा जाना लिखा है।

(३) अकबर का एक प्रसिद्ध पांच-हज़ारी मनसबदार। वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में इसका आगरे में देहांत हुआ।

(४) यह अकबर का गुलाम और शस्त्र-वाहक था। बाद में एक हज़ारी मनसबदार बना दिया गया। हि० स० १००१ (ई० स० १५६३) के पूर्व ही इसका देहांत हो गया।

(५) जोधपुर के राव मालदेव का पौत्र और राम का पुत्र।

सिरयारी (सिरयारी) को भाग गया। शाही सैनिकों ने जब उसका पीछा करके वह गढ़ भी जला दिया तो वह वहां से भागकर गोरम के पहाड़ों में चला गया। शाही सेना के वहां भी उसका पीछा करने पर, जब उस(कल्ला)ने देखा कि अब बचना कठिन है, तो वह शाही अफ़सरों से मिल गया और उसने अपने भाई केशोदास को उनके साथ कर दिया। इस प्रकार जब चन्द्रसेन की शक्ति घट गई तो शाही सेना ने सिवाने की ओर प्रस्थान किया, जो उस समय चन्द्रसेन के सेवक रावल सुख(मेघ)राज के अधिकार में था। चन्द्रसेन ने सूजा देवीदास आदि को उसकी सहायता के लिए भेजा, परन्तु रायसिंह के राजपूतों ने गोपालदास की अध्यक्षता में उनपर आक्रमण कर उन्हें मार लिया। पराजित रावल अपने पुत्र को विजेताओं के पास भेज वहां से भाग गया। तब शाही सेना सिवाने के गढ़ पर पहुंची। चन्द्रसेन ने इस अवसर पर गढ़ के भीतर रहना उचित न समझा और राठोड़ पत्ता एवं मुंहता पत्ता के अधिकार में गढ़ छोड़कर वह वहां से हट गया। शाही सेना ने गढ़ को घेर लिया, परन्तु गढ़ के सुदृढ़ होने और शाही सेना कम होने के कारण जब गढ़ विजय न हो सका तो रायसिंह ने अजमेर में बादशाह के पास उपस्थित होकर अधिक सेना भेजने के लिए निवेदन किया। इसपर बादशाह ने तय्यबख़ां[1], सैय्यदबेग तोकबाई, सुभानकुली तुर्क ख़र्रम, अज़मतख़ां, शिवदास आदि अफ़सरों को चन्द्रसेन पर भेजा, तो भी दो वर्ष तक सिवाने का गढ़ विजय न हो सका। तब बादशाह ने रायसिंह आदि को पीछा बुला लिया और उनके स्थान पर शहबाज़ख़ां[2] को इस कार्य पर नियुक्त किया, जिसने

---

(१) मुहम्मद ताहिरख़ां मीर फ़रासत का पुत्र।

(२) इसका छठा पूर्वज हाजी जमाल, मुलतान के शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया का शिष्य था। शहबाजख़ां का प्रारम्भिक-जीवन बड़ी सादगी में बीता था, परन्तु बाद में अकबर इसकी सेवाओं से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसे अपना अमीर तक बना लिया। हि० स० ९९२ (वि० सं० १६४१=ई० स० १५८४) में बादशाह ने इसे बंगाल का शासक नियुक्त किया। ७० वर्ष की अवस्था में हि० स० १००८ (वि० सं० १६५६=ई० स० १५९९) में इसकी मृत्यु हुई।

कुछ ही दिनों में उक्त गढ़ को जीत लिया[1]।

२१ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६३३=ई० स० १५७६) के आरम्भ में जब बादशाह को ख़बर मिली कि जालोर का ताजखां एवं सिरोही का

बादशाह का रायसिंह को देवड़ा सुरताण पर भेजना

सुरताण देवड़ा विद्रोहियों (राणा प्रताप) के साथ मिलकर उपद्रव कर रहे हैं, तो उसने रायसिंह,

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११३-४, १५५, १३७-८। मुन्शी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ५६-६१, ६४-७४ । उमराए-हनूद; पृ० २१३ । ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृष्ठ ३५५-६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी वि० सं० १६३२ (ई० स० १५७५) में चन्द्रसेन का शहबाज़ख़ां को सिवाने का गढ़ सौंपना लिखा है (जि० १, पृ० ८०)।

सिवाना छूटने पर राव चंद्रसेन पिपलूंद के पहाड़ों में चला गया, तो भी शाही सेना बराबर उसका पीछा करती रही। तब वह सिरोही इलाक़े में चला गया, जहां वह लगभग डेढ़ वर्ष तक रहा । जब उसे वहां भी शाही सेना पहुंचने का सम्बाद मिला, तब वह डूंगरपुर में अपने बहनोई आसकरण के यहां जा रहा । इतने में शाही सेना डूंगरपुर इलाक़े के निकटवर्ती मेवाड़ प्रदेश में पहुंच गई, तो वह वहां से बांसवाड़े में पहुंचा । कुछ दिनों वहां रहने के उपरान्त वह महाराणा प्रतापसिंह के अधीनस्थ भोमट प्रदेश में जाकर रहा, जहां एक वर्ष से अधिक समय तक वह ठहरा। फिर मारवाड़ में आकर वह सिचियायी की नाळ में रहने लगा, जहां वि० सं० १६३७ माघ सुदि ७ (ई० स० १५८१ ता० ११ जनवरी) को उसका देहांत हुआ।

सिंढायच दयालदास, बीकानेर राज्य की ख्यात में लिखता है कि पीछे से जालोर ? की तरफ़ से होता हुआ जोधपुर का राव चंद्रसेन अपने राजपूतों के साथ मारवाड़ में आया। पिपलाणा के पास उसका महाराजा रायसिंह के भाई रामसिंह से युद्ध हुआ, जिसमें वह (चंद्रसेन) भाग गया । उसका नक़ारा रामसिंह के हाथ लगा (जिल्द २, पत्र ३०) । इस युद्ध का जोधपुर राज्य की ख्यात में कुछ भी उल्लेख नहीं है, परंतु यह नक्क़ारा (जोड़ी) बीकानेर राज्य में अब तक सुरक्षित है। नक्क़ारे की जोड़ी तांबे की कुंडी पर चमड़े से मढ़ी हुई है और उसपर निम्नलिखित लेख है—

राव चंदसेन राठोडाऊ नर

राव चंदसेन राठोडाऊ

तरसूखां[1], सैय्यद हाशिम बारहा[2] आदि को उनपर भेजा। शाही सेना के जालोर पहुंचते ही, ताजखां ने अधीनता स्वीकार कर ली। फिर वे लोग सिरोही की ओर अग्रसर हुए। सुरताण ने भी इस अवसर पर मेल करना ही उचित समझा, अतएव वह भी रायसिंह के पास उपस्थित हो गया और ताजख़ां के साथ बादशाह की सेवा में चला गया। ताजख़ां तो बादशाह की आज्ञानुसार पट्टन (गुजरात) में गया और रायसिंह तथा सैय्यद हाशिम नाडोल[3] में ठहर गये, जहां के विद्रोहियों का दमन कर उन्होंने मेवाड़ के राणा के राज्य से उधर आने-जाने के मार्ग बन्द कर दिये।

कुछ दिनों पश्चात् सुरताण बादशाह की आज्ञा के बिना ही अपने देश चला गया, जिससे बादशाह ने रायसिंह तथा सैय्यद हाशिम आदि को पुनः उसपर भेजा। गढ़ को घेरने के उपरान्त, रायसिंह ने बीकानेर से अपने परिवार को बुलाने के लिए मनुष्य भेजे। सुरताण ने मौक़ा देख-कर रायसिंह के आते हुए परिवार के लोगों पर आक्रमण कर दिया, परन्तु रायमल के साथ के राठोड़ों ने उस (सुरताण) को भगा दिया तो वह (सुरताण) आबू में जा रहा। शाही सेना-द्वारा वहां भी पीछा होने पर उसने आबू का क़िला रायसिंह के सुपुर्द कर दिया। इसकी सूचना बादशाह के पास ता० १६ अस्फ़न्दारमज़ (वि० सं० १६३३ फाल्गुन सुदि १०=ई० स० १५७७ ता० २७ फ़रवरी) को पहुंची। बाद में योग्य व्यक्तियों को आबू के गढ़ की व्यवस्था के लिए छोड़कर, रायसिंह सुरताण को

(१) शाह मुहम्मद सैफ़ुल्मुल्क की बहिन का पुत्र। पहले यह बैरामख़ां की सेवा में था। अकबर के समय में इसे पांच हज़ारी मनसब मिला। हि० स० ६६२ (वि० सं० १६४१=ई० स० १५८४) में मासूमख़ां ने इसे मार डाला।

(२) सैय्यद महमूदख़ां, कुन्डलीवाल का पुत्र। अहमदाबाद के निकट सर-किच (सरखेज) के युद्ध में मारा गया।

(३) फ़ारसी तवारीख़ों में नादोत लिखा है, परन्तु यह स्थल नाडोल होना चाहिये, जो आजकल जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में है।

साथ लेकर बादशाह के पास चला गया[1]।

रायसिंह का काबुल पर जाना

अकबर के २५ वें राज्य वर्ष के अन्तिम दिनों (वि० सं० १६३७= ई० स० १५८१) में उसके सौतेले भाई हकीम मिर्ज़ा[2] (मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम) ने, जो काबुल का शासक था, अपने बड़े भाई से विरोधकर भारतवर्ष की तरफ़ भी पैर बढ़ाये। उन दिनों मुहम्मद यूसुफ़ख़ां सिन्धु के निकटवर्ती प्रदेश पर नियुक्त था, परन्तु उसका प्रबन्ध ठीक न होने के कारण बादशाह ने उसे हटाकर कुंवर मानसिंह[3] को उसके स्थान पर भेजा। स्यालकोट से चलकर जब मानसिंह रावलपिंडी पहुंचा तो उसे पता लगा कि हकीम मिर्ज़ा का एक सेनापति शादमान ससैन्य सिन्धु के तट तक आ गया है। मानसिंह ने शीघ्रता से पहुंचकर उसका अवरोध किया। तब शादमान घायल होकर भाग गया और उसकी मृत्यु हो गई। अकबर को जब यह समाचार मिला तो उसने उसी समय मान लिया कि युद्ध की यहीं इतिश्री नहीं हुई है और रायसिंह, जगन्नाथ[4], राजा गोपाल[5]

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २६६-७, २७८-९। उमरा-ए-हनूद; पृ० २१३-४। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ३२६-७। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ८४-७।

निज़ामुद्दीन की 'तबकात-इ-अकबरी' और बदायूनी की 'मुंतख़बुत्तवारीख़' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) हुमायूं का पुत्र और अकबर का सौतेला भाई। ता० १५ जुमादिउल्-अव्वल हि० स० ९६१ (वि० सं० १६११ ज्येष्ठ वदि १ = ई० स० १५५४ ता० १८ अप्रेल) को इसका काबुल में जन्म हुआ था और अकबर के ३० वें राज्य वर्ष में ता० १६ अमरदाद (वि० सं० १६४२ श्रावण सुदि ३=ई० स० १५८५ ता० २९ जुलाई) को वहीं इसकी मृत्यु हुई।

(३) आमेर के राजा भगवानदास कछवाहे का पुत्र।

(४) राजा भारमल का पुत्र। जहांगीर के समय में इसे पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था।

(५) अकबर का दो हज़ारी मनसबदार।

आदि को फ़ौज के साथ आगे रवाना किया एवं सिन्धु-प्रदेश पर नियुक्त मानसिंह को खबर भेजी कि मिर्ज़ा हकीम यदि नदी पार करने के लिए बढ़े तो उसे रोका न जाय तथा युद्ध टाला जाय। ता० १४ बहमन (हि० स० ९८८ ता० १७ जिलहिज्ज=वि० सं० १६३७ फाल्गुन वदि ३=ई० स० १५८१ ता० २३ जनवरी) को जब बादशाह को मिर्ज़ा के पंजाब पहुंचने का समाचार मिला, तो राजधानी का समुचित प्रबन्ध कर हि० स० ९८९ ता० २ मुहर्रम (वि० सं० १६३७ फाल्गुन सुदि ३=ई० स० १५८१ ता० ६ फ़रवरी) सोमवार को उसने स्वयं पंजाब की ओर प्रस्थान किया। मिर्ज़ा को बादशाह के आगमन की सूचना मिलते ही, वह वहां से अपनी फ़ौज लेकर भाग गया। बादशाह ने योग्य व्यक्तियों को उसे समझाने के लिए भेजा, परन्तु जब उसने उनके कथन पर कुछ ध्यान न दिया तो ता० ११ तीर (हि० स० ९८९ ता० २१ जमादिउल्अव्वल=वि० सं० १६३८ प्रथम श्रावण वदि ७=ई० स० १५८१ ता० २३ जून) को उसने शाहज़ादे मुराद को मानसिंह, रायसिंह आदि के साथ मिर्ज़ा को समझाने के लिए और यदि इस कार्य में सफलता न मिले तो उसे परास्त करने के लिए भेजा। मिर्ज़ा ने बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के बजाय शाही सेना का मुक़ाबला करना आरम्भ किया, परन्तु ता० २० अमरदाद (वि० सं० १६३८ द्वितीय श्रावण सुदि ३=ई० स० १५८१ ता० २ अगस्त) बुधवार को उसे हारकर भागना पड़ा। ता० २९ अमरदाद (वि० सं० १६३८ द्वितीय श्रावण सुदि १२=ई० स० १५८१ ता० ११ अगस्त) को बादशाह भी काबुल के क़िले में पहुंच गया। हकीम मिर्ज़ा के गत अपराधों को क्षमाकर उसने काबुल का अधिकार फिर उस (मिर्ज़ा) को सौंप दिया और स्वयं भारतवर्ष को लौट आया। ता० २९ आबान (हि० स० ९८९ ता० १३ शव्वाल=वि० सं० १६३८ मार्गशीर्ष वदि १=ई० स० १५८१ ता० ११ नवम्बर) को बादशाह सरहिन्द पहुंचा, जहां से रायसिंह तथा भगवानदास[1] आदि पंजाब में रहे

(१) कछवाहा, आमेर के स्वामी राजा भारमल का पुत्र। इसे अकबर के समय में 'अमीरुल्उमरा' का ख़िताब प्राप्त था।

हुए सरदार अपने-अपने ठिकानों को लौट गये[1]।

रायसिंह का राव सुरताण से आधी सिरोही लेना

महाराणा उदयसिंह ने अपने ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपनी प्रीतिपात्र राणी भटियाणी से उत्पन्न छोटे कुंवर जगमाल को अपना युवराज बनाया था, परंतु यह बात मेवाड़ की प्रचलित प्रथा के विरुद्ध होने से महाराणा उदयसिंह की मृत्यु होने पर सरदारों आदि ने उस (उदयसिंह) के ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह को मेवाड़ का महाराणा बनाया। इससे जगमाल अप्रसन्न होकर बादशाह की सेवा में जा रहा। इधर सुरताण (सिरोही के स्वामी) का सारा राज-कार्य बीजा देवड़ा के हाथ में था, जिसको कुछ दिनों बाद उसने निकाल दिया। तब वह अपनी बसी (ठिकाना) में जा रहा। इसी अवसर पर रायसिंह बादशाह की तरफ़ से सोरठ को जाता था। मार्ग में सिरोही के राव सुरताण ने उसकी खूब ख़ातिरदारी की। देवड़ा बीजा ने भी रायसिंह के पास पहुंचकर उसको कई प्रकार से लालच दिखलाया, परन्तु उसने उसकी बात न मानी। राव सुरताण से बात कर रायसिंह ने सिरोही का आधा राज्य बादशाह का रक्खा और आधा राव का तथा बीजा को सिरोही के इलाक़े से निकाल दिया। बादशाह के पास जब इसकी ख़बर रायसिंह ने पहुंचाई तब उसने सिरोही राज्य का आधा हिस्सा राणा उदयसिंह के पुत्र जगमाल को दे दिया। बीजा देवड़ा भी बादशाह की सेवा में गया हुआ था, पर उसकी कुछ सुनवाई न हुई तब वह भी जगमाल के साथ सिरोही चला गया। राव सुरताण ने आधा राज्य जगमाल के सुपुर्द तो कर दिया पर धीरे-धीरे उनमें वैमनस्य बढ़ता गया, जिससे जगमाल को पुनः बादशाह की सेवा में जाना पड़ा। इसबार बादशाह ने उसके साथ चन्द्रसेन के पुत्र रायसिंह आदि को कर दिया। इसपर

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३; पृ० ४१३-४, ५०८, ५१८, ५४२, ५४६। उमराए हनूद; पृ० २१४। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५७-८। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ११८-२१।

राव सुरताण सिरोही छोड़कर पहाड़ों में चला गया। जगमाल ने सेना के कई भाग कर अलग-अलग रास्तों से सुरताण पर भेजे, पर वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १५८३ ता० १७ अक्टोबर) को जब दताणी के रणक्षेत्र में जगमाल आदि थे, सुरताण उनपर आ टूटा और वे मारे गये[1]।

अकबर के ३० वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६४२=ई० स० १५८५) में जब बलूचिस्तान के निवासियों के विद्रोही हो जाने का समाचार मिला तो बादशाह ने उनका दमन करने के लिए इस्माईलकुलीखां[2] को रायसिंह, अबुलक़ासिम तमकिन (नमकिन)[3] आदि सहित भेजा। शाही सेना के पहुंचने पर पहले तो बलूचिस्तान के जागीरदारों ने अधीनता स्वीकार न की, परन्तु पीछे से ग़ाज़ीखां, बहादुरखां, नसरतखां आदि वहां के सब सरदार रायसिंह तथा इस्माईलकुलीखां आदि के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गये और उनकी प्रार्थना के अनुसार उनकी जागीरें पुनः उन्हें सौंप दी गईं[4]।

रायसिंह का बलूचियों पर भेजा जाना

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १३१-३।

(२) ख़ानजहां हुसेनकुलीख़ां का भाई। अकबर की अनेकों चढ़ाइयों में यह शाही सेना का अध्यक्ष था। ४२ वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६५४=ई० स० १५९७) में बादशाह ने इसे चार हज़ार का मनसब दिया था।

(३) यह पहले काबुल के मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम की सेवा में था। अकबर की सेवा में प्रविष्ट होने पर पंजाब में भिरह तथा खुशाब इसको जागीर में मिले। जहांगीर के राज्यकाल में इसे तीन हज़ारी मनसब प्राप्त हुआ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ७१६-३१। तबकात-इ अकबरी—इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४५०-५३। बदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३६०-६४ (इसमें रायसिंह के स्थान पर रायसिंह दरबारी लिखा है, जो ठीक नहीं है)। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५८।

रायसिंह की लाहौर में नियुक्ति

वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में बादशाह ने जब शासन-प्रबन्ध में परिवर्त्तन किये तो रायसिंह को राजा भगवानदास के साथ लाहौर में नियत किया[1]।

काश्मीर में रायसिंह के चाचा श्रृंग का काम आना

सन् जलूस ३२ (वि० सं० १६४४ = ई० स० १५८७) में क़ासिमखां[2] ने, जिसे बादशाह ने काश्मीर विजय करने के लिए भेजा था, उस प्रदेश को अधीनकर वहां के विद्रोहियों को दंड दे, बादशाह का अधिकार पीछा स्थापित किया, परन्तु पीछे से जब वह स्वयं वहां के निवासियों पर अत्याचार करने लगा तो फिर अशान्ति का सूत्रपात हुआ। इसलिए विद्रोहियों का दमन करने में क़ासिमखां को फिर व्यस्त होना पड़ा। शाही सेना की विद्रोहियों के द्वारा जिस समय बड़ी क्षति हो रही थी उस समय रायसिंह के काका श्रृंग (भूकरकावालों का पूर्वज) ने वीरोचित साहस एवं निर्भीकता का परिचय दिया और अपने चालीस राजपूतों सहित विद्रोहियों का सामना करता हुआ मारा गया। वास्तव में उसी की अद्भुत वीरता के कारण शाही सेना को दूसरे दिन विजय प्राप्त हुई। बाद में अकबर का भेजा हुआ यूसुफ़खां[3] वहां पहुंच गया, जिसने सारा प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर क़ासिमखां को दरबार में भेज दिया[4]।

---

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ७७१।

(२) मीर बहर चम्मनाराय (?) खुरासान, मिर्ज़ा दोस्त की भगिनी का पुत्र। अकबर ने तख़्त पर बैठने के बाद इसे तीन हज़ारी मनसबदार बनाया था।

(३) मीर अहमद इ-रजवी का पुत्र। अकबर ने अपने ३०वें राज्यवर्ष में इसे ढाई हज़ारी मनसब दिया था। हि० स० १०१० (वि० सं० १६५८=ई० स० १६०१) में जालनापुर में इसका देहान्त हुआ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ७१६-८। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० १७२।

अबुलफ़ज़ल तथा मुंशी देवीप्रसाद ने श्रीरंग (श्रृंग) को रायसिंह का चचेरा भाई लिखा है जो ठीक नहीं है। वह राव कल्याणमल का भाई और महाराजा रायसिंह का काका था, जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

रायसिंह का नया क़िला बनवाना

वि० सं० १६४५ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १५८६ ता० ३० जनवरी) बृहस्पतिवार को बीकानेर के वर्तमान क़िले का सूत्रपात हुआ। फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १५८६ ता० १७ फ़रवरी) सोमवार को नींव रक्खी जाकर वि० सं० १६५० माघ सुदि ६ (ई० स० १५६४ ता० १७ जनवरी) बृहस्पतिवार को गढ़ सम्पूर्ण हुआ[1]। यह काम मन्त्री कर्मचन्द्र के निरीक्षण में हुआ।

---

(१) बीकानेर के राजा रायसिंह की प्रशस्ति—

······अथ संवत्सरेऽस्मिन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १६४५ वर्षे शाके १५१० प्रवर्त्तमाने महामहप्रदायिनि फाल्गुने मासे कृष्णपक्षे नवम्यां तिथौ बृहस्पतिवासरे अनुराधानक्षत्रे व्याघातयोगे श्रीदुर्गस्य प्रथमं सूत्रपातः कृतः ॥ ततो दशमी १० शुक्रवारे ज्येष्ठानंतरं मूलनक्षत्रे दिनभुक्तघटिका २३ । ५५ उपरि दुर्गस्य खातः कृतः ॥ अथ संवत् १६४५ वर्षे फाल्गुनसुदि १२ द्वादश्यां सोमे पुष्यनक्षत्रे शोभननाम्नि योगे दुर्गस्य शिलान्यासः कृतः ॥ अथ संवत् १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठयां गुरौ रेवतीनक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराज-महाराज श्री श्री श्री २ रायसिंहेन दुर्गप्रतोलीसंपूर्णीकारिता सा च सुचिरस्थायिनी भवतु ॥

(जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़ १६, ई० स० १६२०, पृ० २७६)।

दयालदास की ख्यात में रायसिंह का बुरहानपुर से अपने मन्त्री कर्मचन्द्र को गढ़ बनवाने के लिए आज्ञा देना लिखा है (जि० २, पृ० ३०)। उक्त पुस्तक में गढ़ के निर्माण करने का समय वि० सं० १६४५ वैशाख सुदि ३ से वि० सं० १६५० तक दिया है। रायसिंह की प्रशस्ति के अनुसार वि० सं० १६४५ (ई० स० १५८६) के फाल्गुन मास में गढ़ का शिलान्यास हुआ, जो अधिक विश्वसनीय है।

राव बीका का बनवाया हुआ गढ़ शहर के भीतर होने से रायसिंह ने शहर से बाहर एक विशाल और सुदृढ़ दुर्ग बनवाया (इसके विरतृत हाल के लिए देखो ऊपर पृ० ४४-४६)।

वि० सं० १६४६-४७ (ई० स० १५६०) में रायसिंह बादशाह से आज्ञा लेकर बीकानेर गया। इसके कुछ ही दिनों बाद (सन् जुलूस ३६ में) रायसिंह का भाई अमरा (अमरसिंह) बादशाह का विरोधी हो गया। भिंभर के जागीरदार हमज़ा ने जब उसे उपयुक्त दंड दिया, तो एक दिन अवसर पाकर उसका पुत्र केशोदास बदला लेने के लिए, हमज़ा के पुत्र के धोखे में करमबेग[1] को मारकर अपने साथियों सहित निकल भागा। इसकी सूचना मिलते ही चतुर मनुष्य उस (केशोदास) के पीछे भेजे गये। देपालपुर तथा कनूला के बीच में नौशहरा नामक स्थान में उन्होंने विद्रोहियों को घेर लिया। इस अवसर पर रायसिंह के कुछ राजपूत एवं खानखाना[2] के आदमी भी पीछा करनेवालों से मिल गये। फलस्वरूप केशोदास अपने पांच सहायकों सहित मारा गया और शेष तीन क़ैद कर लिये गये[3]।

रायसिंह के भाई अमरा का विद्रोही होना

(१) शेरबेग का पुत्र।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ३३) और कप्तान पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० २८, टिप्पण) में लिखा है कि अमरसिंह ने अरबखां को मारा। इसपर अरबखां के साथी शाही अफ़सर ने अमरसिंह को मार डाला। तब अमरसिंह का पुत्र केशवदास उसका बदला लेने के लिए तैयार हुआ और उसने एक शाही अफ़सर को मार डाला।

(२) बैरामखां का पुत्र मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम खानखाना। इसका जन्म हि० स० ९६४ ता० १४ सफ़र (वि० सं० १६१३ माघ वदि १ = ई० स० १५५६ ता० १७ दिसम्बर) को लाहौर में हुआ था और अकबर तथा जहांगीर की अधिकांश बड़ी चढ़ाइयों में इसने सेना का संचालन किया था। जहांगीर के २१ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६८३=ई० स० १६२७) में इसका देहांत हुआ।

(३) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ९०८। दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० ३२-३) में भी अमरा के विद्रोही हो जाने तथा बाद में शाही सेना-द्वारा युद्ध में मारे जाने का उल्लेख है।

बादशाह ने पहले खानखाना को कन्दहार विजय करने के लिए नियुक्त किया था, परन्तु जब दरबारियों ने ठट्ठा के वैभव का उल्लेख किया तो बादशाह ने उसे उधर भेज दिया। खान-

रायसिंह का खानखाना की सहायतार्थ भेजा जाना

खाना ने सर्वप्रथम लाखी पर अधिकार करके शेवां के गढ़ पर आक्रमण किया। ठट्ठा के स्वामी जानीबेग[1] ने भी उसका सामना करने का आयोजन किया और अपनी रक्षा के लिए नसीरपुर के दर्रे के निकट एक गढ़ बना लिया। इसी अवसर पर रायसिंह का पुत्र दलपत और जैसलमेर का रावल भीम भी अमरकोट के रास्ते से होते हुए खानखना से जा मिले। वे अमरकोट को विजयकर वहां के स्वामी को भी अपने साथ लेते गये। जानीबेग ने जल और स्थल दोनों मार्ग से शाही सेना पर आक्रमण किया परंतु अंत में उसकी पराजय हुई तथा उसे अपने बनाये हुए गढ़ में शरण लेनी पड़ी शाही सेना ने ता० ६ आज़र इलाही सन् ३६ (हि० स० १००० ता० १४ सफ़र=वि० सं० १६४८ पौष सुदि १ = ई० स० १५६१ ता० २१ नवम्बर) को उस स्थान पर भी आक्रमण किया। पर जानीबेग सतर्कता के साथ युद्ध टालता हुआ वर्षा ऋतु के आगमन की बाट देखने लगा जब कि उसे शाही सेना का सामना करने में हर प्रकार से सुविधा होने की संभावना थी। इधर शाही सेना की शक्ति दिन पर दिन क्षीण होने लगी, जिससे खानखाना को बादशाह के पास से सहायता मंगवानी पड़ी। इसपर बादशाह ने धन, जन तथा अन्य युद्ध की सामग्री के अतिरिक्त ता० २१ आज़र (हि० स० १००० ता० २६ सफ़र=वि० सं० १६४८ पौष वदि १३ = ई० स० १५६१ ता० ३ दिसंबर) को अपने

(१) मिर्ज़ा जानी बेग तर्खान यह अपने दादा मिर्ज़ा मुहम्मद बाक़ी की मृत्यु पर हि० स० ६६३ (वि० सं० १६४१=ई० स० १५८४) में सिन्ध के अवशेष भाग का स्वामी हुआ। इसकी एक पुत्री का विवाह ख़ानख़ाना (अब्दुर्रहीम) ने अपने पुत्र के साथ किया। बाद में इसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। हि० स० १००८ (वि० सं० १६५६ = ई० स० १५६६) में बुरहानपुर में इसकी मृत्यु होने पर ठट्ठा की जागीर इसके पुत्र मिर्ज़ा गाज़ी को दी गई।

चार हज़ारी मनसबदार[1] रायसिंह को उस(खानखाना)की सहायता के लिए भेजा[2]।

रायसिंह की एक पुत्री का विवाह बान्धोगढ़ (रीवां) के रामचन्द्र बघेला के पुत्र वीरभद्र से हुआ था। जब रामचन्द्र की मृत्यु हो गई तो बादशाह ने उसके पुत्र वीरभद्र को अपना राज्य संभालने के लिए भेजा, परन्तु दुर्भाग्यवश मार्ग में वह पालकी से नीचे गिर पड़ा और कुछ समय बाद खुर्जो पहुंचने पर उसके प्राण पखेरू उड़ गये। जब बादशाह के पास यह दुःखद समाचार पहुंचा तो ता० १२ अमरदाद सन् जलूस ३८ (हि० स० १००१ ता० ४ ज़ीक़ाद = वि० सं० १६५० श्रावण सुदि ८ = ई० स० १५९३ ता० २५ जुलाई) को उसने रायसिंह के पास जाकर हार्दिक शोक प्रकट किया। वीरभद्र की राणी सती होना चाहती थी, परन्तु बादशाह ने उसके बच्चों की बाल्यावस्था के कारण उसे ऐसा करने से रोक दिया[3]।

रायसिंह के जामाता वीरभद्र की मृत्यु

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४६२। बदायूनी; मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३६२।

इससे स्पष्ट है कि अकबर के ३७ वें राज्य-वर्ष से पूर्व किसी समय रायसिंह को चार हज़ारी मनसब प्राप्त हो गया था, पर इसका ठीक-ठीक समय फ़ारसी तवारीख़ों से निश्चित नहीं होता। दयालदास ने वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) में रायसिंह को बादशाह की तरफ़ से ४००० का मनसब ५२ परगने एवं राजा का ख़िताब मिलना लिखा है (जि० २, पत्र २५)।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ९१६, ९२४, ९२५। तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४६१-२। बदायूनी; मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३९२। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५८।

(३) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ९८५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २१४-६। उमराए हनूद; पृ० २१४। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५८-९।

वि० सं० १६५० (ई० स० १५६३) में शेख़ फ़ैज़ी[1], मीर मुहम्मद अमीन आदि दक्षिण की तरफ़ गये हुए अफ़सर वापस लौटे। बुरहानुल्मुल्क[2] को कई अवसर पर शाही सहायता तथा सम्मान प्राप्त हो चुका था, परन्तु उन दिनों उसने प्रचुर मात्रा में शाही सेवा में नज़राना न भेजा। इस अवज्ञा का दंड देने के लिए बादशाह की इच्छा स्वयं आगरे जाकर उसपर फ़ौज भेजने की थी, परन्तु वहां रसद आदि की मंहगाई होने के कारण, उसने विवश होकर ता० २५ मेहर (हि० स० १००२ ता० २२ मुहर्रम = वि० सं० १६५० कार्तिक वदि ६ = ई० स० १५६३ ता० ८ अक्टोबर) को शाहज़ादे सुलतान दानियाल[3] को ७०००० सवारों[4] के साथ उसके विरुद्ध भेजा। इस अवसर पर रायसिंह, ख़ानख़ाना आदि भी उसके साथ थे तथा शाहज़ादे मुराद[5] को भी दक्षिण की ओर अग्रसर होने का

रायसिंह का दक्षिण में जाना

(१) नागोर के शेख़ मुबारक का पुत्र तथा शेख़ अबुलफ़ज़ल का ज्येष्ठ भ्राता। इसका पूरा नाम अबुलफ़ैज़ था और हि० स० ६५४ ता० १ शाबान (वि० सं० १६०४ आश्विन सुदि २ = ई० स० १५४७ ता० १६ सितम्बर) को इसका जन्म हुआ था। यह इतिहास, वेदान्त और हिक्मत आदि का प्रकांड पंडित होने के अतिरिक्त उच्च कोटि का कवि भी था। यह सबसे पहला मुसलमान था, जिसने हिन्दी साहित्य एवं विज्ञान का अध्ययन किया। कई संस्कृत पुस्तकों के अतिरिक्त इसने 'लीलावती' एवं बीजगणित का भी अनुवाद किया था। आगरे में हि० स० १००४ ता० १० सफ़र (वि० सं० १६५२ आश्विन सुदि १२ = ई० स० १५६५ ता० ५ अक्टोबर) को इसकी मृत्यु हुई।

(२) अहमदनगर का शासक।

(३) अकबर का तीसरा पुत्र। अत्यधिक मदिरा सेवन के कारण बुरहानपुर में हि० स० १०१३ ता० १ जिलहिज्ज (वि० सं० १६६२ वैशाख सुदि २ = ई० स० १६०५ ता० १० अप्रेल) को इसकी मृत्यु हुई।

(४) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४६७। बदायूनी; मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ४०३।

(५) अकबर का दूसरा पुत्र। हि० स० ६७८ (वि० सं० १६२७ = ई० स० १५७०) में सीकरी में इसका जन्म हुआ था। हि० स० १००७ ता० १५ शब्वाल

आदेश भेजा गया। लाहौर से ३५ कोस सुल्तानपुर की नदी तक बादशाह स्वयं इस सेना के साथ गया। खानखाना भी सरहिन्द तक पहुंच गया था। उसे बुलाकर उससे परामर्श करने के उपरान्त बादशाह ने केवल खानखाना को इस सेना का अध्यक्ष बनाकर भेज दिया और दानियाल को पीछा बुला लिया[1]।

अकबर का रायसिंह को जूनागढ़ देना

उसी वर्ष बादशाह ने आज़मखां[2] के नाम फ़रमान भेजकर उसे दरबार में बुला लिया और जूनागढ़ का प्रदेश (दक्षिणी काठियावाड़), जिसे उस (आज़मखां) ने जीता था, रायसिंह के नाम कर दिया[3]।

अकबर की रायसिंह से अप्रसन्नता तथा बाद में उसे सोरठ देकर दक्षिण भेजना

कुछ समय पहले रायसिंह के एक कृपापात्र सेवक ने किसी पर अत्याचार किया था[4], जिसकी शिकायत होने पर बादशाह ने रायसिंह से जवाब तलब किया, परन्तु उस (रायसिंह) ने नौकर को छिपा लिया और बादशाह से कहला दिया कि वह भाग गया। इसपर बादशाह उससे अप्रसन्न रहने लगा और उसने कुछ दिनों के लिए उसका मुजरा

(वि० सं० १६५६ ज्येष्ठ वदि १ = ई० स० १५९९ ता० १ मई) को दक्षिण में इसका देहान्त हुआ।

(१) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११४-५। तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४६७। बदायूनी; मुंतख़-बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ४०३।

(२) ख़ानआज़म, मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका (देखो ऊपर पृ० १६६, टिप्पण २)।

(३) बदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़—लो कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ४००।

(४) फ़ारसी तवारीख़ों में इस घटना का स्पष्टीकरण नहीं किया है। दयालदास की ख्यात में एक स्थल पर लिखा है कि वि० सं० १६५४ (ई० स० १५९७) में महाराजा रायसिंह भटनेर गया था। उसके वहां रहते समय बादशाह (अकबर) का श्वसुर नसीरख़ां भी वहां जाकर ठहरा। उसके वहां की किसी एक लड़की से अनुचित छेड़-छाड़ करने पर रायसिंह के इशारे से उसके सेवक तेजा ने उसको पीटा। वहां रहते समय तो उस (नसीरख़ां) ने कुछ न कहा, परन्तु दिल्ली पहुंचने पर उसने बादशाह से

बन्द कर दिया। अंत में बादशाह ने उसका अपराध क्षमा कर दिया और सोरठ (सौराष्ट्र, सारा दक्षिणी काठियावाड़) की जागीर उसे प्रदानकर दक्षिण में भेजा[1], परन्तु उधर प्रस्थान न कर वह (रायसिंह) बीकानेर जाकर बैठ रहा। कई बार समझाये जाने पर भी जब उसने कुछ ध्यान न दिया तो बादशाह ने सलाहुद्दीन को उसके पास भेजकर कहलाया कि यदि उसे दक्षिण में न जाना हो तो शाही सेवा में उपस्थित हो। इसपर ता० २६ दे सन् जुलूस ४१ (हि० स० १००५ ता० २७ जमादिउल्‌अव्वल = वि० सं० १६५३ माघ वदि १४ = ई० स० १५९७ ता० ६ जनवरी) को वह बादशाह के पास उपस्थित हो गया। पीछे से उसका अपराध क्षमाकर ता० ५ बहमन (हि० स० १००५ ता० ५ जमादिउस्सानी = वि० सं० १६५३ माघ सुदि ७ = ई० स० १५९७ ता० १४ जनवरी) को बादशाह ने उसे दक्षिण में भेज दिया[2]।

अकबर के ४५ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५७ = ई० स० १६००) के आरंभ

शिकायत कर दी। इसपर बादशाह ने महाराजा को तेजा को सौंप देने का हुक्म दिया, पर उसने नहीं सौंपा। पीछे से भटनेर तथा कसूर आदि परगने उससे जागीर होकर दलपतसिंह के पट्टे में कर दिये गये (जि० २, पत्र ३२)। किसी अज्ञात कवि की बनाई हुई 'राजा रायसिंहजी री वेल' (वेलिया गीत में लिखा हुआ काव्य) में भी इस घटना का उल्लेख है (डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टॉरिकल मैन्युस्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, भाग १, बीकानेर स्टेट; पृ० ५६)।

फ़ारसी तवारीख़ों के अनुसार रायसिंह की ड्योढ़ी बादशाह ने बन्द करवा दी थी। इससे स्पष्ट है कि उसका अपराध काफ़ी बड़ा रहा होगा। दयालदास का उपर्युक्त कथन इसी घटना से सम्बन्ध रखता है, पर उसमें दिया हुआ संवत् ग़लत है।

(१) बादशाह अकबर के रायसिंह के नाम के सन् जुलूस ४२ ता० ६ दे (हि० स० १००६ ता० २० जमादिउल्‌अव्वल = वि० सं० १६५४ पौष वदि ७ = ई० स० १५९७ ता० २० दिसम्बर) के फ़रमान में सोरठ एवं अन्य जागीरें उसे पुनः दी जाने का उल्लेख है। उक्त फ़रमान में अकबर की प्रसन्नता का भी वर्णन है।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०६८-६९। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २४५। उमराए हनूद; पृ० २१५। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३५६।

दलपत का भागकर बीकानेर जाना

में मुज़फ़्फ़र हुसेन मिर्ज़ा[1] विद्रोही हो गया और एक दिन अवसर पाकर भाग निकला। रायसिंह का पुत्र दलपत उसे खोजने के बहाने बीकानेर चला गया। वास्तव में उसका उद्देश्य भी बीकानेर जाकर फ़साद करने का था[2]। उसी वर्ष (वि० सं० १६५७ = ई० स० १६०० में) बादशाह ने माधोसिंह[3]

अकबर का रायसिंह को नागोर आदि परगने देना

को हटाकर नागोर आदि परगने रायसिंह को जागीर में दिये[4]।

रायसिंह की नासिक में नियुक्ति

अहमदनगर विजय हो जाने पर भी दक्षिण की अराजकता का अन्त नहीं हुआ था। अतएव खानखाना तो अहमदनगर भेजा गया और बादशाह ने शेख़ अबुल-फ़ज़ल[5] को ता० २३ बहमन (हि० स० १००६ ता० ६ शाबान = वि० सं० १६५७ माघ सुदि ८ = ई० स० १६०१ ता० ३१

---

(१) ऊपर पृ० १६७ में आये हुए इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पुत्र।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११५१। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६८। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६०।

(३) राजा भगवंतदास कछवाहे का ज्येष्ठ पुत्र तथा अकबर का तीन हज़ारी मनसबदार। शाहजहां के तीसरे राज्य-वर्ष (वि० सं० १६८६-७ = ई० स० १६३०) में यह अपने दो पुत्रों के साथ दक्षिण में मारा गया।

(४) अकबर का इलाही सन् ४५ ता० ३ आबान (हि० स० १००६ ता० १७ रबीउस्सानी = वि० सं० १६५७ कार्तिक बदि ४ = ई० स० १६०० ता० १५ अक्टोबर) का फ़रमान।

(५) नागोर के शेख़ मुबारक का दूसरा पुत्र तथा शेख़ फ़ैज़ी का छोटा भाई। इसका जन्म हि० स० ६५८ (वि० सं० १६०८ = ई० स० १५५१) में हुआ था और अकबर के १६वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७४) में यह उसकी सेवा में प्रविष्ट हुआ। इसने 'अकबरनामा' एवं 'आईने अकबरी' नामक अकबर के राज्यकाल से सम्बन्ध रखनेवाले दो बृहद् ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की। हि० स० १०११ ता० ४ रबीउलअव्वल (वि० सं० १६५६ भाद्रपद सुदि ६ = ई० स० १६०२ ता० १२ अगस्त) को यह वीरसिंहदेव बुंदेला के हाथ से मारा गया।

अनवरी) को नासिक जाने का आदेश दिया। इस अवसर पर रायसिंह, राय दुर्गा[1], राय भोज[2], हाशिमबेग[3] आदि को भी उसके साथ जाने की आज्ञा हुई। सन् जुलूस ४६ ता० १४ उर्दीबहिश्त (हि० स० १००६ ता० २६ शव्वाल=वि० सं० १६५८ वैशाख सुदि १=ई० स० १६०१ ता० २३ अप्रेल) को अपने देश की तरफ़ बखेड़े की ख़बर पाकर रायसिंह आज्ञा लेकर उधर चला गया[4]।

रायसिंह का आंतरी में रहना

वि० सं० १६५६ (ई० स० १६०२) में जब अबुलफ़ज़ल नरवर की ओर से अपने साथियों सहित जा रहा था, शाहज़ादे सलीम के इशारे पर वीरसिंहदेव बुन्देला[5] ने उसे मार डालने का जाल फैलाया। जब अबुलफ़ज़ल के साथियों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने उस (अबुलफ़ज़ल) से रायसिंह तथा रायरायां[6] की शरण में जाने की सलाह दी, जो उस समय केवल दो कोस

(१) चित्तोड़ के निकट के रामपुरा परगने का सीसोदिया स्वामी तथा अकबर का डेढ़ हज़ारी मनसबदार। जहांगीर के दूसरे राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६४=ई० स० १६०७) के आसपास इसकी मृत्यु हुई।

(२) राय सुर्जन हाड़ा का पुत्र। जब दूदा (भोज का बड़ा भाई) से बूंदी ली गई तो वहां का अधिकार भोज को दिया गया। वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) के आसपास इसने आत्महत्या कर ली।

(३) क़ासिमख़ां का पुत्र। अकबर के राज्य-काल में इसे डेढ़ हज़ारी मनसब प्राप्त था, जो जहांगीर के समय में तीन हज़ार हो गया।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११७३ और ११८४। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २७५-६। उमराए हनूद; पृ० २१५। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; (हिन्दी); पृ० ३५६।

(५) ओरछे का स्वामी।

(६) खत्री हरदासराय, जिसे अकबर ने रायरायां का ख़िताब दिया था। बाद में जहांगीर ने इसको राजा विक्रमाजीत का ख़िताब दिया। अकबर के समय में पहले यह हाथियों का हिसाब रक्खा करता था, परन्तु बाद में अपनी योग्यता के कारण दीवान बना दिया गया। जहांगीर ने इसे तोपख़ाने का अफ़सर भी बना दिया था।

की दूरी पर २००० सवारों के साथ आंतरी में थे, परन्तु अबुलफ़ज़ल ने उनकी सलाह पर ध्यान न दिया, जिसके फलस्वरूप वह मारा गया[1]।

पहले की बादशाह की नाराज़गी तो दूर हो गई थी, परन्तु फिर कुछ मनमुटाव हो गया था, जिसके मिटने पर बादशाह ने उसे अपनी सेवा में बुला लिया, परन्तु उसका पुत्र दलपत अब तक पिता के विरुद्ध आचरण करता था अतएव उसके लिए आज्ञा हुई कि जब तक वह अपने पिता को प्रसन्न न कर लेगा उसे शाही सम्मान प्राप्त न होगा[2]।

रायसिंह का बादशाह की नाराज़गी दूर होने पर दरबार में जाना

बादशाह ने अपने ४८ वें राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६० = ई० स० १६०३) में दशहरे के दिन शाहज़ादे सलीम को फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी और एक बड़ी सेना उसके साथ कर दी, जिसमें रायसिंह, जगन्नाथ, माधोसिंह, राय दुर्गा, राय भोज, दलपतसिंह, मोटे राजा का पुत्र सकतसिंह आदि कितने ही राजपूत सरदार भी थे। शाहज़ादा अपने पिता की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, इसलिए वहां से ससैन्य चला, परन्तु उसको मेवाड़ की चढ़ाई का पहले कटु अनुभव हो चुका था, इसलिए वह इस बला को अपने सिर से टालना चाहता था। वह फ़तहपुर में जाकर ठहर गया। वहां से उसने अपनी सेना तैयार न होने का बहाना कर बादशाह के पास अर्ज़ी भेजी कि मुझे अधिक सेना तथा ख़ज़ाने की आवश्यकता है, अतएव ये दोनों बातें स्वीकार की जावें या मुझे अपनी जागीर इलाहाबाद जाने की आज्ञा

रायसिंह की सलीम के साथ मेवाड़ की चढ़ाई के लिए नियुक्ति

(१) तकमील-इ-अकबरनामा (शेख़ इनायतुल्ला-कृत)—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ६, पृ० १०७। अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१८। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २१५-६।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २१४।

दी जाय। बादशाह समझ गया कि वह फिर महाराणा (अमरसिंह) से लड़ना नहीं चाहता है, इसलिए उसने उसे इलाहाबाद जाने की आज्ञा दे दी'[1]।

रायसिंह को परगना शम्साबाद मिलना

बादशाह ने अपने ४९ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६६१=ई० स० १६०४) में परगना शम्साबाद के दो भाग—एक शम्साबाद तथा दूसरा नूरपुर—कर दिये और उन्हें रायसिंह को जागीर में दे दिया[2]।

बादशाह की बीमारी पर रायसिंह का बुलवाया जाना तथा बादशाह की मृत्यु

वि० सं० १६६२ के आश्विन (ई० स० १६०५ सितम्बर) में बादशाह की तबियत खराब हो गई और वह बहुत क्षीण हो गया। इस अवसर पर शाहज़ादे सलीम ने रायसिंह को बुलाने के लिए निशान भेजा, जिसमें उसे बिना रुके हुए शीघ्रातिशीघ्र आने को लिखा था[3]। रायसिंह को इतनी शीघ्रता से इस अवसर पर बुलाने में भी एक रहस्य था, जिसका उल्लेख मुंशी देवीप्रसाद ने इस प्रकार किया है—'ता० २० जमादिउल्‌अव्वल को बादशाह बीमार हुआ। उस वक्त दरबार में राजा मानसिंह (कछवाहा) और खानआज़म कर्त्ता-धर्त्ता थे। खुसरो आमेर के मानसिंह का भानजा और खानआज़म का जामाता था, इसलिए ये दोनों बादशाह के पीछे खुसरो को तख़्त पर बिठाने के जोड़-तोड़ में लगे हुए

(१) तकमील-इ-अकबरनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ६, पृ० ११०। अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १२३३-४। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ३०४-५। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६०।

(२) अकबर का इलाही सन् ४९ ता० २१ खुरदाद (हि० स० १०१३ ता० ११ मुहर्रम=वि० सं० १६६१ ज्येष्ठ सुदि १४=ई० स० १६०४ ता० ३१ मई) का फ़रमान।

(३) जहांगीर का इलाही सन् ५० ता० २९ मेहर (हि० स० १०१४ ता० ७ जमादिउस्सानी = वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १०=ई० स० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान।

थे तथा जो लोग शाह सलीम को नहीं चाहते थे वे सब इनके सहायक थे। शाहज़ादे ने यह सब हाल देखकर क़िले में आना-जाना छोड़ दिया था[1]।' इससे यह स्पष्ट है कि ऐसे समय में रायसिंह ही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसकी सहायता पर सलीम भरोसा कर सकता था। दुश्मनों से भरे हुए दरबार में उसे रायसिंह ही विश्वासपात्र दिखाई पड़ता था, इसलिए उसने अपना पक्ष दृढ़ करने के लिए रायसिंह को शीघ्रातिशीघ्र आने को लिखा था। लगभग एक मास बाद वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १६०५ ता० १५ ऑक्टोबर) मंगलवार को १४ घड़ी रात गये आगरे में अकबर का देहांत हो गया[2]।

रायसिंह के मनसब में वृद्धि

अकबर के देहावसान के पश्चात् सलीम जहांगीर के नाम से हि० स० १०१४ ता० २० जमादिउस्सानी (वि० सं० १६६२ मार्गशीर्ष वदि ७ = ई० स० १६०५ ता० २४ ऑक्टोबर) बृहस्पतिवार को लगभग ३८ वर्ष की अवस्था में आगरे में सिंहासनारूढ़ हुआ। हि० स० १०१४ ता० ११ ज़िलक़ाद (वि० सं० १६६३ प्रथम चैत्र वदि १२ = ई० स० १६०६ ता० ११ मार्च) मंगलवार को पहले जुलूस के उत्सव में उसने अपने बहुतसे अफ़सरों के मनसब आदि में वृद्धि की। अकबर के जीवनकाल में रायसिंह का मनसब चार हज़ारी था, जो इस अवसर पर बढ़ाकर पांच हज़ारी कर दिया गया[3]।

जहांगीर के पहले राज्य-वर्ष के मध्य में शाहज़ादा खुसरो बाग़ी होकर पंजाब की तरफ़ भाग गया। पहले तो बादशाह ने अन्य अफ़सरों को उसके पीछे भेजा, परन्तु बाद में उसने स्वयं प्रस्थान किया। इस

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १६।

(२) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२६०।

(३) तुज़ुक-इ-जहांगीरी—राजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १ और ४१। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २२ और ५२। उमराए हनूद; पृ० २१५। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६०।

रायसिंह का बादशाह की आज्ञा के बिना बीकानेर जाना

अवसर पर रायसिंह को उसने यह कहकर आगरे में रक्खा था कि जब बेगमों को बुलवाया जाय तो वह उनको लेकर आवे[1]। बेगमों के बुलवाये आने पर दो-तीन मंज़िल तक तो वह उनके साथ गया, पर मथुरा में कुछ अफ़वाहें[2] सुनते ही वह उनका साथ छोड़कर बीकानेर चला गया और वहीं से ख़ुसरो की गति-विधि लक्ष्य करने लगा[3]।

जब बादशाह को, नागोर के पास दलपत के बाग़ी हो जाने का समाचार मिला, तो उसने राजा जगन्नाथ, मुइज़्ज़ुल्मुल्क[4] आदि को उसपर भेजा। इसके कुछ ही दिनों बाद उसे सूचना मिली कि ज़ाहिदख़ां[5], अब्दुर्रहीम[6], राणा

शाही सेना-द्वारा दलपत की पराजय

(१) अन्य तवारीख़ों (इक़बालनामा; पृ० ६, मआसिर-इ-जहांगीरी; पृ० ७१, क़ज़वीनी; पृ० ४२) से पाया जाता है कि इस अवसर पर जहांगीर, शेख़ सलीम के पौत्र शेख़ अलाउद्दीन, मिर्ज़ा गयासबेग तेहरानी, दोस्तमुहम्मद ख़्वाजाजहां और रायसिंह की एक सम्मिलित कमेटी बनाकर राजधानी की हिफ़ाज़त करने के लिए छोड़ गया था और शाहज़ादा ख़ुर्रम इस कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया था।

(२) 'तुज़ुक-इ-जहांगीरी' में आगे चलकर लिखा है कि बादशाह अकबर की मृत्यु हो जाने पर जब शाहज़ादा ख़ुसरो बाग़ी होकर भागा और जहांगीर उसके पीछे गया तो रायसिंह ने मानसिंह सेवड़ा (जैन साधु) से पूछा कि जहांगीर का राज्य कबतक रहेगा। उसके यह उत्तर देने पर कि अधिक से अधिक दो वर्ष तक रहेगा, रायसिंह इसपर विश्वास कर शाही आज्ञा प्राप्त किये बिना ही बीकानेर चला गया। परन्तु जब बादशाह सकुशल राजधानी को लौट आया तब वह शाही सेवा में उपस्थित हो गया (राजर्स और बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० ४३७-८)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ६७।

(४) बारवर्ज़े ('आईने अकबरी' में मशअद दिया है) का सैय्यद।

(५) हिरात के बाकर के पुत्र सादिक़ख़ां का पुत्र। अकबर के समय में इसे साढ़े तीन सौ का मनसब प्राप्त था, जो जहांगीर के समय में दो हज़ार हो गया।

(६) शेख़ अबुलफ़ज़ल का पुत्र तथा जहांगीर का दो हज़ारी मनसबदार। बाद में इसे अफ़ज़लख़ां का ख़िताब दिया गया था। जहांगीर के आठवें राज्यवर्ष में ता० १० ख़ुरदाद (वि० सं० १६७० ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० स० १६१३ ता० २० मई) को इसकी मृत्यु हुई।

शंकर[1] (सगर) आदि ने दलपत के नागोर के पास होने का पता पा उस-पर चढ़ाई कर दी और उसे घेर लिया है। दलपत ने कुछ देर तक तो शाही सेना का सामना किया परन्तु अंत में उसे भागना पड़ा[2]।

रायसिंह का शाही-सेवा में उपस्थित होना

हि० स० १०१६ ता० ६ शाबान (वि० सं० १६६४ माघ सुदि ८ = ई० स० १६०८ ता० १४ जनवरी) को रायसिंह अमीर-उल्-उमरा[3] के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह ने उसे क्षमा प्रदान की तथा अमीर-उल्-उमरा के कहने से उसका पुराना पद तथा जागीरें बहाल रक्खी गई[4]।

दलपत का खानजहां की शरण में जाना

जहांगीर के तीसरे राज्यवर्ष में ता० २२ जमादिउल्अव्वल हि० स० १०१७ (वि० सं० १६६५ द्वितीय भाद्रपद वदि १० = ई० स० १६०८ ता० २४ अगस्त) को दलपत ने भी खानजहां[5] की शरण ली, जिसपर उसके अपराध क्षमा कर दिये गये[6]।

---

(१) राणा उदयसिंह का पुत्र तथा राणा अमरसिंह का चाचा। आगे चलकर इसका मनसब तीन हज़ारी हो गया।

(२) तुज़ुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० ८४। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ६६ और ७०।

(३) अबदुस्समद का पुत्र शरीफ़खां। जहांगीर ने इसे पांच हज़ारी मनसब प्रदान कर अमीर-उल्-उमरा का ख़िताब दिया। जहांगीर के ७ वें राज्यवर्ष में ता० २७ आबान (हि० स० १०२१ ता० २३ रमज़ान = वि० सं० १६६९ मार्गशीर्ष वदि १० = ई० स० १६१२ ता० ८ नवम्बर) रविवार को इसका बुरहानपुर में देहांत हुआ।

(४) तुज़ुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृष्ठ १३०-१। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृष्ठ ९७।

(५) पीरख़ां लोदी, जिसे जहांगीर ने अपने राज्यकाल में पांच हज़ारी मनसब तथा ख़ानजहां का ख़िताब दिया था।

(६) तुज़ुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० १४८। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १०१। अपने हि० स० १०१५ (वि० सं० १६६४ = ई० स० १६०७) के फ़रमान में जहांगीर ने रायसिंह को लिखा था कि दलपत के पिता के विरुद्ध चढ़ाई करने का समाचार मिला है। यदि यह ख़बर सच हो तो रायसिंह फ़ौरन उसे सूचित करे ताकि शाही-सेना दलपत को दंड देने के लिए भेजी जाय।

फ़ारसी तवारीख़ों आदि से जो कुछ वृत्तान्त रायसिंह का ज्ञात हुआ वह ऊपर दिया जा चुका है। अब हम ख्यातों के आधार पर उसके सम्बन्ध की उन घटनाओं का वर्णन करेंगे, जिनका उल्लेख ऊपर नहीं आया है। अधिकांश ख्यातें बहुत पीछे की लिखी हुई होने से उनमें कुछ बातें जनश्रुति के आधार पर भी लिख दी गई हैं, तो भी उनसे कई नई बातों पर प्रकाश पड़ता है, इसलिए उनका उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है।

ख्यातें और रायसिंह

ख्यातों से पाया जाता है कि वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) में कुंवर मानसिंह (आमेर का कछवाहा) के कहलाने पर रायसिंह बादशाह अकबर की सेवा में गया। फिर ६-७ मास दिल्ली रहने पर जब वह बीकानेर लौटा तो उसने नागोर के तोग़मख़ां पर चढ़ाई की, जो उस समय बादशाह का विरोधी हो रहा था। फिर मानसिंह के अकेले पठानों का दमन करने में असमर्थ होने पर बादशाह ने रायसिंह को उसकी सहायतार्थ भेजा, जहां से सफल होकर लौटने पर वि० सं० १६३४ (ई० स०१५७७) में उसे राजा का ख़िताब, चार हज़ारी मनसब एवं ५२ परगने दिये गये[1]। पर उपर्युक्त कथन कल्पनामात्र ही प्रतीत होता है, क्योंकि रायसिंह तो वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में अपने पिता की विद्यमानता में ही उसके साथ बादशाह की सेवा में प्रविष्ट हो गया था। फिर उसके तोग़मख़ां को परास्त करने एवं मानसिंह की सहायतार्थ अटक जाने की पुष्टि भी किसी फ़ारसी तवारीख़ से नहीं होती।

आगे चलकर ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने फिर उसे अहमदाबाद के स्वामी अहमदशाह पर भेजा, जिसे परास्त कर उसने क़ैद कर लिया। इस युद्ध में उसके छोटे भाई रामसिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई[2]। साथ

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २४।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २५-६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २४।

ही उसकी तरफ़ के कितने ही वीरों ने वीर गति पाई[1]। संभवतः ख्यातकार का आशय अहमदशाह से ऊपर लिखे हुए मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा से हो, परंतु वह तो वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में ही मार डाला गया था।

वि० सं० १६५२ (ई० स० १५९५) में मंत्री कर्मचन्द्र अन्य कई मनुष्यों से मिलकर, रायसिंह को गद्दी से उतारने का उद्योग करने लगा। उसका उद्देश्य रायसिंह के पुत्रों में से दलपत को गद्दी पर बैठाने का था, परन्तु इसकी सूचना रायसिंह को मिल जाने से उसने ठाकुर मालदे को उसे (कर्मचन्द्र) मारने के लिए नियत किया। कर्मचन्द्र को किसी प्रकार इसका पता लग गया, जिससे वह सपरिवार भागकर बादशाह अकबर की सेवा में चला गया[2]।

दयालदास लिखता है—'वि० सं० १६५४ (ई० स० १५९७) में बादशाह ने रायसिंह से अप्रसन्न रहने के कारण[3] भटनेर, कसूर आदि की

(१) दयालदास की ख्यात में दिये हुए कुछ नाम ये हैं—

१—साहोर के रतनसिंह के वंश के अर्जुनसिंह का पुत्र जसवन्त।

२—शृंग का वंशज भगवान, भूकरके का स्वामी।

३—नारण का वंशज भोपत, एचारे का स्वामी।

४—नारण का वंशज जैमल, तिहांणदेसर का स्वामी।

५—नारण भीमराज का पुत्र, राजपुर का स्वामी।

६—नींबा का वंशज सादूल, चांणदे का स्वामी।

७—तेजसिंह के वंशज मानसिंह का पुत्र रायसल, जैतासर का स्वामी।

८—राजसिंह के वंशज सोमसिंह का पुत्र गौरीसिंह, हांसासर का स्वामी।

९—मानसिंह का पुत्र माधोसिंह, पारवे का स्वामी।

१०—घड़सी के वंशज अमरसिंह का पुत्र भाण, घड़सीसर का स्वामी।

११—बीदावत केशवदास का पुत्र गोयंददास, बीदासर का स्वामी।

इनके अतिरिक्त बहुत से दूसरे राठोड़ तथा भाटी सरदार आदि भी काम आये (जि० २, पत्र २६)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० ३२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २८।

(३) ख्यात में दिया हुआ इस नाराज़गी का विस्तृत हाल ऊपर पृ० १८४ टिप्पण १ में लिखा है।

जागीर दलपतसिंह को दे दी, पर शाही सेवा करने के बजाय वह बीकानेर पर चढ़ गया। इसमें उसे सफलता न हुई और बादशाह ने उसकी जागीर ख़ालसे कर ली। इसपर वह दिल्ली गया, जहां बादशाह ने उसका अपराध क्षमा कर उसे फिर मनसब दिया। कुछ दिनों बाद दलपत ने फिर बीकानेर पर चढ़ाई की। रायसिंह के सरदारों ने उसका सामना किया, पर उनकी पराजय हुई और वहां दलपत का अधिकार हो गया। उन दिनों महाराजा रायसिंह दिल्ली में था। वहां से रुख़सत लेकर वह बीकानेर गया। उसने नागोर से दलपत को बुलाकर गांव आदि दिये, पर कोई परिणाम न निकला और नागोर के पास लड़ाई होने पर महाराजा की पराजय हुई। महाराजा ने एक बार फिर उसे समझाने का प्रयत्न किया, पर इसी बीच दिल्ली से फ़रमान आने पर उसे उधर जाना पड़ा। अनन्तर दलपतसिंह को पता लगा कि सिरसा पर जोहियों, भाटियों व राजपूतों को मारकर जावदीख़ां ने अधिकार कर लिया है, जिसपर उसने वहां जाकर जावदीख़ां को परास्त कर वहां से निकाल दिया। बादशाह को इसकी ख़बर जावदीख़ां-द्वारा मिलने पर उसने कछवाहे मनोहरसिंह, हाड़ा रायसाल, हाड़ा परशुराम आदि के साथ एक फ़ौज दलपत के विरुद्ध नागोर भेजी। इसपर दलपत भागकर मारोठ चला गया। जब शाही सेना ने वहां भी उसका पीछा किया तब वह फिर भटनेर चला गया, जहां वह शाही सेना-द्वारा बन्दी कर लिया गया। बाद में ख़ानजहां की मारफ़त वह छूटा[1]।' फ़ारसी तवारीख़ों में जहांगीर के राज्यकाल में दलपत का रायसिंह के विरुद्ध होना, बाद में शाही सेना-द्वारा उसका परास्त होना एवं ख़ानजहां के कहने से माफ़ किया जाना लिखा है। संभव है ख्यात का उपर्युक्त कथन उसी घटना से सम्बन्ध रखता हो। इस हिसाब से ख्यात का दिया हुआ समय ठीक नहीं हो सकता।

जहांगीर ने रायसिंह की नियुक्ति दक्षिण में कर दी थी, जिससे वह बीकानेर से सूरसिंह को साथ लेकर बुरहानपुर चला गया। कुछ दिनों

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३२।

रायसिंह की मृत्यु

पश्चात् वह सख्त बीमार पड़ा। उस समय सूरसिंह ने, जो उसके पास ही था, उससे पूछा कि आपकी अभिलाषा क्या है मुझसे कहें। रायसिंह ने उत्तर दिया कि मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करनेवालों का समूल नाश कर दिया जाय। सूरसिंह ने उसी समय प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बीकानेर का स्वामी हुआ तो आपकी इस आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करूंगा[1]। अनन्तर वि० सं० १६६८ माघ वदि ३० (ई० स० १६१२ ता० २२ जनवरी) बुधवार को उस (रायसिंह) का बुरहानपुर में देहांत हो गया[2]।

विवाह तथा सन्तति

रायसिंह का एक विवाह महाराणा उदयसिंह की पुत्री जसमादे के साथ हुआ था[3]। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' से पाया जाता है कि इस राणी से भूपति और दलपत नामक दो पुत्र हुए[4], जिनमें से भूपसिंह (भूपति) कुंवरपदे में ही मर गया[5]। रायसिंह का दूसरा विवाह वि० सं० १६४९ (ई० स० १५९२) में जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री गंगा से हुआ था, जिससे

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३०।

(२) श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १६६८ वर्षे महामङ्गदायिनि माघे मासे कृष्णपक्षे अमावास्यायां बुधे ········ श्रीराठोड़ान्वये महाराजाधिराजमहाराजाश्रीश्रीरायसिंहो दैववशात् धर्मध्यानं कुर्वन् सन् दिवंगतस्तेन सहैताः स्त्रियः सत्यो बभूवुः।······द्रौपदा। सोढ़ी भाणां। भटियाणी अमोलक॥

टॉड ने वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) में रायसिंह के बाद कर्णसिंह का गद्दी बैठना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३५)। उसने दलपतसिंह तथा सूरसिंह के नामों का उल्लेख तक नहीं किया, जो भूल ही है।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६।

(४) भूपतिदलपतिनामकसुतौ च जसवंतदेविजौ यस्य ॥३१३॥

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४।

सूरसिंह का जन्म हुआ। उसी वर्ष माघ सुदि १५ को तीसरी राणी निरवाण से किशनसिंह का जन्म हुआ[1]। इनके अतिरिक्त सोढ़ी भाणमती, भटियाणी अमोलक तथा तंवर द्रौपदी नाम की तीन राणियां और थीं, जिनके सती होने का उल्लेख रायसिंह की स्मारक छत्री में है।

रायसिंह का शाही सम्मान

वैसे तो बीकानेर के राजाओं का मुसलमानों से मेल शेरशाह के समय से ही हो चुका था, परन्तु उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध महाराजा रायसिंह के समय से प्रारम्भ होता है। जिस सम्बन्ध का सूत्रपात राव कल्याणमल ने अकबर के १५ वें राज्यवर्ष में उसकी सेवा में उपस्थित होकर किया, उसको रायसिंह ने उत्तरोत्तर बढ़ाया। अकबर बड़ा ही योग्य शासक था और योग्य व्यक्तियों का सम्मान करने में वह हमेशा तत्पर रहता था। रायसिंह अकबर के वीर तथा कार्य-कुशल एवं राजनीति-निपुण योद्धाओं में से एक था। बहुत थोड़े समय में ही वह उस(अकबर)का प्रीतिपात्र बन गया। अकबर के राज्य का हम उसे एक सुदृढ़ स्तंभ कह सकते हैं। अधिकांश लड़ाइयों में अकबर की सेना का रायसिंह ने सफलतापूर्वक संचालन किया। गुजरात, काबुल, दक्षिण, हर तरफ़ उसने अपने वीरोचित गुणों का प्रदर्शन किया। फलस्वरूप कुछ ही दिनों में वह अकबर का चार हज़ारी मनसबदार हो गया। फिर जहांगीर के गद्दी बैठने पर उसका मनसब पांच हज़ारी हो गया। अकबर के समय हिन्दू नरेशों में जयपुर के बाद बीकानेरवालों का ही सम्मान बढ़ा-चढ़ा था।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३१-३२।

'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' में भी निर्वाणकुल की स्त्री से कचरा नाम के पुत्र होने का उल्लेख है (श्लोक ३३३)।

किशनसिंह को राजा सूरसिंह ने सांखू की जागीर दी। इसके वंशज किशन-सिंहोत बीका कहलाये।

टॉड ने रायसिंह के केवल एक पुत्र कर्ण का होना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३५), परन्तु कर्ण तो रायसिंह का पौत्र था।

अकबर और जहांगीर का विश्वासपात्र होने के कारण विशेष अवसरों पर रायसिंह की नियुक्ति हुआ करती थी और समय-समय पर उसे बादशाह की ओर से जागीरें भी मिलती रहीं। वि० सं० १६५४ (ई० स० १५९७) से पहले ही जूनागढ़ और सोरठ के ज़िले रायसिंह को जागीर में मिल गये थे।

पाउलेट ने 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में अकबर के ४३ वें राज्यवर्ष के रबीउल्अव्वल (वि० सं० १६५६ = ई० स० १५९९) के उस फ़रमान का उल्लेख किया है, जिसमें रायसिंह को निम्नलिखित परगने मिलना लिखा है[1]—

बीकानेर	
बीकानेर	३२५०००० दाम
बाटलोद	६४०००० ,,
	३८९०००० ,,
हिसार	
बारथल	९८००३२ ,,
सीदमुख	७२१५२ ,,
	१०५२१८४ ,,
सूबा अजमेर	
द्रोणपुर	७८१३८६ ,,
	७८१३८६ ,,
भटनेर	
भटनेर (सरकार हिसार में)	९३२७४२ ,,

(१) पृ० २५ । दयालदास ने भी अपनी ख्यात में नागरी लिपि में कई फ़रमानों की फ़ारसी इबारत की प्रतिलिपि दी है (जि० २, पत्र २८-३०) ।

मारोठ (सरकार मुलतान में)	२८०००० दाम
	१२१२७४२ ,,
सरकार सूरत (सोरठ[1])	
जूनागढ़ तथा अन्य ४७ परगने	३३२६११६२ ,,
	३३२६११६२ ,,
कुलजोड़	४०२०६२७४ दाम[2]

(अर्थात् अनुमान १००५१५७ रुपये)।

वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में सरकार नागोर आदि के परगने भी उसकी जागीर में शामिल कर दिये गये[3]। वि० सं० १६६१ (ई० स० १६०४) में परगना शम्साबाद के दो भाग कर दोनों ही रायसिंह को दे दिये गये। बादशाह अकबर रायसिंह को कितना मानता था यह इसी से स्पष्ट है कि जब एक बार रायसिंह ने शाही सेवा में पत्रादि भेजना बंद कर दिया तो शाहज़ादे सलीम की मुहर का निम्नलिखित आशय का निशान उसके पास पहुंचा[4]—

"साम्राज्य के विश्वासपात्र, शाही सम्मानों के योग्य राय रायसिंह ने, जिसे शाही कृपाओं तथा उपकारों की प्रतिष्ठा प्राप्त है, अपनी गत

(१) यह सोरठ ही होना चाहिये। फ़ारसी लिपि की अपूर्णता के कारण ही यह भिन्नता आ गई है।

(२) तत्कालीन प्राचीन तांबे का सिक्का, जिसका मूल्य आजकल के रुपये के चालीसवें अंश के बराबर था। उस समय राज्यों की आमदनी बहुत कम थी।

(३) अकबर का इलाही सन् ४५ ता० ३ आबान (हि० स० १००९ ता० १७ रबीउस्सानी=वि० सं० १६५७ कार्तिक वदि ४=ई० स० १६०० ता० १५ अक्टोबर) का फ़रमान।

(४) इलाही सन् ४७ ता० ४ आज़र (हि० स० १०११ ता० ११ जमादि-उस्सानी=वि० सं० १६५९ मार्गशीर्ष सुदि १२=ई० स० १६०२ ता० १६ नवम्बर) का निशान।

सेवाओं को भूलकर, शाह को अपनी स्मृति दिलाना बन्द कर दिया है।

"तथापि (उसकी लापरवाही का कुछ भी विचार न करके) शाह के हृदय में साम्राज्य के सब से बड़े शुभचिंतक (रायसिंह) की प्रायः हरेक शुभ अवसर पर स्मृति आती रही है।

"अतएव, रायसिंह को उचित है कि गत समय के आचरण के विरुद्ध, वह अब से सदैव पत्र भेजा करे, जिनके उत्तर में उसे शाही कृपा-पत्रों से सम्मानित किया जायगा।"

यही नहीं बादशाह अकबर के रुग्ण होने पर वि० सं० १६६२ (ई० स० १६०५) में शाहज़ादे सलीम की मुहर का, नीचे लिखे आशय का एक और निशान उसे प्राप्त हुआ[1]—

"साम्राज्य के आधार-स्तम्भ, शाही कृपाओं के योग्य तथा बहुत-से उपहारों से सम्मानित रायसिंह को सूचित किया जाता है कि शाहंशाह गत कुछ दिनों से बहुत कमज़ोर हो गये हैं और उनकी कमज़ोरी अब तक वैसी ही बनी हुई है।

"अतएव यह आवश्यक है कि साम्राज्य का आधार (रायसिंह) शाही दरबार में शीघ्रातिशीघ्र रात और दिन अधिक से अधिक चलकर पहुंच जावे। किसी भी कारण से उसे रुकना नहीं चाहिये।"

बाद में जब शाहज़ादा सलीम जहांगीर के नाम से गद्दी पर बैठा और शाहज़ादे खुसरो के पीछे गया तो उसने बेगमों के साथ आने के लिए रायसिंह को आगरे में रख दिया था। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक विषय में रायसिंह का इन बादशाहों के दिल में बड़ा सम्मान और विश्वास था। साथ ही रायसिंह के पुत्रों तथा रिश्तेदारों को भी शाही दरबार में सम्मानित स्थान प्राप्त था।

महाराजा रायसिंह के नाम के तेरह फ़रमान तथा निशान हमारे देखने में आये हैं।

---

(१) इलाही सन् ५० ता० २१ मेहर (हि० स० १०१४ ता० ७ जमादि-उस्सानी = वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १० = ई० स० १६०५ ता० ११ अक्टोबर) का निशान।

ख्यातों में रायसिंह की दानशीलता का बहुत उल्लेख मिलता है। उदयपुर और जैसलमेर में अपने विवाह के समय उसने चारणों आदि को बहुत कुछ दान दिया था। इसके अतिरिक्त उसने कई अवसरों पर अपने आश्रित कवियों और ख्यातकारों को करोड़ और सवा करोड़ पसाव दिये थे[1]। मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है—'यदि चारणों की बातें मानें और बीकानेर के इतिहास को सत्य जानें तो यह (रायसिंह) राजपूताने के कर्ण ही थे[2]।' उसके समय में कवियों और विद्वानों का बड़ा सम्मान होता था और वह स्वयं भी भाषा और संस्कृत दोनों में उच्च कोटि की कविता कर लेता था। उसके आश्रय में कई अति उत्तम ग्रन्थों का निर्माण हुआ[3]। उसने स्वयं भी 'रायसिंह

रायसिंह की दानशीलता और विद्यानुराग

---

(१) ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार रायसिंह ने शंकर बारहट को करोड़ पसाव देने का हुक्म दिया। दीवान ने रुपये ख़ज़ाने से निकलवा तो दिये, परन्तु देखकर दिलवाये जाने की प्रार्थना की। रायसिंह उसके मन्तव्य को समझ गया और उसने रुपये देखकर कहा कि बस करोड़ रुपये यही हैं। मैं तो समझता था कि बहुत होते हैं। सवा करोड़ दिये जावें।

(२) राजरसनामृत; पृ० ३६।

(३) महाराजा रायसिंह के समय बीकानेर में रहकर जैन साधु ज्ञानविमल ने कार्तिकादि वि० सं० १६५४ आषाढ सुदि २ (चैत्रादि वि० सं० १६५५ = ई० स० १५९८ ता० २५ जून) रविवार को महेश्वर के 'शब्दभेद' की टीका समाप्त की थी—

श्रीमद्विक्रमनगरे राजच्छ्रीराजसिंहनृपराज्ये।
सल्लोकचक्रवाकप्रमोदसूर्योदये सम्यक् ॥ २४ ॥
चतुराननवदनेंद्रियरसवसुधासंमिते लसद्वर्षे।
श्रीमद्विक्रमनृपतौ निःक्रान्ते(१६५४)तीवक्कृतहर्षे ॥२५॥
शुभोपयोगे शुभयोगयुक्ते चरे द्वितीयादिवसेतिशुद्धे।
आषाढमासस्य विशुद्धपक्षे पुण्यर्क्षसंयुक्तगभस्तिवारे ॥२६॥
संदृब्धा वृत्तिरियं विद्वज्जनवृंदवाच्यमाना वै।
तावन्नंदतु वसुधा चंद्रादित्यादयो यावत् ॥२७॥
चतुर्भिः कुलकम् ॥

महोत्सव'' [1] और 'ज्योतिष रत्नाकर' (रत्नमाला)[2] नाम के दो अमूल्य ग्रन्थ लिखे। इनमें से पहला ग्रन्थ बहुत बड़ा और वैद्यक का तथा दूसरा ज्योतिष का है, जो रायसिंह की तद्विषयक योग्यता प्रकट करते हैं।

एक बार दक्षिण में नियुक्त होने पर उस निर्जन स्थान में एक 'फोग' का बूटा देखकर उसने निम्नांकित भावमय दोहा कहा था—

तू सैंदेशी रूंखड़ा, म्हे परदेशी लोग ।
म्हाँने अकबर तेड़िया, तू क्यों आयो 'फोग' ॥

यह पुस्तक जैसलमेर के जैन पुस्तक-भंडार में सुरक्षित है।

किसी अज्ञात कवि ने महाराजा रायसिंह की प्रशंसा में वेलिया गीतों में 'राजा रायसिंह री वेल' नामक पुस्तक की रचना की थी। इसमें कुल ४३ गीत हैं, जिनमें उसकी गुजरात की लड़ाइयों आदि का उल्लेख है।

(टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैन्यु-स्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, पार्ट १; पृ० ४६, बीकानेर)।

(१) ······इति श्रीराठोडान्वयकमलकाननविकाशनदिनकरमहाराजाधिराजमहाराजाश्रीरायसिंहविरचिते श्रीरायसिंहोत्सवे वैद्यकसारसंग्रहापरनामनि ग्रंथ मिश्रवर्गकथननामचतुःषष्टितमो विश्रामः ॥ ६४ ॥

(मूल ग्रन्थ का अन्तिम भाग)।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में राव सीहा (सिंह) से लगाकर रायसिंह तक की संस्कृत श्लोकों में वंशावली देकर रायसिंह का भी कुछ वृत्तान्त दिया है। यह पुस्तक बीकानेर-दुर्ग के राजकीय पुस्तक-भंडार में सुरक्षित है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद ने इस पुस्तक का नाम 'ज्योतिषरत्नाकर' लिखा है, जो ठीक नहीं है। मूल पुस्तक के देखने से पाया जाता है कि श्रीपति-रचित 'ज्योतिष रत्नमाला' की उस(महाराजा रायसिंह)ने 'बालबोधिनी' नाम की भाषाटीका की थी। वि० सं० १६४१ पौष वदि ११ (ई० स० १५८४ ता० १७ दिसम्बर) गुरुवार की उक्त पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के अन्त में लिखा है—

इतिश्री श्रीपतिविरचितायां ज्योतिषरत्नमालायां भाषाटीकायां परमकारुणिकमहाराजाधिराजमहारायश्रीरायसिंहविरचितायां बालावबोधिन्यां देवप्रतिष्ठा प्रकरणं विंशतितमं ॥ २० ॥

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, मुगलों के साथ बीकानेरवालों का सम्बन्ध राव कल्याणमल के समय स्थापित हुआ था, परन्तु वह स्वयं शाही दरबार में नहीं गया। उसका पुत्र रायसिंह उसकी विद्यमानता में ही शाही सेवा में प्रविष्ट हुआ और थोड़े समय में ही अपने वीरोचित गुणों के कारण वह अकबर का प्रीतिपात्र और विश्वासभाजन बन गया। बादशाह की तरफ़ की अनेकों चढ़ाइयों में वह भी साथ था। गुजरात, काबुल, कन्दहार आदि की चढ़ाइयों में उसने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया। इसी तरह इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा, देवड़ा सुरताण, बलूचियों आदि के साथ की लड़ाइयों में भी उसने बहादुरी के साथ भाग लिया। बादशाह उसका कितना अधिक विश्वास करता था यह इसी से स्पष्ट है कि चंद्रसेन से जोधपुर ख़ालसा कर लेने पर उसने उस(रायसिंह)को ही वहां का राज्य दे दिया। फिर बादशाह के बीमार पड़ने पर शाहज़ादे सलीम ने उसे ही शीघ्रातिशीघ्र दरबार में आने के लिए लिखा था, क्योंकि वह उसके अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति का वैसी संकट की दशा में विश्वास न कर सकता था। अधिकतर शाही सेवा में संलग्न रहने पर भी वह अपने राज्य की तरफ़ से कभी उदासीन न रहा और उधर के उपद्रवी सरदारों पर उसने कड़ी नज़र रक्खी।

महाराजा रायसिंह का व्यक्तित्व

शाही दरबार में उस समय जयपुर को छोड़कर बीकानेर से ऊंचा सम्मान अन्य किसी राज्य का न था। अकबर के राज्यकाल में तो रायसिंह का मनसब चार हज़ारी ही रहा, परन्तु सलीम के सिंहासनारूढ़ होने पर उसका मनसब बढ़कर पांच हज़ारी हो गया। उसके वीरता आदि गुणों पर विमुग्ध होकर अकबर ने उसे कई बार जागीरें आदि दी थीं, जिनमें से जूनागढ़, नागोर, शम्साबाद आदि का उल्लेख किया जा चुका है।

वह काव्य और साहित्य से भी बड़ा अनुराग रखता था। स्वयं कवि और विद्याव्यसनी होने के साथ ही वह काव्यानुरागियों का बड़ा

आदर करता और समय-समय पर उन्हें सहायता देकर प्रोत्साहन देता था। उसके आश्रय में रहकर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों और टीकाओं का निर्माण हुआ। उसने स्वयं 'रायसिंहमहोत्सव' और 'ज्योतिषरत्नमाला' की भाषा टीका की रचना की। बीकानेर दुर्ग के भीतर की उसकी खुदवाई हुई बृहत् प्रशस्ति इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व की है। वह बड़ा दानशील भी था। ख्यातों आदि में विवाह तथा अन्य अवसरों पर उसके चारणों आदि को सवा करोड़ पसाव तक देने का उल्लेख है।

उसको भवन निर्माण का भी बड़ा शौक था। बीकानेर का सुदृढ़ और विशाल किला उसकी आज्ञा से उसके मंत्री कर्मचंद ने बनवाया था। ख्यातों से पाया जाता है कि उसके बनवाने में पांच वर्ष का दीर्घ समय लगा था। रायसिंह स्वभाव का बड़ा नम्र, उदार और दयालु था। प्रजा के कष्टों की ओर भी उसका ध्यान सदैव बना रहता था। वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) के सर्वदेशव्यापी दुर्भिक्ष में राज्य की तरफ़ से तेरह महीने तक अन्नसत्र खुला रहा और क्षुधा एवं रोगग्रस्त प्रजाजनों के कष्ट दूर करने तथा उन्हें आराम पहुंचाने का हर एक प्रयत्न किया गया[1]। हिन्दू धर्म में उसकी आस्था अधिक होने पर भी वह इतर धर्मों का समादर करता था। उसका मंत्री कर्मचंद्र जैन धर्मावलम्बी था, जिसके उद्योग से उस (रायसिंह) के समय में अनेकों जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार

(१) आत्रयोदशमासं यः पंचत्रिंशेऽथ वत्सरे।
पवित्रं सत्रमारेभे दुर्भिक्षे सार्वदेशिके ॥ २९८ ॥

रोगग्रस्ताबलक्षीणजनानां यः कृपानिधिः।
पथ्यौषधप्रदानं च निर्ममस्तत्र निर्ममौ ॥ २९९ ॥

अतिसारामयग्रस्तान् त्रस्तान् क्रूरकरंभकैः।
प्रीणयामास पुण्यात्मा सर्वशालासु मानवान् ॥ ३०० ॥

(कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)।

हुआ[1]। प्रसिद्ध है कि जब तरसूंखां (तुरसमखां) ने सिरोही पर आक्रमण कर उसे लूटा, उस समय वहां के जैन मंदिरों से सर्वधातु की बनी हुई एक हज़ार जैन मूर्तियां वह अपने साथ ले गया। उनको गलवाकर उनमें से वह स्वर्ण निकालना चाहता था। यह बात ज्ञात होते ही महाराजा रायसिंह ने बादशाह से निवेदन कर वे सब मूर्तियां हस्तगत कर लीं और अपने मंत्री कर्मचंद्र के पास पहुंचा दीं, जिसने उनको बीकानेर के जैन मंदिर में रखवा दिया[2]। 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं' में उसे 'राजेन्द्र' कहा है और उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह विजित शत्रुओं के साथ भी बड़े सम्मान का व्यवहार करता था[3]।

महाराजा दलपतसिंह

ख्यातों से रायसिंह के ज्येष्ठ कुंवर दलपतसिंह का जन्म वि० सं० १६२१ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १५६५ ता० २४ जनवरी) को होना पाया जाता है[4]। अपने पिता की विद्यमानता में उसने जो-जो कार्य किये उनका वर्णन रायसिंह के साथ

जन्म

(१) शत्रुंजये मध्यपक्षे जीर्णोद्धारं चकार यः।
येनैतत्सदृशं पुण्यकारणं नास्ति किंचन ॥ ३१३ ॥
(कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)।

(२) ये मूर्तियां अब तक बीकानेर के एक जैन मंदिर के तहख़ाने में रक्खी हुई हैं और जब कभी कोई प्रसिद्ध जैन आचार्य आता है, तब उनका पूजन-अर्चन होता है। पूजन में अधिक व्यय होने के कारण ही वे पीछी तहख़ाने में रख दी जाती हैं।

(३) चतुःपर्वी समग्रोपि कारुलोको यदाज्ञया।
पालयामास राजेन्द्रराजसिंहस्य मंडले ॥ ३१८ ॥
या बंदी निजसैन्ये समागता वैरिविषयसंभूता।
वस्त्रान्नदानपूर्वं सा नीता येन निजगेहे ॥ ३२५ ॥
(कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्)।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३०।

यथास्थान कर दिया गया है।

दलपतसिंह के ज्येष्ठ होने पर भी अपनी भटियाणी राणी गंगा पर विशेष प्रेम होने के कारण रायसिंह की इच्छा थी कि उसके बाद उसका पुत्र सूरसिंह बीकानेर का स्वामी हो। अतएव उसने उस (सूरसिंह) को ही अपना उत्तराधिकारी नियत किया था। रायसिंह का दक्षिण में देहांत हो जाने पर दलपतसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठा। जहांगीर के सातवें राज्यवर्ष[1] की ता० १६ फ़रवरदीन (हि० स० १०२१ ता० ४ सफ़र=वि० सं० १६६६ चैत्र सुदि ६=ई० स० १६१२ ता० २८ मार्च) को वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, जिसने उसे राय का ख़िताब देकर ख़िलअत प्रदान की। सूरसिंह भी इस अवसर पर दरबार में उपस्थित था। उसने उद्दंड भाव से कहा कि मेरे पिता ने मुझे टीका दिया है और अपना उत्तराधिकारी बनाया है। जहांगीर इस वाक्य को सुनकर बड़ा रुष्ट हुआ और उसने कहा कि यदि तुझे तेरे पिता ने टीका दिया है तो मैं दलपतसिंह को टीका देता हूं। इसपर उसने अपने हाथ से दलपतसिंह के टीका लगाकर उसका पैतृक राज्य उसे सौंप दिया[2]।

जहांगीर का दलपतसिंह को टीका देना

कुछ दिनों बाद जब ठट्टा में एक अफ़सर भेजने की आवश्यकता हुई, तो बादशाह ने मिर्ज़ा रुस्तम[3] के मनसब में वृद्धि कर ता० २ शहरेवर

(१) वि० सं० १६६८ चैत्र वदि ४ से १६६६ चैत्र वदि १४ (ई० स० १६१२ ता० १० मार्च से ई० स० १६१३ ता० ६ मार्च) तक।

(२) तुज़ुक-इ-जहांगीरी— राजर्स-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २१७-८। उमरा-ए-हनूद; पृ० १६४। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६१-२। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १५२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८८।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में दलपतसिंह का वि० सं० १६६८ में पाट बैठना लिखा है (जि० २, पृ० १६६)।

(३) यह फ़ारस के बादशाह शाह इस्माइल के पौत्र मिर्ज़ा सुलतान हुसेन का पुत्र था, जो हि० स० १००१ (वि० सं० १६४६=ई० स० १५६२) में बादशाह अकबर की सेवा में प्रविष्ट हुआ। इसकी साम्राज्य के अमीरों में गणना होती थी और बड़े-बड़े

दलपतसिंह का ठट्ठा भेजा जाना

(हि० स० १०२१ ता० २६ जमादिउस्सानी = वि० सं० १६६६ भाद्रपद वदि १३ = ई० स० १६१२ ता० १४ अगस्त) को उसे वहां का हाकिम बनाकर भेजा। इस अवसर पर दलपतसिंह का मनसब भी बढ़ाकर डेढ़ हज़ारी से दो हज़ारी[1] कर दिया गया तथा बादशाह ने उसे भी मिर्ज़ा रुस्तम का सहायक बनाकर ठट्ठा भेजा[2]। 'उमराए हनूद' में लिखा है—'इस अवसर पर दलपतसिंह ठट्ठा जाने के बजाय सीधा बीकानेर चला गया[3]।' इससे बादशाह की उसपर फिर अप्रसन्नता हो गई और वह उसके विरुद्ध हो गया।

आसपास के भाटियों पर अधिक नियन्त्रण रखने के लिए दलपतसिंह ने चूड़ेहर (वर्त्तमान अनूपगढ़ के निकट) में एक गढ़ बनवाना

दलपतसिंह का चूड़ेहर में गढ़ बनवाने का असफल प्रयत्न

आरम्भ किया, परन्तु इस कार्य का भाटी बराबर विरोध करते रहे, जिससे वह कृतकार्य न हो सका। वि० सं० १६६६ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १६१२ ता० १ नवंबर) को भाटियों ने वहां का थाना भी उठवा दिया[4]।

कार्य इसे सौंपे जाते थे। हि० स० १०५१ (वि० सं० १६९८=ई० स० १६४१) में आगरे में इसका देहांत हुआ।

(१) अकबर के समय में इसका मनसब केवल पांच सौ था। संभव है बाद में बढ़कर डेढ़ हज़ारी हो गया हो, पर ऐसा कब हुआ इसका पता नहीं चलता।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा पृ० १५६। उमराए हनूद; पृ० १६४। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ३६२।

'तुज़ुक-इ-जहांगीरी' (राजर्स और बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० २२६) में 'ठट्ठा' के स्थान में 'पटना' लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद के मतानुसार 'पटना' पाठ अशुद्ध है, शुद्ध पाठ 'ठट्ठा' होना चाहिये।

(३) उमराए हनूद; पृ० १६४।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१।

रायसिंह ने सूरसिंह को ८४ गांवों के साथ फलोधी दी थी, जहां वह रहता था। दलपतसिंह ने अपने मुसाहब पुरोहित मानमहेश के कहने में आकर फलोधी के अतिरिक्त अन्य सब गांव खालसा कर लिये। अन्य लोगों ने इस सम्बन्ध में उसे बहुत समझाया, परन्तु उसके दिल में उनकी बात न जमी। तब सूरसिंह एक बार पुरोहित मानमहेश से मिला, परंतु वहां से भी जब उसे निराशा हुई तब वह दो मास बीकानेर ठहरकर फिर फलोधी चला गया, जहां से उसने पुरोहित लक्ष्मीदास को बादशाह की सेवा में भेजा[1]।

दलपतसिंह का सूरसिंह की जागीर ज़ब्त करना

जिन दिनों सूरसिंह बीकानेर में था उन दिनों उसकी माता ने सोरम (सोरों) की यात्रा करने की इच्छा प्रकट की थी, अतएव चार मास फलोधी में रहने के उपरान्त वह फिर बीकानेर गया और वहां से अपनी माता को साथ ले उसने सोरम तीर्थ की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में वह सांगानेर में ठहरा जहां कछवाहे राजा मानसिंह से उसका मिलना हुआ। चार दिन बाद मानसिंह तो आमेर चला गया और सूरसिंह अपनी माता सहित सीधा सोरों पहुंचा। उसी स्थान पर उसके पास बादशाह का फ़रमान पहुंचा, जिसके अनुसार वह दिल्ली गया जहां बादशाह ने बीकानेर का राज्य उसे दे दिया तथा दलपतसिंह को गद्दी से हटाने के लिए नवाब आबदीनखां (ज़ियाउद्दीनखां) एक विशाल सैन्य के साथ उसकी सहायता को भेजा गया[2]।

जहांगीर का सूरसिंह को बीकानेर का मनसब देना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४-५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१।

'तुज़ुक इ-जहांगीरी' में इसका उल्लेख नहीं है।

सूरसिंह के शाही फ़ौज के साथ आने पर दलपतसिंह भी अपनी सेना सहित छापर में आया। दोनों दलों में युद्ध होने पर जावदीन(ज़ियाउद्दीन)खां भाग गया और दलपतसिंह की विजय हुई। तब जावदीन खां ने दिल्ली से और सहायता मंगवाई। इस अवसर पर सूरसिंह ने बड़े साहस और बुद्धिमत्ता से कार्य लिया। उसने दलपतसिंह के प्रायः सभी सरदारों को, जो उसके दुर्व्यवहार के कारण पहले से ही असन्तुष्ट थे, अपनी तरफ़ मिला लिया। केवल ठाकुरसी जीवणदासोत, जो उस समय दलपतसिंह की ओर से भटनेर का शासक था, उसका पक्षपाती बना रहा। दूसरे दिन लड़ाई छिड़ने पर दलपतसिंह हाथी पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में आया। उस समय उसके पीछे खवासी में चूरू का ठाकुर भीमसिंह बलभद्रोत बैठा था। सेनाओं की मुठभेड़ होते ही विरोधी सरदारों ने इशारा किया, जिसपर भीमसिंह ने पीछे से दलपतसिंह के हाथ पकड़ लिये। फिर वह (दलपतसिंह) क़ैद कर हिसार भेजा गया, जहां से अजमेर पहुंचाया जाकर बन्दी कर दिया गया[1]।

दलपतसिंह का हारना और क़ैद होना

'तुज़ुक-इ-जहांगीरी' में लिखा है कि आठ वें राज्यवर्ष[2] में हि० स० १०२२ ता० ११ रजब (वि० सं० १६७० भाद्रपद सुदि १३=ई० स० १६१३ ता० १८ अगस्त) को बादशाह के पास सूरसिंह द्वारा, जिसे उसने विद्रोही दलपतसिंह को हटाने के लिए नियुक्त किया था, उस(दलपतसिंह)के हराये जाने का समाचार पहुंचा। फिर दलपतसिंह ने हिसार की सरकार में उपद्रव करना शुरू किया, जिससे खोस्त के हाशिम एवं अन्य जागीरदारों ने उसे गिरफ़्तार करके बादशाह की सेवा में भेज दिया। दलपतसिंह के साम्राज्य-

जहांगीर-द्वारा दलपतसिंह का मरवाया जाना

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३४-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८६-६०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१।

(२) वि० सं० १६६६ चैत्र वदि अमावास्या से वि० सं० १६७१ चैत्र सुदि १० (ई० स० १६१३ ता० ११ मार्च से ई० स० १६१४ ता० १० मार्च) तक।

विरोधी आचरण से बादशाह पहले से ही उसपर कुपित था, अतएव उसे मृत्यु-दंड दे दिया गया। सूरसिंह की सेवाओं के बदले में उसका मनसब पहले से पांच सौ अधिक कर दिया गया[1]।

ख्यातें और दलपतसिंह की मृत्यु

दलपतसिंह की मृत्यु के विषय में ख्यातों में यह लिखा है कि हिसार से अजमेर भेजे जाने पर दलपतसिंह वहां पर ही (आनासागर के बंद के नीचे के जहांगीरी महलों में) सौ सैनिकों के निरीक्षण में क़ैद कर दिया गया। उन्हीं दिनों अपनी ससुराल को जाता हुआ चांपावत हाथीसिंह (गोपालदासोत) दलपतसिंह के बन्दीगृह के निकट ठहरा। दलपतसिंह ने उससे मिलने की अभिलाषा प्रकट की, परन्तु चोबदारों ने आज्ञा न दी। तब हाथीसिंह ने कहा कि मैं ससुराल से लौटते समय अवश्य मिलूंगा। इसपर दलपतसिंह ने कहा कि मैं उस समय तक जीवित रहूंगा इसमें मुझे सन्देह है। तब तो हाथीसिंह ने अपने राठोड़ों से सलाह की कि जीवन-सार्थक करने का ऐसा अवसर फिर न जाने कब आवे। हम भी राठोड़ हैं और यह भी राठोड़, अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम इसके लिए प्राण दे दें। ऐसा विचार कर वि० सं० १६७० फाल्गुन वदि ११ (ई० स० १६१४ ता० २५ जनवरी) को केसरिया बाना पहनकर वे सब दलपतसिंह के रक्षकों पर टूट पड़े और उन्हें मारकर उसे निकाल अपने साथ ले चले। जब अजमेर के सूबेदार को इस घटना की ख़बर मिली तो उसने चार हज़ार फ़ौज के साथ उनको घेर लिया। फलस्वरूप दलपतसिंह, हाथीसिंह[2]

(१) जि० १, पृ० २५८-६। उमराए हनूद (पृ० ११४) में भी ऐसा ही लिखा है।

अपने ८ वें राज्यवर्ष ता० २ बहमन (हि० स० १०२२ ता० १० जिलहिज = वि० सं० १६७० माघ सुदि ११ = ई० स० १६१४ ता० ११ जनवरी) के फ़रमान में जहांगीर ने दलपत की पराजय और सूरसिंह की वीरता का उल्लेख किया है।

(२) इस ख़ैरख़्वाही के बदले में हरसोलाव (मारवाड़) के ठाकुर बीकानेर में सूरजपोल तक घोड़े पर सवार होकर जा सकते हैं। दूसरे सरदार, जिनको सवारी पर बैठकर भीतर आने की इज़्ज़त नहीं है, क़िले के बाहर ही घोड़े से उतर जाते हैं।

आदि सब राठोड़ मारे गये। दलपतसिंह के मारे जाने की सूचना भटनेर पहुंचने पर उसकी छः राणियां सती हो गई[1]।

महाराजा सूरसिंह

जन्म और गद्दीनशीनी

महाराजा रायसिंह के दूसरे कुंवर सूरसिंह का जन्म वि० सं० १६५१ पौष वदि १२ (ई० स० १५९४ ता० २८ नवंबर) को होना ख्यातों से पाया जाता है[2]। बादशाह (जहांगीर) की आज्ञा से अपने बड़े भाई दलपतसिंह को परास्त कर वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा[3]।

कर्मचन्द्र के पुत्रों को मरवाना

अनन्तर सूरसिंह दिल्ली गया, जहां बादशाह ने उसके मनसब में वृद्धि की। कर्मचन्द्र के वंशज लक्ष्मीचन्द्र, भागचन्द्र (सोभागचन्द्र) आदि उस समय दिल्ली में ही थे; उनकी बहुत खातिर कर वहां से लौटते समय सूरसिंह उन्हें अपने संग बीकानेर ले गया और दीवान के पद पर नियुक्त

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०-१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३१-२।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी भटनेर समाचार पहुंचने पर दलपतसिंह की ६ राणियों का सती होना लिखा है (जि० २, पृ० १९९)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३२।

चंडू के यहां से मिले हुए प्राचीन जन्मपत्रियों के संग्रह में भी यही समय दिया है।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३२।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी सूरसिंह का वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में बीकानेर का स्वामी होना लिखा है (जि० २, पृ० १९९)।

'तुज़ुक-इ-जहांगीरी' से भी पाया जाता है कि वि० सं० १६७० में सूरसिंह ने दलपतसिंह को परास्त किया, जिसकी सूचना बादशाह के पास हि० स० १०२२

कर दिया। मरते समय कर्मचन्द्र ने अपने पुत्रों का सूरसिंह की तरफ़ से सचेत कर दिया था, परन्तु वे उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में फंस गये। सूरसिंह को अपने पिता के अन्त समय की हुई अपनी प्रतिज्ञा याद थी। अतएव दो मास बीतने पर चार हज़ार सैनिक भेजकर उसने उनके मकानों को घेर लिया। लक्ष्मीचन्द्र तथा भागचंद के पास उस समय ५०० राजपूत थे। जब उन्होंने देखा कि अब बचकर निकल जाना कठिन है, तो अपने परिवार की स्त्रियों को मारकर तथा अपनी सम्पत्ति नष्टकर वे अपने ५०० राजपूतों सहित बीकानेर के सैनिकों पर टूट पड़े और वीरता-पूर्वक लड़ते हुए मारे गये। केवल उनके वंश का एक बालक, जो उन दिनों अपनी ननिहाल (उदयपुर) में था, बच गया, जिसके वंशज[1] उदयपुर में अब तक विद्यमान हैं[2]।

फिर सूरसिंह ने उसी वर्ष पुरोहित मान महेश[3] और बारहट चौथ[4] की जागीरें ज़ब्त कर लीं। इसका विरोध करने के लिए वे बीकानेर गये, परन्तु जब कुछ सुनवाई नहीं हुई, तो दोनों चिता लगाकर जल मरे। उसी दिन से तोलियासर के पुरोहितों से 'पुरोहिताई' तथा बारहटों से 'पोल-पात' और उनके 'नेग' का हक़ जाता रहा एवं उनके स्थान में डांडसर के चारण को वह हक़ मिलने लगा। पिता के विरुद्ध विद्रोह करनेवालों में से सारण भरथा (जाट) बच रहा था उसे भी उसने द्रोणपुर के

पिता के साथ विश्वासघात करनेवालों को मरवाना

ता० ११ रजब (वि० सं० १६७० भाद्रपद सुदि १२ = ई० स० १६१३ ता० १७ अगस्त) को पहुंची, तब सूरसिंह का मनसब बढ़ाया गया (जि० १, पृ० २५८-६)।

(१) इनके विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास;' जि० २, पृ० १३११-२३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८१-२।

(३-४) ये दोनों भी रायसिंह के विरुद्ध किये हुए षड्यन्त्र में कर्मचन्द्र के सहायक थे।

गोपालदास सांगावत[1] के हाथ से मरवा डाला[2]। इस प्रकार अपने पिता के विरोधियों को उपयुक्त दंड दे, सूरसिंह ने उसकी मृत्यु-शैय्या के निकट की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

दयालदास लिखता है कि जब शाहज़ादा खुर्रम[3] बागी होकर दिल्ली से निकल गया और दक्षिण के सूबों में उसके उपद्रव करने का समाचार

---

(१) ठाकुर बहादुरसिंह की लिखी हुई बीदावतों की ख्यात में भी लिखा है कि सारण भरथा एवं ईसर को मारने के लिए गोपालदास की नियुक्ति हुई थी। गोपालदास बीदा के वंश के संसारचन्द के पुत्र सांगा का तीसरा पुत्र था। बाद में यही द्रोणपुर का स्वामी हुआ (भाग १, पृ० १३६)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३३।

(३) शाहज़ादा खुर्रम जहांगीर का बड़ा ही प्रिय पुत्र था, जिसकी उसने बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। उसको वह अपना उत्तराधिकारी भी बनाना चाहता था, परन्तु बादशाह अपने राज्य के पिछले वर्षों में अपनी प्यारी बेगम नूरजहां के हाथ की कठपुतली सा हो गया था, जिससे वह जो चाहती वही उससे करा लेती थी। नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़गन से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहज़ादे शहरयार से किया था, जिसको वह जहांगीर के पीछे बादशाह बनाना चाहती थी। इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए वह खुर्रम के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगी और उसने उसको हिन्दुस्तान से दूर भिजवाना चाहा। उन्हीं दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार का क़िला अपने अधीन कर लिया था, जिसको पीछा विजय करने के लिए नूरजहां ने खुर्रम को भेजने की सम्मति बादशाह को दी। तदनुसार बादशाह ने उसको बुरहानपुर से कंधार जाने की आज्ञा दी। शाहज़ादा भी नूरजहां के प्रपंच को जान गया था, जिससे उसने वहां जाना न चाहा। वह समझ गया था कि यदि हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा और हिन्दुस्तान का कोई भी प्रदेश मेरे हाथ में न रहा, तो मेरा प्रभाव इस देश में कुछ भी न रहेगा। वह बादशाह की आज्ञा न मानकर वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में उसका विद्रोही बन गया और दक्षिण से मांडू जाकर सैन्य सहित आगरे की ओर बढ़ा, जहां के अमीरों की सम्पत्ति छीनता हुआ वह मथुरा की तरफ़ गया। फिर आगे बढ़ने पर वह बिलोचपुर की लड़ाई में शाही सेना से हारा और भागते समय आंबेर के पास पहुंचकर उसने उसे लूटा। फिर वहां से वह उदयपुर में महाराणा कर्णसिंह के पास गया, क्योंकि उन दोनों में परस्पर स्नेह था।

सूरसिंह का खुर्रम पर भेजा जाना

बादशाह के पास पहुंचा तो उस (बादशाह) ने सूरसिंह को फ़ौज के साथ उसपर भेजा। खुर्रम ने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था, अतएव उससे कई लड़ाइयां कर सूरसिंह ने वहां बादशाह का सिक्का जमाया[1]।

'मश्रासिरुल् उमरा' (हिन्दी) से पाया जाता है कि बादशाह जहांगीर के समय सूरसिंह का मनसब तीन हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार तक पहुंच गया[2]। हि० स० १०३७ ता० २८ सफ़र (वि० सं० १६८४ कार्तिक वदि अमावास्या = ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर) को जहांगीर का काश्मीर से लाहौर

सूरसिंह के मनसब में वृद्धि

कुछ समय तक वहां रहकर मेवाड़ के सेनाध्यक्ष कुंवर भीमसिंह के साथ वह बड़ी सादड़ी में होता हुआ मांडू पहुंचा। फिर मांडू से नर्मदा को पारकर असीरगढ़ और बुरहानपुर होता हुआ गोलकुंडे के मार्ग से उड़ीसा और बंगाल में पहुंचा। वहां ढाका और अकबरनगर आदि की लड़ाइयों में विजय पाकर उसने बंगाल पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने बिहार, अवध और इलाहाबाद को जीतने का विचार कर भीमसिंह को पटना पर भेजा, जहां का शासक परवेज़ की तरफ़ से दीवान मुख़लिसख़ां था। भीमसिंह के वहां पहुंचते ही वह बिना लड़े ही पटना छोड़कर इलाहाबाद की तरफ़ भाग गया और क़िले पर भीमसिंह का अधिकार हो गया। वहां से खुर्रम ने उसको अब्दुल्लाख़ां के साथ इलाहाबाद की ओर भेजा और स्वयं भी उसके पीछे गया। उसने टोंस नदी के किनारे कम्पत के पास डेरा डाला। उधर से शाहज़ादे परवेज़ की अध्यक्षता में शाही सेना लड़ने को आई। वहां लड़ाई हुई, जिसमें भीमसिंह के वीरतापूर्वक प्राणोत्सर्ग कर चुकने पर खुर्रम हारकर पटना होता हुआ दक्षिण को लौट गया।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३७।

'वीरविनोद' में भी लिखा है कि जब बाग़ी खुर्रम और उसके भाई परवेज़ का मुक़ाबला हुआ, उस समय सूरसिंह भी शाही सेना के साथ था (भाग २, पृ० ४१२), परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों में सूरसिंह का उल्लेख नहीं मिलता।

(२) व्रजरत्नदास; मश्रासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४२६।

मुंशी देवीप्रसाद ने 'जहांगीरनामे' के प्रारम्भ में दी हुई मनसबदारों की सूची में सूरसिंह का मनसब दो हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार दिया है (पृ० १६)।

आते हुए देहांत हो गया[1]। शाहज़ादे खुर्रम को इसका पता मिलते ही वह दक्षिण से आगरे आकर शाहजहां नाम धारण कर तख़्त पर बैठ गया। उस समय उसने बहुत से रुपये बांटे और अपने अफ़सरों के मनसबों में वृद्धि की। इस अवसर पर सूरसिंह (बीकानेरी) का मनसब बढ़ाकर चार हज़ार ज़ात और ढाई हज़ार सवार कर दिया गया तथा उसे हाथी, घोड़ा, नक्कारा, निशान आदि मिले[2]।

सूरसिंह का काबुल भेजा जाना

उसी वर्ष बुख़ारे के इमाम कुलीख़ां के भाई नज़र मुहम्मदख़ां ने काबुल पर चढ़ाई की। मार्ग में ज़ुहाक़ के क़िलेदार खंजरख़ां ने उसे परास्त किया, परन्तु इससे वह अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ और ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १६२८ ता० १० मई) को उसने काबुल पर घेरा डाल दिया। जब बादशाह के पास इसकी सूचना पहुंची तो उसने २०००० सवारों के साथ सूरसिंह, राव रतन हाड़ा[3], राजा जयसिंह[4], महाबतख़ां ख़ानख़ाना[5] और मोतमिदख़ां को उस (नज़र मुहम्मदख़ां) के मुक़ाबले पर भेजा, परन्तु उनके वहां पहुंचने से पूर्व ही, वि० सं० १६८५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १६२८ ता० २६ अगस्त) शुक्रवार को काबुल के सूबेदार लश्करख़ां ने आक्रमण कर नज़र मुहम्मदख़ां को भगा दिया। तब

(१) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५१६।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १; पृ० ६।

(३) बूंदी का स्वामी।

(४) कछवाहे राजा मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह के बेटे राजा महासिंह का पुत्र, जिसे मिर्ज़ा राजा जयसिंह भी कहते थे।

(५) इसका वास्तविक नाम ज़मानाबेग था और यह काबुल के निवासी ग़ोरबेग का पुत्र था। अकबर के समय में इसका मनसब केवल ५०० था, पर जहांगीर के समय इसको उच्चतम सम्मान प्राप्त था। शाहजहां के राज्यकाल में भी यह उसी पद पर बहाल रहा। इसकी मृत्यु हि० स० १०४४ (वि० सं० १६९१ = ई० स० १६३४) में दक्षिण में हुई।

बादशाह ने सूरसिंह, महाबतख़ां आदि को वापस बुला लिया[1]।

शाहजहां के गद्दी पर बैठने पर जुझारसिंह बुंदेला भी उसकी सेवा में उपस्थित हुआ था पर बीच में वह बिना आज्ञा प्राप्त किये ही फिर अपने देश चला गया। ओरछा में पहुंचने पर उसने युद्ध की तैयारी की। बादशाह को जब इसकी ख़बर लगी तो उसने एक बड़ी फ़ौज देकर

सूरसिंह का ओरछे पर जाना

महाबतख़ां को सैयद मुज़फ़्फ़रख़ां, दिलावरख़ां[2], राजा रामदास नरवरी[3], भगवानदास बुंदेला आदि के साथ उसपर भेजा। मालवे के सूबेदार ख़ान-जहां लोदी को भी राजा विट्ठलदास गौड़[4], अनीराय सिंहदलन[5],

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १४-८। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४४६। उमराए हनूद; पृ० २४७।

(२) शाहजहां के दरबार का अमीर—बहादुरख़ां रुहेले का पुत्र।

(३) दसवीं शताब्दी में नरवर तथा ग्वालियर पर कछवाहों का राज्य था। फिर वहां पड़िहारों का राज्य हुआ, जिनसे शाह अल्तमश ने उसे ले लिया। तैमूर की चढ़ाई के समय वहां तंवरों ने अधिकार कर लिया। ई० स० १४०७ (वि० सं० १४६४) के आसपास सिकंदर लोदी ने नरवर का दुर्ग जीत लिया फिर कछवाहों को दे दिया, जिनका वहां मुग़लों के समय में भी अधिकार था।

(४) राजा गोपालदास गौड़ का पुत्र।

(५) अनीराय बड़गूजर वंश का राजपूत था। उसके पूर्वज ज़मींदार थे, परन्तु उसका दादा ग़रीब हो जाने के कारण, बहुधा हरिणों को मार-मार कर उनके मांस से अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। एक दिन शिकार के समय उसने धोखे में बादशाह अकबर का शिकारी चीता मार डाला। इसका पता लगने पर शाही शिकारी उसको पकड़कर बादशाह के पास ले गये। बादशाह के पूछने पर जब उसने सारा हाल सच-सच निवेदन कर दिया, तो बादशाह ने उसकी हिम्मत और निशाना लगाने की कुशलता से प्रसन्न होकर उसे अपनी सेवा में रख लिया और शिकार में अधिक रुचि होने के कारण उसको उचित पद पर नियत किया। उसका पुत्र वीरनारायण हुआ। वीरनारायण का पुत्र अनूपसिंह था, जो पीछे से 'अनीराय सिंहदलन' के ख़िताब से प्रसिद्ध हुआ। अकबर के अंतिम दिनों में वह ख़वासों का अफ़सर बनाया गया। जहांगीर के समय कुछ काल तक वह उसी पद पर नियत रहा। अपने

राज्य के पांचवें वर्ष (वि० सं० १६६७ = ई० स० १६१०) में एक दिन बादशाह जहांगीर बाड़ी के परगने में चीतों का शिकार करने में लगा हुआ था । वहां कुछ दूर पर चीतों को एक वृक्ष पर बैठे हुए देखकर धनुष तथा बिना फलवाले तीर लेकर अनूपसिंह उधर बढ़ा । उस वृक्ष के निकट आधा खाया हुआ बैल उसे नज़र आया । समीप ही झाड़ी में से एक बड़ा और प्रबल शेर निकला । यद्यपि सन्ध्या होने में कुछ ही समय शेष था तथापि उसने और उसके साथियों ने शेर को घेरकर इसकी ख़बर बादशाह को दी । जहांगीर तुरन्त घोड़े पर सवार होकर उधर गया और बाबा ख़ुर्रम, रामदास, एतमादराय, हयातख़ां तथा एक-दो और आदमी उसके साथ चले । शेर वृक्ष की छाया में बैठा था । उसने घोड़े से उतरकर शेर पर निशाना लगाया । दो बार निशाना लगाने पर भी शेर मरा नहीं वरन् एक शिकारी को घायल कर फिर अपनी जगह जा बैठा । तीसरी बार बादशाह बन्दूक़ चलानेवाला ही था कि इतने में गर्जना करता हुआ शेर उसपर झपटा । उसने बन्दूक़ चलाई तो गोली शेर के मुंह और दांतों में होकर निकल गई, लेकिन बन्दूक़ की आवाज़ से वह और भी क्रुद्ध हो गया । बहुत से सेवक, जो वहां थे, डरकर एक दूसरे पर गिर गये । स्वयं बादशाह उनके धक्के से दो-क़दम पीछे जा गिरा । दो-तीन आदमी तो उसकी छाती पर पांव रखकर ऊपर से निकल गये । ऐसी दशा में अनूपसिंह शेर के सामने गया तो वह फुर्ती से उसपर लपका । उस पुरुषसिंह ने वीरता से सामने जाकर दोनों हाथों से एक लाठी उसके सिर पर मारी । शेर ने मुंह फाड़कर उसके दोनों हाथ चबा डाले, परन्तु उसके हाथ में लाठी और कड़े होने से उसे बड़ा सहारा मिला और उसके हाथ बेकार न हुए । अनूपराय ने बल से अपने हाथ उसके मुख से छुड़ाकर उसके जबड़े पर दो-तीन घूंसे मारे और करवट लेकर वह घुटने के बल उठ खड़ा हुआ । शेर के दांत उसके हाथों के आर-पार हो गये थे, इसलिए उसके मुंह से खींचते समय वे फट गये । शेर के पंजे उसके दोनों कन्धों पर लग गये थे । जब वह खड़ा हुआ, तो शेर भी खड़ा हो गया और उसने अपने पंजों से उसकी छाती में प्रहार किया । ज़मीन ऊंची-नीची होने से वे दोनों कुश्ती लड़ते हुए पहलवानों की तरह लुढ़कते हुए, एक दूसरे के ऊपर-नीचे होते गये । शेर उसको जब छोड़कर भागने लगा तो अनूपसिंह खड़ा होकर उसके पीछे दौड़ा और उसने उसके सिर में तलवार का प्रहार किया । जब शेर ने उसकी ओर मुंह किया तो उसने अपनी तलवार का दूसरा वार उसके मुंह पर किया, जिससे उसकी आंखों पर की चमड़ी लटक गई । इसी बीच दूसरे लोगों ने आकर शेर को मार डाला । बादशाह अनूपसिंह के वीरतापूर्ण कार्य और स्वामिभक्ति से बहुत प्रसन्न हुआ और उसके अच्छे होने पर उसने उसे 'अनीराय सिंहदलन' के ख़िताब से सम्मानित किया तथा उसको अपनी तलवारों में से एक ख़ासा तलवार बख़्शी और

राजा गिरधर[1], राजा भारत[2] आदि के साथ जुझारसिंह पर जाने को लिखा गया। इधर कन्नौज के सूबेदार अब्दुल्लाखां को भी पूरब की तरफ़ से ओरछा जाने की आज्ञा हुई। इस फ़ौज के साथ सूरसिंह, बहादुरखां रुहेला, पहाड़सिंह बुंदेला[3], किशनसिंह भदोरिया[4] तथा आसफ़खां[5] भी थे। तीन ओर से आक्रमण होने पर जुझारसिंह ने तंग आकर महाबतखां की मारफ़त माफ़ी मांग ली और वह दरबार में हाज़िर हो गया[6]।

वि० सं० १६८६ कार्तिक वदि १२ (ई० स० १६२६ ता० ३ अक्टोबर) शनिवार की रात को खानजहां लोदी[7] आगरे से भाग गया। तब बादशाह

उसका मनसब बढ़ाया। पुष्कर में वराहघाट के सामनेवाले तट की तरफ़, वर्तमान श्मशानों के निकट बना हुआ जहांगीरी महल, जो अब खंडहर के रूप में है, अनीराय की अध्यक्षता में ही बना था। पन्द्रहवें राज्यवर्ष में बंगश की चढ़ाई में महाबतखां की सिफारिश से बादशाह ने उसको सेनापति नियत किया। वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में वह कांगड़े का हाकिम नियत किया गया। शाहजहां के राज्य-समय उसके पिता वीरनारायण के मरने पर अनीराय को राजा का ख़िताब मिला और उसका मनसब तीन हज़ारी ज़ात व डेढ़ हज़ार सवार का हो गया। वि० सं० १६६३ (ई० स० १६३६) में उसका देहांत हुआ। उसका पुत्र जयराम था।

(१) राजा रायसल दरबारी का ज्येष्ठ पुत्र।

(२) राजा मधुकर के पुत्र राजा रामचन्द्र का पौत्र।

(३) बुंदेले राजा वीरसिंहदेव का पुत्र।

(४) आगरे से तीन कोस पर एक स्थान भदावर है, जहां के रहनेवाले चौहान इस पदवी से प्रसिद्ध हैं।

(५) यह नूरजहां बेगम का भाई तथा शाहजहां का श्वसुर था।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १५-२०। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४५६।

(७) इसका ठीक-ठीक वंश-परिचय ज्ञात नहीं होता। जहांगीर के राज्यकाल में इसे पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था।

सूरसिंह का खानजहां पर भेजा जाना

ने सूरसिंह, राजा विट्ठलदास गौड़, राजा भारत बुंदेला, माधोसिंह हाड़ा[1], पृथ्वीराज राठोड़, राजा बीरनारायण[2], राय हरचंद पड़िहार आदि के साथ ख्वाजा अब्दुलहसन को फ़ौज देकर उसके पीछे भेजा। धौलपुर में उन्होंने उसे जा घेरा। पहले तो कुछ देर तक खानजहां ने लड़ाई की, पर अंत में वह भाग गया और जुझारसिंह बुंदेले के मुल्क में पहुंचने पर उस (जुझारसिंह) के बेटे ने उसे गुप्तमार्ग से बाहर निकाल दिया, जहां से वह निज़ामुल्मुल्क के पास पहुंच गया[3]। तब बादशाह ने अपनी फ़ौज को वापस बुला लिया।

उसी वर्ष चैत्र वदि ६ (ई० स० १६३० ता० २२ फ़रवरी) को शाहजहां ने अलग-अलग तीन फ़ौजें खानजहां लोदी पर भेजीं। एक फ़ौज का संचालन दक्षिण के सूबेदार इरादतखां के हाथ में था, दूसरी महाराजा गजसिंह[4] की मातहती में थी और तीसरी में अन्य अफ़सरों के अतिरिक्त सूरसिंह भी था।

सूरसिंह का खानजहां पर दूसरी बार भेजा जाना

कुछ दिनों बाद राजोरी नामक स्थान में खानजहां से इन फ़ौजों का सामना हुआ। उस समय शाही फ़ौज का हरावल राजा जयसिंह[5] था। उसके प्रबल आक्रमण से खानजहां हारकर भाग निकला। इस अवसर पर कुछ लोग तो लूट-मार में लग गये, परन्तु शेष ने उसका पीछा किया, जिसपर खानजहां ने पलटकर युद्ध किया, पर सूरसिंह आदि के आक्रमण के आगे वह ठहर न सका और भाग गया[6]।

---

(१) राव रत्नसिंह हाड़ा का दूसरा पुत्र।

(२) राजा अनूपसिंह बड़गूजर (अनीराय सिंहदलन) का पिता।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० २३-६। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४४६।

(४) जोधपुर के राजा सूरसिंह का पुत्र।

(५) राजा महासिंह कछवाहे का पुत्र।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० २७-४०।

ख्यातों से पाया जाता है कि सूरसिंह की एक भतीजी (रामसिंह की पुत्री) का विवाह जैसलमेर के रावल हरराज के पुत्र भीमसिंह[1] के साथ हुआ था। भीमसिंह की मृत्यु होने पर जैसलमेर के सरदारों ने उसके पुत्र को मारने का निश्चय किया। तब रानी ने अपने चाचा सूरसिंह से कहलाया कि मेरे पुत्र की रक्षा करो। इसपर सूरसिंह ने एक हज़ार राजपूतों के साथ जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया, परन्तु मार्ग में लाठी गांव के पास उसे बालक की हत्या किये जाने का समाचार मिला। जैसलमेरवालों के इस नृशंस कार्य से उसका दिल उनसे हट गया और उसने प्रतिज्ञा की कि बीकानेर की किसी भी राजकुमारी का विवाह जैसलमेर में नहीं किया जायगा[2]। बीकानेर में इस प्रतिज्ञा का पालन अबतक होता है।

सूरसिंह का जैसलमेर में राजकुमारी न ब्याहने की प्रतिज्ञा करना

रायसिंह ने अपने जीवनकाल में शाही दरबार में जो सम्मानित स्थान अपनी वीरता के कारण प्राप्त किया था, उसे दलपतसिंह ने अपने अनुचित आचरण से थोड़े समय में खो दिया। इसपर जहांगीर ने उस (दलपतसिंह) के छोटे भाई सूरसिंह को बीकानेर का राज्य सौंपा, जिसने अपने गुणों के कारण क्रमशः शाही दरबार में अपने पिता के जैसा ही सम्मान प्राप्त कर लिया। जहांगीर और शाहजहां के समय के उसके नाम के

सूरसिंह और उसके नाम के शाही फ़रमान

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भीमसिंह का देहांत वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१६) में होना लिखा है (जि० २, पृ० ४४१)। अतएव यह घटना इस समय के कुछ ही बाद हुई होगी।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४।

जैसलमेर की तवारीख़ (पृ० ४४) में भीमसिंह का राज्यकाल ग़लत दिया है। साथ ही इस घटना का उल्लेख भी दूसरे प्रकार से है। उसमें सूरसिंह की भतीजी के पुत्र का फलोधी में चेचक अथवा ज़हर से मरना लिखा है। उपर्युक्त तवारीख़ में भतीजी के स्थान पर बहन लिखा है।

लगभग ५१ फ़रमान तथा निशान मिले हैं। सन् जलूस ११ ता० २ अमरदाद (हि० स० १०२५ ता० ६ रज्जब = वि० सं० १६७३ श्रावण सुदि १०=ई० स० १६१६ ता० १४ जुलाई) के जहांगीर के समय के शाहज़ादा खुर्रम की मुहर के निशान में सूरसिंह को राजा के ख़िताब से सम्बोधित किया है, जिससे स्पष्ट है कि इसके पूर्व ही बीकानेरवालों को शाही दरबार से भी राजा का ख़िताब मिल गया होगा। आगे चलकर तो फिर कई फ़रमानों में उसे राजा लिखा है। हि० स० १०२६ ता० १५ ज़िलहिज (वि० सं० १६७४ पौष वदि २=ई० स० १६१७ ता० ४ दिसंबर) के निशान में शाहज़ादे खुर्रम ने उसे 'उच्चकुल के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ' लिखा है। नूरजहां की मुहर का भी एक फ़रमान है, जिसमें उसे राजा ही लिखा है[1]। अब हम यहां सूरसिंह से सम्बन्ध रखनेवाली उन घटनाओं का उल्लेख करेंगे, जिनका तवारीख़ों अथवा ख्यातों में कोई वर्णन नहीं है, परन्तु जिनपर इन फ़रमानों-द्वारा काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

(१) वि० सं० १६७१-७२ (ई० स० १६१४-१५) में नरवर के किसानों पर अत्याचार करके रघुनाथ, सुदर्शन, गोकुलदास, भगवान, कबी पठान तथा हुसेन क़ायमख़ानी ने वहां के ५२ गांवों पर अधिकार कर लिया और वे लूटमार करने लगे। जब बादशाह जहांगीर के पास इसकी शिकायत हुई, तो उसने फ़रमान भेजकर सूरसिंह को इस विषय की जांच करने के लिए और घटना के सत्य सिद्ध होने पर उपर्युक्त व्यक्तियों को कठोर दंड देने के लिए नियुक्त किया[2]। प्रायः दो मास बाद ही विद्रोहियों का साहस इतना बढ़ा कि उन्होंने शाही ख़ज़ाने पर भी हाथ साफ़ किया और लूणियां के निवासियों को लूटा। तब बादशाह ने हाशिम बेग चिश्ती को

---

(१) सन् जुलूस २१ ता० ११ आबान (हि० स० १०३६ ता० १३ सफ़र = वि० सं० १६८३ कार्तिक सुदि १५ = ई० स० १६२६ ता० २४ अक्टोबर) का फ़रमान।

(२) सन् जुलूस ९ ता० १ ख़ुरदाद (हि० स० १०२३ ता० १२ रबी-उस्सानी = वि० सं० १६७१ प्रथम ज्येष्ठ सुदि १४ = ई० स० १६१४ ता० १२ मई) का फ़रमान।

उनका दमन करने के लिए नियुक्त किया और फ़रमान भेजकर सूरसिंह को भी उसके साथ कार्य करने का आदेश किया[1]। उन्हीं दिनों बाग़ी और लुटेरा चन्द्रभान, केशू (बिलोच) के हाथ से दंड पाने पर सूरसिंह की जागीर में चला गया। तब बादशाह ने उसे ज़िन्दा अथवा मुर्दा गिरफ़्तार करने के लिए सूरसिंह को उसपर सेना भेजने को लिखा[2]। सन् जुलूस ६ ता० ६ बहमन (हि० स० १०२३ ता० २८ जिलहिज = वि० सं० १६७१ माघ वदि अमावास्या = ई० स० १६१५ ता० १६ जनवरी) को बादशाह ने फ़रमान भेजकर सूरसिंह को दरबार में बुलवा लिया।

(२) वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) में बादशाह के पास किरकी की विजय का समाचार पहुंचा। इस स्थल पर सूरसिंह और दाराबख़ां भेजे गये थे और इस युद्ध में सूरसिंह ने बड़ी वीरता एवं सच्ची राज्यभक्ति का परिचय दिया[3]।

(३) वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में सूरसिंह की नियुक्ति आमेर के निकट जालनापुर के थाने पर कर दी गई[4]।

(४) वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में आसकर्ण, केशोदास तथा भटनेर के अन्य कांधलोत तथा जोइयों ने मिलकर सिरसा पर धावा

---

(१) सन् जुलूस ६ ता० ५ अमरदाद (हि० स० १०२३ ता० २० जमादि-उस्सानी = वि० सं० १६७१ श्रावण वदि द्वितीय ७ = ई० स० १६१४ ता० १८ जुलाई) का फ़रमान।

(२) सन् जुलूस ६ ता० ३१ अमरदाद (हि० स० १०२३ ता० १६ रजब = वि० स० १६७१ भाद्रपद वदि ४ = ई० स० १६१४ ता० १३ अगस्त) का फ़रमान।

(३) सन् जुलूस १२ ता० २८ उर्दीबहिश्त [अनुवाद में सन् १६ दिया है, जो ठीक नहीं प्रतीत होता] (हि० स० १०२६ ता० ११ जमादिउल्अव्वल = वि० सं० १६७४ वैशाख सुदि १२ = ई० स० १६१७ ता० ७ मई) का फ़रमान। डॉक्टर बेणीप्रसाद लिखित 'हिस्ट्री ऑव् जहांगीर' में भी किरकी की लड़ाई का उल्लेख है (पृ० २६६), जिसमें दाराबख़ां भी साथ था।

(४) हि० स० १०३१ ता० ६ ज़ीक़ाद (वि० सं० १६७६ भाद्रपद सुदि ८ = ई० स० १६२२ ता० २ सितम्बर) का फ़रमान।

किया और राय अल्लू आदि को मारकर वहां के निवासियों की सम्पत्ति लूट ली। जब इसकी खबर बादशाह को मिली तो उसने सूरसिंह के पास इस आशय का फ़रमान भेजा कि वह बागियों को दंड देकर वहां के निवासियों की सम्पत्ति वापस दिला दे[1]।

(५) कुछ दिनों पहले से ही खुर्रम विद्रोही हो गया था और भारत के सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए अनेकों प्रकार के षड्यन्त्र रच रहा था। बंगाल और बिहार को अधीन कर उसने अवध और इलाहाबाद को भी अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। उसने दरियाखां पठान को कुछ फ़ौज के साथ अवध में मानिकपुर की तरफ़ भेजा और अब्दुल्लाखां तथा राजा भीम (सीसोदिया) को फ़ौज की दूसरी टुकड़ी के साथ गंगा नदी के मार्ग से इलाहाबाद की तरफ़ रवाना किया। अब्दुल्लाखां के चौसाघाट पहुंचने पर खान आज़म का पुत्र जहांगीर क़ुलीखां इलाहाबाद में रुस्तम मिर्ज़ा के पास भाग गया। अब्दुल्लाखां ने उसका पीछा किया तथा झूंसी नामक स्थान में डेरा किया। नावों के सहारे वह आसानी से इलाहाबाद में पहुंच गया तथा उसने वहां के गढ़ को घेर लिया। रुस्तमखां भी तत्परता के साथ अपनी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गया। इस बीच में शाहज़ादे ने भी दरियाखां को वापस बुलाकर बिहार में छोड़ दिया था और वह स्वयं जौनपुर पर अधिकार कर कम्पत के जंगलों में ठहरा हुआ था। यहां तक तो उसके मनसूबे ठीक तरह से पूरे ही हो रहे थे, पर अब उनमें व्याघात होना शुरू हुआ। अकबर-नगर में इब्राहीमखां एवं इलाहाबाद में रुस्तमखां-द्वारा रुकावट डाले जाने के कारण शाहज़ादा परवेज़ तथा महाबतखां को इलाहबाद की सीमा में पहुंचने का समय मिल गया। दक्षिण में सफलतापूर्वक कार्यनिर्वाह करने के अनन्तर वे दोनों शाही आज्ञा के अनुसार खुर्रम के विरुद्ध बादशाही रैय्यत की रक्षार्थ वि० सं० १६८१ चैत्र सुदि ७ (ई० स०

(१) सन् जुलूस १८ ता० १७ तीर (हि० स० १०३२ ता० १० रमज़ान = वि० सं० १६८० आषाढ सुदि १२ = ई० स० १६२३ ता० २१ जून) का फ़रमान।

१६२४ ता० १६ मार्च) को बुरहानपुर से रवाना हुए थे। विशाल शाही सैन्य का आगमन सुनते ही अब्दुल्लाखां घेरा उठाकर झूंसी चला गया। बाद में दोनों दलों का सामना होने पर खुर्रम की पराजय हुई और वह भाग गया[1]।

खुर्रम के विरुद्ध इस लड़ाई में परवेज़ तथा महाबतखां की सहायतार्थ सूरसिंह भी पहुंच गया था। सूरसिंह का नाम किसी फ़ारसी तवारीख़ में तो नहीं आया है; परंतु जहांगीर के सन् जुलूस १६ ता० २४ खुरदाद (हि० स० १०३३ ता० २६ शाबान = वि० सं० १६८१ आषाढ वदि १३ = ई० स० १६२४ ता० ३ जून) के निम्नलिखित आशय के फ़रमान से उसका उनके साथ होना पूर्णतया सिद्ध है—

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त, कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राय सूरत(सूर)सिंह को ज्ञात हो कि उसकी राजभक्ति, उपयुक्त सेवाओं तथा इस वर्षा ऋतु में भी अनेकों कष्ट उठाकर मेरे पुत्र के समक्ष उपस्थित होने का समाचार शाहज़ादा परवेज़ और महाबतखां के पत्रों-द्वारा मालूम हो चुका है।

"शाही अभिलाषा यही है कि उस अभागे का नामोनिशान मिटा दिया जाय, इसलिए सूरत(सूर)सिंह तथा अन्य राजभक्त व्यक्तियों का कर्तव्य है कि उस प्रतिकूल आचरण करनेवाले अभागे को दूर करने में अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करें।"

खुर्रम के भागजाने पर बादशाह जहांगीर ने अपने सन् जलूस १६ ता० १४ आबान (हि० स० १०३४ ता० २३ मुहर्रम = वि० सं० १६८१ मार्गशीर्ष वदि १० = ई० स० १६२४ ता० २६ अक्टोबर) के फ़रमान में सूरज(सूर)सिंह की सेवाओं से प्रसन्नता प्रकट की है और बदले में उसके पास राजा जोरावर के हाथ घोड़ा और खिलअत भिजवाने का उल्लेख है।

उपर्युक्त उद्धरण से यह निश्चित है कि विद्रोही खुर्रम के साथ की लड़ाई में सूरसिंह भी उपस्थित था और उसने अच्छा काम किया।

(१) डा० बेणीप्रसाद; हिस्ट्री ऑव् जहांगीर; पृ० ३८१-४।

(६) मलिक अम्बर[1] का देहांत हो जाने पर बादशाह ने सूरसिंह के नाम फ़रमान भेजा कि इस अवसर पर उसे तथा अन्य अफ़सरों को भाग्यहीन (खुर्रम) की शक्ति क्षय करने में पूरा उद्योग करना चाहिये[2]।

(७) वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में बादशाह ने एक योग्य व्यक्ति को मुलतान भेजने का निश्चय किया। सूरसिंह की जागीर मुलतान के निकट होने के कारण वही इस कार्य के लिए चुना गया तथा वहां भेजे जाने के पूर्व दरबार में बुलाया गया[3]।

(८) वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में बादशाह ने सूरसिंह की नियुक्ति बुरहानपुर में कर दी। प्रायः एक मास बाद ही फिर एक फ़रमान उसके नाम भेजा गया, जिसमें उसे शीघ्र जमाल मुहम्मद के साथ बुरहानपुर पहुंचने का आदेश किया गया था[4]।

(९) वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में नागोर का परगना तथा

---

(१) यह हबशी जाति का गुलाम था, जिसका धीरे-धीरे दक्षिण में बहुत प्रभुत्व बढ़ गया। जहांगीर ने सिंहासनारूढ होने पर कई बार इसे अधीन करने के लिए सेनाएं भेजीं पर मलिक अम्बर की स्वतन्त्रता में बाधा न पहुंची। पीछे से शाहज़ादे शाहजहां से मिल जाने पर इसने मुग़लों से जीते हुए देश उसे दे दिये। यह अन्त तक शाहजहां का पक्षपाती बना रहा। अस्सी वर्ष की अवस्था में वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में इसका देहांत हुआ। इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र फ़तहख़ां हुआ।

(२) सन् जुलूस २१ ता० २७ ख़ुरदाद (हि० स० १०३५ ता० २२ रमज़ान = वि० सं० १६८३ आषाढ वदि ८ = ई० स० १६२६ ता० ७ जून) का बादशाह जहांगीर का फ़रमान।

(३) सन् जुलूस २१ ता० ११ अमरदाद (हि० स० १०३५ ता० १० ज़ीकाद = वि० सं० १६८३ श्रावण सुदि ११ = ई० स० १६२६ ता० २४ जुलाई) का फ़रमान।

(४) सन् जुलूस २१ ता० २७ मेहर (हि० स० १०३६ ता० २८ मुहर्रम = वि० सं० १६८३ कार्तिक वदि ३० = ई० स० १६२६ ता० १० अक्टोबर) का फ़रमान।

अन्य कई स्थान अमरसिंह के हटाये जाने पर सूरसिंह को जागीर में दिये गये[1]।

(१०) हि० स० १०३७ ता० २ रबीउस्सानी (वि० सं० १६८४ कार्तिक सुदि ३ = ई० स० १६२७ ता० १ नवम्बर) के फ़रमान-द्वारा मारोठ का गढ़ सूरसिंह को जागीर में मिल गया।

(११) जब लखी जंगल के मन्सूर और भट्टी आदि ने विद्रोही होकर लूट-मार करना शुरू किया तो बादशाह ने सूरसिंह को उनका दमन करने के लिए नियुक्त किया। इस संबन्ध का फ़रमान जहांगीर के राज्य-काल का है, परन्तु उसका संवत् ठीक पढ़ा नहीं जाता। इसके अतिरिक्त और भी कई फ़रमान जहांगीर के समय के हैं, पर उनके सम्वत् स्पष्ट नहीं हैं और न उनमें सूरसिंह की योग्यता, राज्यभक्ति और प्रशंसा के अतिरिक्त किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है।

(१२) जहांगीर की मृत्यु हो जाने पर आसफ़ख़ां ने, जो शाहजहां का पक्षपाती था, नूरजहां को नज़र क़ैद कर दिया और बनारसी को सुदूर दक्षिण में शाहजहां के पास अपनी अंगूठी देकर भेजा। इस बीच में और कोई गड़बड़ न हो, इसलिए उसने खुसरो के पुत्र दावरबख़्श को क़ैद से निकालकर नाममात्र को तख़्त पर बैठा दिया। दावरबख़्श की मुहर का सन् जुलूस २२ ता० २० आबान (हि० स० १०३७ ता० ३ रबीउल्-अव्वल = वि० सं० १६८४ कार्तिक सुदि ४ = ई० स० १६२७ ता० २ नवम्बर) का फ़रमान सूरसिंह के पास पहुंचा, जिसमें उसने नूरजहां बेगम तथा अन्य राज्य के अधिकारियों-द्वारा अपने तख़्तनशीन किये जाने का उल्लेख किया था और सूरसिंह को पहले की तरह राजकीय सेवा बजाने का आदेश किया था। इस फ़रमान से यह भी पाया जाता है कि दावरबख़्श ने सूरसिंह के मनुष्यों के हाथ उसके पास कुछ ज़बानी सन्देश भी भेजा

---

(१) सन् जुलूस २२ ता० १६ मेहर (हि० स० १०३७ ता० २८ मुहर्रम = वि० सं० १६८४ आश्विन वदि अमावास्या = ई० स० १६२७ ता० २६ सितम्बर) का फ़रमान।

था, पर वह क्या था, इसका पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त एक फ़रमान दावरबख़्श का सूरसिंह के नाम का है, जिसमें शाही सेना-द्वारा शहरयार के परास्त तथा क़ैद किये जाने का उल्लेख है और ता० २६ (?२४) आबान (हि० स० १०३७ ता० १२ रबीउलअव्वल = वि० सं० १६८४ कार्तिक सुदि १४ = ई० स० १६२७ ता० ११ नवम्बर) को उस(दावरबख़्श)-के गद्दी बैठने का उल्लेख है।

बाद में, आसफ़खां जो चाहता था वही हुआ और उसने अपने दामाद खुर्रम (शाहजहां) को भारत के सिंहासन पर बैठाया, जिसने दावर-बख़्श को क़त्ल करवा दिया।

(१३) वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में शाहजहां ने शेर ख्वाजा को ठट्टा की ओर शीघ्रता से प्रस्थान करने की आज्ञा दी। इस अवसर पर सूरसिंह को भी मुलतान में उससे मिल जाने के लिए फ़रमान भेजा गया तथा दोनों को मिलकर बाग़ी[1] को ज़िन्दा अथवा मुर्दा शाही दरबार में उपस्थित करने की आज्ञा हुई[2]। उन्हीं दिनों मिर्ज़ा ईसा तरखान-द्वारा उस(बाग़ी)के गिरफ़्तार कर लिये जाने पर बादशाह ने सूरसिंह को वापस बुलवा लिया[3]।

(१४) सन् जुलूस ३ ता० ११ खुरदाद (हि० स० १०३६ ता० २२ शाबान=वि० सं० १६८७ वैशाख वदि १० = ई० स० १६३० ता० २८ मार्च) के बादशाह शाहजहां के फ़रमान से स्पष्ट है कि उसके विरुद्ध आचरण करनेवालों को दंड देने के लिए जो लोग भेजे गये थे, उनमें सूरसिंह भी था और उसने इस कार्य में बड़ी तत्परता एवं वीरता दिखलाई।

बुरहानपुर में ही वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) में बोहरी गांव में सूरसिंह का देहांत हो गया[4], जिसकी सूचना शाहजहां के पास

(१) फ़रमान में इसका नाम नहीं दिया है।

(२) वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२८) का फ़रमान।

(३) वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२८) का दूसरा फ़रमान।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४।

सूरसिंह की मृत्यु

आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६३१ ता० २१ सितंबर) को पहुंची[1]। सूरसिंह की स्मारक छत्री से वि० सं० १६८८ आश्विन वदि अमावास्या (ई० स० १६३१ ता० १५ सितंबर) गुरुवार को उसका देहांत होना पाया जाता है[2]।

संतति

सूरसिंह के तीन पुत्र—१—कर्णसिंह[3], २—शत्रुसाल, तथा ३—अर्जुनसिंह[4]—हुए[5]।

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६३ (आश्विन सुदि ७ दिया है)।

(२) अथ शुभसंवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १६८८ वर्षे शाके १५५३ प्रवर्तमाने महामहप्रदायिनि आश्विनमासे कृष्णपक्षे अमावस्यायां तिथौ गुरुवारे.............राठोड महाराजाधिराजमहाराजाश्री ४ रायसिंहस्तत्पुत्रस्त...........महाराजाधिराजमहाराजश्रीशूरसिंह.........दिवं प्राप्तः.......... ।

(३) इसका जन्म राजा मानसिंह के पुत्र हिम्मतसिंह की पुत्री स्वरूप दे के गर्भ से हुआ था। दो और राणियों—भटियाणी मनरंगदे तथा रत्नावती—का उल्लेख मुंहणोत नैणसी ने किया है, जो सूरसिंह की मृत्यु पर सती हो गई थीं (भाग २, पृ० २००)। अन्य दो पुत्र किस राणी से पैदा हुए यह पता नहीं चलता।

(४) अर्जुनसिंह के स्मारक लेख से वि० सं० १६८८ भाद्रपद वदि ७ (ई० स० १६३१ ता० ६ अगस्त) शुक्रवार को उसका देहांत होना प्रकट है।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३१। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४। वीरविनोद में केवल दो पुत्रों—कर्णसिंह तथा शत्रुसाल—का उल्लेख है (भाग २, पृ० ४६३)।

महाराजा कर्णसिंह

छठा अध्याय

महाराजा कर्णसिंह से महाराजा सुजानसिंह तक

महाराजा कर्णसिंह

महाराजा सूरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह का जन्म वि० सं० १६७३ श्रावण सुदि ६ (ई० स० १६१६ ता० १० जुलाई) बुधवार को हुआ था[1]

जन्म और गद्दीनशीनी

और पिता की मृत्यु होने पर वि० सं० १६८८ कार्तिक वदि १३ (ई० स० १६३१ ता० १३ अक्टोबर) को वह बीकानेर का स्वामी हुआ[2]।

वि० सं० १६८८ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६३१ ता० २१ सितंबर) को शाहजहां के पास सूरसिंह की मृत्यु का समाचार पहुंचा। कुछ दिनों

कर्णसिंह को मनसब मिलना

बाद जब कर्णसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ तो उसे दो हज़ार ज़ात तथा डेढ़ हज़ार सवार

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८३। बीकानेर के एक प्राचीन जन्मपत्रियों के संग्रह में भी यही तिथि मिलती है, परन्तु चंडू के यहां से मिले हुए जन्म-पत्र संग्रह में वि० सं० १६७२ भाद्रपद वदि (प्रथम) ११ (ई० स० १६१५ ता० ६ अगस्त) बुधवार को कर्णसिंह का जन्म होना लिखा है। पाउलेट ने वि० सं० १६६३ (ई० स० १६०६) तथा मुंशी सोहनलाल ने भी उसके आधार पर यही संवत् दे दिया है जो ठीक नहीं जंचता, क्योंकि उस समय तो उस(कर्णसिंह)के पिता की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी।

टॉड के अनुसार कर्णसिंह, रायसिंह का एक मात्र पुत्र था (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३५), परन्तु उसका यह कथन ठीक नहीं है। वास्तव में वह (टॉड) बीच के दो राजाओं, दलपतसिंह एवं सूरसिंह, के नाम तक छोड़ गया है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३६।

का मनसब दिया गया। इस अवसर पर उसके भाई शत्रुसाल को भी पांच सौ ज़ात और दो सौ सवार का मनसब मिला[1]।

कर्णसिंह का बादशाह को एक हाथी भेंट करना

वि० सं० १६८८ माघ सुदि १४ (ई० स० १६३२ ता० २६ जनवरी) को कर्णसिंह ने बादशाह की सेवा में एक हाथी भेंट किया[2]।

अहमदनगर के मलिक अम्बर का देहांत हो जाने पर उसका पुत्र फ़तहख़ां उसका उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु मुर्तज़ा निज़ामशाह[3] (दूसरा) को उसपर भरोसा न था, अतएव उसने फ़तहख़ां को दौलताबाद के क़िले में क़ैद कर दिया। अपनी बहन (मुर्तज़ा दूसरे की पत्नी) के प्रयत्न से जब वह छोड़ा गया और उसे पुराना पद प्राप्त हुआ तो उसने अवसर पाकर मुर्तज़ा को बन्दी कर लिया और शाहजहां की अधीनता स्वीकार कर उसकी सेवा में अर्ज़ी भेजी। बादशाह ने इसके उत्तर में उससे क़ैदी को मार डालने के लिए कहलाया। इसपर फ़तहख़ां ने मुर्तज़ा को ज़बर्दस्ती विष का प्याला पीने पर बाध्य किया और उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो जाने की विज्ञप्ति कर उसने हुसेन नाम के एक दस वर्ष के बालक को मुर्तज़ा के स्थान में गद्दी पर बैठाया। तब शाहजहां ने उसे निज़ामशाह (मुर्तज़ा दूसरा) के समस्त रत्न तथा हाथी आदि शाही सेवा में भेजने को लिखा, परंतु फ़तहख़ां इस विषय में आनाकानी करने लगा[4]। अतएव वि० सं० १६८८ फाल्गुन वदि १०

कर्णसिंह का फ़तहख़ां पर भेजा जाना

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६१। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल्-उमरा (हिन्दी); पृ० ८४; तथा उमराए हनूद (पृ० २१८) में कर्णसिंह को दो हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६६।

(३) अहमदनगर (दक्षिण) का नाममात्र का स्वामी; मुर्तज़ा निज़ामशाह (प्रथम) का पुत्र।

(४) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० ११०, १३६-७।

(ई० स० १६३२ ता० ५ फ़रवरी) को बादशाह ने वज़ीरख़ां[1] को उसे दंड देने एवं दौलताबाद विजय करने के लिए भेजा। इस अवसर पर कर्णसिंह, राजा विट्ठलदास (गौड़), माधोसिंह[2] और पृथ्वीराज भी उस (वज़ीरख़ां) के साथ भेजे गये[3]। फ़तहख़ां शाही सेना का आगमन सुनते ही घबड़ा गया और उसने अबुलफ़तह को भेजकर माफ़ी मांग ली तथा आठ लाख रुपये के रत्न, तीस हाथी और नौ घोड़े बादशाह की सेवा में भेज दिये[4]। इसपर वज़ीरख़ां तथा कर्णसिंह आदि वापस बुला लिये गये[5]। पर इतने ही से दक्षिण में शांति न हुई। एक ओर शाहजी[6] और दूसरी ओर बीजापुरवाले अहमदनगर के राज्य का पुनरोत्कर्ष करने में कटिबद्ध थे। साथ ही बादशाह को फ़तहख़ां की सचाई पर भी विश्वास न था, जिससे एक योग्य व्यक्ति का उस ओर रहना आवश्यक समझा गया। पहले तो बादशाह ने आसफ़ख़ां को वहां भेजना चाहा पर उसके इनकार कर देने पर उसने महाबतख़ां को वहां के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया। जब शाहजी ने शाहजहां की अधीनता स्वीकार की, तो बादशाह ने उसे कुछ महाल (परगने) दिये थे, जो फ़तहख़ां के थे, परन्तु फ़तहख़ां के

(१) इसका वास्तविक नाम हकीम अलीमुद्दीन था और यह शाहजहां का पांच हज़ारी मनसबदार था।

(२) राजा भगवानदास कछवाहे का पुत्र।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ६७। व्रजरत्नदास; मआसिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८५। उमराए हनूद; पृ० २९८।

(४) डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली पृ० ११७।

मुंशी देवीप्रसाद ने भी 'शाहजहांनामे' (भाग १, पृ० ६७) में फ़तहख़ां-द्वारा नज़राना भिजवाये जाने का उल्लेख किया है।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा, भाग १, पृ० ६७। व्रजरत्नदास; मआसिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ८५।

(६) सुप्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी का पिता। फ़ारसी पुस्तकों में कहीं-कहीं उसे साहूजी भी लिखा है।

माफ़ी मांग लेने पर वह सब जागीर उसे लौटा दी गई, जिससे शाहजी मुग़लों के साथ-साथ फ़तहख़ां का भी विरोधी हो गया और उसने मुरारी पंडित के ज़रिये मुहम्मद आदिलशाह[1] से सम्बन्ध स्थापित कर दौलताबाद पर घेरा डलवा दिया। तब फ़तहख़ां ने महाबतख़ां से सहायता की याचना की, जिसपर उसने अपने पुत्र खानज़मां को दौलताबाद की तरफ़ भेजा। पर इसी बीच मुहम्मद आदिलशाह के सेनाध्यक्ष रन्दोलाख़ां की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर फ़तहख़ां विरोधियों से जा मिला। इसपर महाबतख़ां ने अपने पुत्र खानज़मां को फ़तहख़ां और रन्दोलाख़ां के बीच के सम्बन्ध को रोकने तथा दौलताबाद को घेर लेने की आज्ञा दी। विरोधियों ने शाही सेना को हटाने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु जब रसद पहुंचने के सारे मार्ग बंद हो गये तो फ़तहख़ां ने अपने पुत्र अब्दुर्रसूल को महाबतख़ां के पास भेजकर माफ़ी मांग ली और एक सप्ताह बाद वि० सं० १६६० (ई० स० १६३३) में दौलताबाद का गढ़ उस (महाबतख़ां) के हवाले कर वह वहां से चला गया[2]। इस चढ़ाई में महाराजा कर्णसिंह भी शाही सेना के साथ था[3] और उसने महाबतख़ां के आदेशानुसार वि० सं० १६६० चैत्र सुदि ८ (ई० स० १६३३ ता० ८ मार्च) को खानजमां तथा राव शत्रुसाल हाड़ा के साथ रहकर विपक्षियों का बहुतसा सामान लूटा[4] था।

---

(१) बीजापुर का स्वामी।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३६-४१। डॉक्टर बनारसीप्रसाद; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १३७-४१।

(३) व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८५। शाहजहां के सन् जुलूस ६ (वि० सं० १६८६ = ई० स० १६३२ अप्रेल) के फ़रमान से भी पाया जाता है कि दौलताबाद की चढ़ाई में कर्णसिंह ख़ानख़ाना के साथ था। उपर्युक्त फ़रमान में कर्णसिंह की वीरता का बड़ा प्रशंसापूर्ण वर्णन है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १००-१०१।

दौलताबाद का गढ़ विजय करने के उपरान्त महाबतखां की दृष्टि परेंडे[1] के क़िले की तरफ़ गई। यह गढ़ पहले निज़ामशाह के क़ब्ज़े में था, परन्तु वि० सं० १६८६ (ई० स० १६३२) में आक़ा रज़ा ने इसे आदिलशाह के सुपुर्द कर दिया था। महाबतखां ने बादशाह की सेवा में अर्ज़ी भेजी

कर्णसिंह और परेंडे की चढ़ाई

कि दौलताबाद को जीत लेने से दक्षिण की शक्तियों में भय समा गया है, जिससे बीजापुर को अधीन करने का इस समय उपयुक्त अवसर है। मेरे सैनिक थक गये हैं, अतएव यदि कोई शाहज़ादा नई सेना के साथ भेजा जाय तो विजय निश्चित है। बादशाह ने तत्काल शाहज़ादे शुजा[2] का मनसब १०००० ज़ात और १०००० सवार का कर उसे विशाल सैन्य के साथ दक्षिण में भेजा[3]। इस शाही सेना के साथ सैय्यद खानजहां, राजा जयसिंह, राजा विट्ठलदास, अल्लहवर्दीखां, रशीदखां अन्सारी आदि भी थे[4]। शाहज़ादे शुजा के बुरहानपुर पहुंचने पर मार्ग में महाबतखां उससे मिला और उसने उसे सीधे परेंडा की ओर अग्रसर होने की राय दी। मल्कापुर से खानज़मां बीजापुर के सीमान्त ज़िलों में भेजा गया ताकि वह उस ओर से परेंडे में सहायता न पहुंचने दे[5], पर इस चढ़ाई का काम वैसा सरल न निकला जैसा कि महाबतखां ने सोचा था।

(१) हैदराबाद (दक्षिण) के ओसमानाबाद ज़िले में।

(२) बादशाह शाहजहां का दूसरा पुत्र।

(३) मुंशी देवीप्रसाद ने शाहज़ादे शुजा के दक्षिण भेजे जाने की तिथि वि० सं० १६९० भाद्रपद वदि ६ (ई० स० १६३३ ता० १८ अगस्त) दी है (शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ११०-१)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद ने चंद्रमन बुंदेला, राजा रोज़ अफ़ज़ूं, भीम राठोड़ तथा राजा रामदास नरवरी के नाम भी दिये हैं (शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १११)।

(५) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १५६-६०। अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; भाग ७, पृ० ४३-४।

शाहजी ने निज़ामशाह के एक सम्बन्धी को, जो एजराटी के क़िले में क़ैद था, साथ लेकर अहमदनगर और दौलताबाद विजय करने का निश्चय किया। उधर से आदिलख़ां ने भी किशनाजी दत्तू, रनदोला और मुरारी पंडित को धन एवं जन देकर उसकी सहायता के लिए भेजा[1]। शाहजी ने ज़ाफ़रनगर में मुग़लों को रोका, पर शाहज़ादे ने उसी समय ख़वासख़ां की अध्यक्षता में कुछ आदमी उसे भगाने के लिए भेज दिये। ख़ानज़मां भी निर्वाचित स्थान पर पहुंच गया, पर उससे कोई विशेष लाभ न हुआ। अन्त में महाबतख़ां स्वयं शाहज़ादे के साथ परेंडे की ओर बढ़ा। सारी मुग़ल सेना के एक ही स्थल पर एकत्र हो जाने के कारण रसद की कमी होने लगी। शत्रुदल भी इस अवसर पर उनके पास रसद पहुंचने के तमाम मार्ग बन्द करने पर कटिबद्ध हो गया[2]।

एक दिन जब ख़ानख़ाना स्वयं घास आदि लेने गया हुआ था, शत्रु के सैनिकों ने उसपर आक्रमण कर दिया। उस समय महेशदास राठोड़, रघुनाथ भाटी आदि ने बड़ी वीरता के साथ उनका सामना किया, परंतु शत्रु की संख्या अधिक होने से वे सब मारे गये। इसी समय ख़ानदौरां शाही सेना की सहायतार्थ आ पहुंचा, जिससे शत्रु के पैर उखड़ गये[3]।

वि० सं० १६६० माघ सुदि १० (ई० स० १६३४ ता० २८ जनवरी) की रात को शाहज़ादे की आज्ञा से कर्णसिंह[4], राजा जयसिंह, राजा विट्ठलदास, राव शत्रुसाल आदि शत्रु के डेरे लूटने को गये,

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ११७-८।

(२) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १६०-१।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ११८-९। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १६२।

(४) 'मआसिरुल् उमरा' (हिन्दी, पृ० ८९) में भी परेंडे की चढ़ाई में कर्णसिंह के शाही सेना के साथ रहने का उल्लेख है।

परन्तु वे (शत्रु) सचेत थे, अतएव अधिक सामान हाथ न लगा। फिर भी उन्होंने शत्रु के बहुत से आदमियों को मौत के घाट उतार दिया[1]। इस प्रकार के झगड़े बीच-बीच में कितनी ही बार हुए। उधर गढ़ को सुरंग खोदकर नष्ट करने के सारे प्रयत्न शत्रु ने व्यर्थ कर दिये। साथ ही खानखाना (महाबतखां) एवं खानदौरां में मनमुटाव हो गया, जिससे शाही सेना में और गड़बड़ मच गई। खानखाना के उद्दंडतापूर्ण व्यवहार के कारण अधिकांश मनसबदार उससे अप्रसन्न रहने और उसके प्रत्येक कार्य का विरोध करने लगे जिससे सफलता की कोई आशा न देख उसने गढ़ का घेरा उठवा दिया तथा शाहज़ादे के साथ बुरहानपुर की ओर प्रस्थान किया[2]। चार दिन बाद जब शाही सेना घाट से उतर रही थी, उस समय विपक्षियों ने उनपर तीरों की वर्षा की। खानज़मां ने शत्रुसाल, जगराज और कर्णसिंह आदि के साथ उनका मुक़ाबला किया। दाहिनी ओर से राजा जयसिंह भी उसकी सहायता को पहुंच गया, जिससे विपक्षी भाग गये। कुछ दिन बाद शाही सेना बुरहानपुर पहुंच गई[3]। बादशाह को जब यह सब समाचार विदित हुआ, तो वह खानखाना के आचरण से बहुत रुष्ट हुआ और उसने शाहज़ादे को पीछा बुला लिया। इसके कुछ ही समय बाद खानखाना का देहांत हो गया[4]।

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १२२।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ४४। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १२३-४। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १६२।

उपरिलिखित 'बादशाहनामे' में घेरा उठाये जाने का समय हि० स० १०४३ तारीख़ ३ जिलहिज (वि० सं० १६६१ ज्येष्ठ सुदि ४ = ई० स० १६३४ ता० २१ मई) दी है। मुंशी देवीप्रसाद ने वि० सं० १६९१ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६३४ ता० २२ मई) को घेरा उठाया जाना लिखा है।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १२४-५।

(४) डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १६३।

सन् जुलूस २ (वि० सं० १६८५-६ = ई० स० १६२६) में जुझारसिंह बुंदेले के गत अपराधों को क्षमाकर बादशाह ने उसकी नियुक्ति दक्षिण में कर दी थी। कुछ दिनों बाद वह महाबतख़ां से विदा ले अपने पुत्र विक्रमाजित को अपने स्थान में छोड़कर देश चला गया। वहां पहुंचकर उसने गढ़े के ज़मींदार प्रेमनारायण[1] पर चढ़ाई की और सन्धि करने के बहाने उसे बाहर बुलाकर मरवा डाला तथा जोरागढ़[2] एवं उसकी सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। तब प्रेमनारायण के पुत्र ने मालवा से ख़ानदौरां के साथ दरबार में उपस्थित हो बादशाह से सारी घटना अर्ज़ की। इसपर बादशाह ने सुंदर कविराय के हाथ निम्नलिखित आशय का फ़रमान जुझारसिंह के पास भेजा—

कर्णसिंह का विक्रमाजित का पीछा करना

"शाही आज्ञा के बिना प्रेमनारायण पर चढ़ाई कर तुमने उचित नहीं किया है। इसका दंड यही है कि तुम उससे छीनी हुई सारी जागीर हमारे हवाले कर दो; साथ ही प्रेमनारायण के ख़ज़ाने से मिले हुए धन में से दस लाख रुपये दरबार में भेज दो, परंतु यदि जीती हुई भूमि तुम अपने ही अधिकार में रखना चाहो तो अपनी जागीर में से तुम्हें उसके बराबर भूमि देनी होगी।"

उपर्युक्त आज्ञापत्र की सूचना अपने वकीलों के द्वारा जुझारसिंह को पहले ही मिल गई, जिससे उसने अपने पुत्र विक्रमाजित[3] को भाग आने के लिए कहलाया। विक्रमाजित के बालाघाट से अपने साथियों-सहित भागने पर वहां के सूबेदार ख़ानज़मां ने तो उसे नहीं रोका, परन्तु ख़ानदौरां ने, जिसकी नियुक्ति महाबतख़ां की मृत्यु के बाद

(१) फ़ारसी तवारीख़ों में कहीं-कहीं भीमनारायण भी लिखा है।

(२) कहीं-कहीं चौरागढ़ भी लिखा है। यह स्थान मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर ज़िले में गाडरवाड़ा स्टेशन से पांच कोस दक्षिण-पूर्व में है।

(३) इसे बादशाह की ओर से जगराज का ख़िताब मिला था, इसी से तवारीख़ों आदि में इसे कहीं-कहीं जगराज भी लिखा है।

दक्षिण में हो गई थी, कर्णसिंह, राजा पहाड़सिंह, चन्द्रमणि बुंदेला[1], माधोसिंह हाड़ा, नज़रबहादुर और मीर फ़ैजुल्ला आदि के साथ उसका पीछा किया और पांच दिन में मालवे में अष्टा के निकट जा घेरा। लड़ाई होने पर विक्रमाजित जख्मी होने पर भी भाग गया। मालवे का सूबेदार अल्लहवर्दीखां वहीं था, पर वह उसका पीछा न कर सका। फलस्वरूप विक्रमाजित धामूनी में अपने पिता से जा मिला[2]। कुछ दिनों पीछे सुलतान (शाहज़ादा) औरंगज़ेब की अध्यक्षता में शाही सेना ने पिता-पुत्र का पीछा कर उन्हें मार डाला। जुझारसिंह के अन्य कई पुत्र आदि बन्दी कर शाही दरबार में भेज दिये गये। इस प्रकार बादशाह के इस विरोधी का अंत हुआ।

कर्णसिंह का शाहजी पर भेजा जाना

शाहजी के जीतेजी दक्षिण में शान्ति की स्थापना असंभव थी। उसने निज़ामुल्मुल्क के खानदान के एक बालक को निज़ामुल्मुल्क बनाकर दक्षिण का थोड़ा भाग दबा लिया था, अतएव बादशाह ने वि० सं० १६९२ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १६३६ ता० १७ फ़रवरी) को खानदौरां और खानज़मां को उसपर जाने का आदेश दिया। साथ ही उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि यदि आदिलखां शाही सेना से मिल जाय तो ठीक, नहीं तो उसपर भी चढ़ाई की जावे। खानदौरां तथा खानज़मां की मदद के लिए बड़े-बड़े मनसबदार उनके साथ भेजे गये। कुछ दिनों बाद जब बादशाह के पास खबर पहुंची कि आदिलखां ने गुप्त रीति से उदैगढ़[3] और औड़से[4] के

---

(१) राजा वीरसिंहदेव बुंदेला का पुत्र तथा जुझारसिंह बुंदेले का भाई।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियट; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ४७। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १४१-५। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० १८६-७। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० ८३-४।

(३) हैदराबाद के अन्तर्गत बीदर ज़िले में।

(४) हैदराबाद के अन्तर्गत ओसमानाबाद ज़िले में।

क़िलेदारों को मदद पहुंचाई है और शाहजी की सहायतार्थ रनदोला को भेजा है, तो उसने सैय्यद खानजहां को भी उस(शाहजी)पर भेजा। इस अवसर पर महाराजा कर्णसिंह, हरिसिंह राठोड़, राजा रोज़ अफ़जूं[1] का पुत्र राजा बहरोज़, राजा अनूपसिंह का पुत्र जयराम, राव रतन का पोता इन्द्रसाल आदि भी खानजहां के साथ थे। बादशाह का हुक्म था कि खानजहां खानदौरां और खानज़मां भिन्न-भिन्न मार्गों से बीजापुर में प्रवेश कर रनदोला को शाहजी से मिलने से रोकें[2]। अन्ततः शाही सेना-द्वारा लगातार पीछा किये जाने पर आदिलखां (शाह), रनदोला तथा शाहजी ने क्रमशः आत्मसमर्पण कर बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली।

जोधपुर के स्वामी गजसिंह (वि० सं० १६७६ से १६६५ = ई० स० १६१६ से १६३८ तक) का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, परन्तु कुछ कारणों से[3] उसे

(१) राजा संग्राम का पुत्र। पिता के मारे जाने के समय यह बहुत छोटा था, अतएव बादशाह ने इसे अपने पास रख लिया। बड़े होने पर इसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। औरंगज़ेब के ८ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १७२२ = ई० स० १६६५) में इसका देहांत हुआ।

(२) अब्दुलहमीद लाहौरी; बादशाहनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ५१-६०। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १६६-७३। डॉक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां ऑव् देहली; पृ० १४४-८।

(३) दयालदास लिखता है कि एक बार अमरसिंह ने क्रोध में अपने बहनोई, रीवां के कुंवर को मार डाला। अमरसिंह का पिता बहुत पहले से ही इससे नाराज़ रहता था, अतएव उसने इसे देश से निकाल दिया (जि० २, पत्र ३६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि अनारा नाम की अपनी विशेष प्रीतिपात्र पातर से अमरसिंह की सदा अनबन रहने के कारण गजसिंह ने जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया तथा अमरसिंह को बादशाह से कहकर नागोर दिलवा दिया (जि० १, पृ० १७७-८)।

फ़ारसी तवारीख़ों में लिखा है कि गजसिंह ने अपने छोटे बेटे जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की बादशाह से अर्ज़ की, क्योंकि वह जसवंतसिंह की माता पर अधिक स्नेह रखता था (वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२१)।

कर्णसिंह का अमरसिंह पर फ़ौज भेजना

अपना उत्तराधिकारी न बनाकर गजसिंह ने अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को गद्दी का स्वामी नियत किया । तब अमरसिंह बादशाह की सेवा में चला गया, जहां उसे राव का ख़िताब और नागोर की जागीर मिल गई। जोधपुर और बीकानेर की सीमा मिली हुई होने से उन दोनों राज्यों में परस्पर झगड़ा बना ही रहता था। कुछ दिनों बाद अमरसिंह ने बीकानेर की सीमा के जाखांणिया गांव पर भी अपना अधिकार कर लिया। जब कर्णसिंह को इसकी सूचना दिल्ली में मिली तो उसने अपनी सेना को वहां से उस-(अमरसिंह)का थाना उठवा देने की आज्ञा भेजी। उन दिनों मुहता जसवन्त बीकानेर का दीवान था। वह महाजन, भूकरका, सीधमुख आदि के सरदारों के साथ फ़ौज लेकर नागोर पर चढ़ गया। अमरसिंह की तरफ़ से केसरीसिंह ससैन्य मुक़ाबिले के लिए जाखांणिया गया, परन्तु उसे हारकर भागना पड़ा[1]। यह लड़ाई वि० सं० १७०१ (ई० स० १६४४)

इसके अतिरिक्त ख्यातों आदि में और भी कई कारण अमरसिंह के निकाले जाने के मिलते हैं, पर यह कहना कठिन है कि उनमें से कौन अधिक विश्वासयोग्य है। संभव तो यही है कि जसवंतसिंह की माता पर अधिक स्नेह होने के कारण उसको अपना उत्तराधिकारी बनाकर गजसिंह ने अमरसिंह को राज्य के अधिकार से वंचित कर दिया हो। ऐसे अनेक उदाहरण जोधपुर राज्य के इतिहास में मिलते हैं। जैसे राव मल्लीनाथ के छोटे भाई वीरमदेव का पुत्र चूंडा मंडोवर का स्वामी बना; राव चूंडा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल को निर्वासित कर कान्हा को गद्दी दी; राव मालदेव के बड़े बेटों—रामसिंह तथा उदयसिंह—से छोटा चंद्रसेन गद्दी का अधिकारी बनाया गया आदि।

(१) इस लड़ाई के सम्बन्ध में यह भी जनश्रुति है कि बीकानेर की सीमा पर एक किसान ने मतीरे की बेल बोई, जो फैलकर नागोर की सीमा में चली गई और फल भी उधर ही लगे। जब बीकानेर का किसान उधर अपने फल तोड़ने के लिए गया तो नागोर की तरफ़ के किसानों ने यह कहकर बाधा डाली कि फल हमारी सीमा में हैं, अतएव उनपर हमारा अधिकार है। इसपर उन किसानों में झगड़ा होने लगा। होते-होते यह ख़बर दोनों ओर के राज्याधिकारियों के पास पहुंची, जिससे इसका रूप और बढ़ गया तथा दोनों पक्षवालों में लड़ाई हो गई। राजपूताने में इसे 'मतीरे की राड़' कहते हैं।

में हुई[1] और इसमें नागोर के कई राजपूत काम आये। जब अमरसिंह को दिल्ली में इसकी खबर मिली तो उसे बड़ा अफ़सोस हुआ और उसने वहां से जाने की आज्ञा मांगी, परन्तु उसी समय कर्णसिंह ने अमरसिंह के जाखाणिया लेने तथा युद्ध होने का सारा हाल बादशाह से निवेदन कर दिया, जिसपर बादशाह ने अमरसिंह को दरबार ही में रोक रक्खा[2]।

कर्णसिंह की पूगल पर चढ़ाई

कुछ वर्षों बाद कर्णसिंह का अधीनस्थ पूगल का राव सुदर्शन भाटी (जगदेवोत) विद्रोही हो गया, जिससे उसने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर उसका गढ़ घेर लिया। प्रायः एक मास तक घेरा रहने पर एक रात्रि को अवसर पाकर सुदर्शन भागकर लखवेरा में चला गया। कर्णसिंह ने उसके गढ़ को नष्टकर वहां अपना थाना बैठा दिया[3] और पड़िहार लूणा तथा कोठारी जीवनदास को वहां के प्रबन्ध के लिए छोड़कर उसने फ़ौज के साथ लखवेरा में सुदर्शन का पीछा किया। वहां के जोहियों ने तत्काल उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे पेशकशी दी, जिसे लेकर वह बीकानेर लौट गया[4]।

(१) कविराजा बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रंथ में इस लड़ाई के होने का समय वि० सं० १६९९ (ई० स० १६४२) दिया है और सीलवा नामक स्थान में इसका होना लिखा है (संख्या ६८६)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ३९-४०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५।

फ़ारसी तवारीख़ों में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(३) बीकानेर राज्य की ख्यातों में इस घटना का समय नहीं दिया है। मुंहणोत नैणसी ने वि० सं० १७२२ (ई० स० १६६५) में कर्णसिंह-द्वारा सुदर्शन से पूगल का लिया जाना लिखा है (ख्यात; जि० २, पृ० ३८०)।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४९६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५।

बीकानेर और मुलतान के मध्य के ऊजड़ प्रदेश में स्थित होने पर भी पूगल सदा से एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भाटियों ने उसे पंवारों से लिया था। उस समय उसमें केवल २०० गांव थे, जो कर्णसिंह के समय में बढ़कर ५६१ हो गये। बीका के श्वसुर शेखा के वंशजों ने अब उसका बंटवारा करने की प्रार्थना की। तदनुसार कर्णसिंह ने उसके कई भाग कर उनमें बांट दिये। शेखा के ज्येष्ठ पुत्र हरा के वंशज को पूगल तथा २५२ गांव; दूसरे पुत्र केवान के दो पुत्रों में से एक को भीखमपुर तथा ८४ गांव तथा दूसरे को वरसलपुर एवं ४१ गांव और तीसरे पुत्र बाघा के वंशज को रायमलवाली तथा १८४ गांव बंटवारे में मिले[1]।

पूगल का बंटवारा करना

शाहजहां के २२ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १७०५-६=ई० स० १६४८-९) में कर्णसिंह का मनसब बढ़कर दो हज़ार ज़ात तथा दो हज़ार सवार का हो गया और सआदतखां के स्थान में वह बादशाह की ओर से दौलताबाद का क़िलेदार नियत हुआ। लगभग एक वर्ष बाद ही उसके मनसब में पुनः वृद्धि होकर वह ढाई हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसबदार हो गया[2]।

कर्णसिंह के मनसब में वृद्धि

सन् जुलूस २६ (वि० सं० १७०९ = ई० स० १६५२) में कर्णसिंह का मनसब बढ़कर तीन हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार का हो गया[3]। अनन्तर जब सुलतान (शाहज़ादा) औरंगज़ेब की नियुक्ति बादशाह ने दक्षिण में की तो कर्णसिंह को भी उसके साथ रहने दिया। औरंगाबाद सूबे के

कर्णसिंह की जवारी पर चढ़ाई

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४९७ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५ ।

(२) उमराए हनूद; पृ० २९८ । व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८६ ।

(३) उमराए हनूद; पृ० २९८ । व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८६ ।

अंतर्गत जवार का प्रांत लेना निश्चित हो चुका था, इस कारण पूर्वोक्त शाहज़ादे की सम्मति पर वहां का वेतन कर्णसिंह के मनसब में नियत करके उसे उस प्रांत में भेजा गया। वहां के ज़मींदार की सामर्थ्य कर्णसिंह का सामना करने की न थी, अतएव उसने धन आदि भेंट में देकर वहां की तहसील उगाहना अपने ज़िम्मे ले लिया और अपने पुत्र को ओल (ज़मानत) में उसके साथ कर दिया[1]। तब कर्णसिंह वहां से लौटकर शाहज़ादे के पास चला गया[2]।

कर्णसिंह की दक्षिण में नियुक्ति

हिजरी सन् १०६८ (वि० सं० १७१४-१५=ई० स० १६५७-५८) में शाहजहां के बीमार पड़ने पर सल्तनत का सारा कार्य दाराशिकोह[3] ने अपने हाथ में ले लिया, जिससे अन्य शाहज़ादों के दिल में खटका हो गया और प्रत्येक बादशाह बनने का उद्योग करने लगा। शाहज़ादा शुजा बंगाल से और औरंगज़ेब दक्षिण से अपने सब सैन्य के साथ चला। उधर मुराद भी गुजरात की तरफ़ से अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। औरंगज़ेब ने उस(मुराद)को बादशाह बनाने का लालच देकर अपने पक्ष में मिला लिया। इधर दाराशिकोह ने, जिसके हाथ में सल्तनत थी, शुजा के मुक़ाबले में अपने शाहज़ादे सुलेमान शिकोह को और औरंगज़ेब तथा मुराद के सम्मिलित सैन्य को रोकने के लिए जोधपुर के महाराजा

(१) उमराए हनूद में केवल इतना लिखा है कि कर्णसिंह औरंगज़ेब के साथ की दक्षिण की प्रत्येक लड़ाई में शामिल था (पृ० २८८)।

दयालदास की ख्यात में भी बादशाह-द्वारा कर्णसिंह को जवारी का परगना मिलना एवं उसका वहां अपना थाना स्थापित करना लिखा है (जि० २, पत्र ४०); परन्तु उपर्युक्त ख्यात के अनुसार इस घटना का संवत् १७०१ (ई० स० १६४४) पाया जाता है, जो फ़ारसी तवारीख़ के कथन से मेल नहीं खाता। साथ ही उसमें वहां के स्वामी का नाम नेमशाह लिखा है। 'मश्रासिरुल् उमरा' में ब्रैकेट में उसका नाम श्रीपति दिया है।

(२) व्रजरत्नदास; मश्रासिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८६-७।

(३) बादशाह शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र।

जसवन्तसिंह एवं क़ासिमख़ां को रवाना किया। औरंगज़ेब का युद्ध का विचार देख महाराजा कर्णसिंह ने स्वयं किसी शाहज़ादे का पक्ष न लेना चाहा और धर्मातपुर के युद्ध के पहले ही वह शाहज़ादे की आज्ञा बिना बीकानेर को चला गया[1]। महाराजा जसवंतसिंह पर धर्मातपुर (फ़तिहाबाद) में विजय पाकर दोनों शाहज़ादे आगे बढ़े और आगरे के पास समूनगर में शाहज़ादे दाराशिकोह पर विजय पाकर औरंगज़ेब आगरे पहुंचा। फिर बुड्ढे बादशाह शाहजहां को क़ैद कर वि० सं० १७१५ श्रावण सुदि ३ (ई० स० १६५८ ता० २३ जुलाई) को यह मुग़ल साम्राज्य का स्वामी बन गया।

महाराजा कर्णसिंह औरंगज़ेब के पक्ष में न रहकर बिना आज्ञा बीकानेर चला गया था। इसका ध्यान औरंगज़ेब के दिल में इतना रहा कि सिंहासनारूढ़ होने के तीसरे साल (वि० सं० १७१७ = ई० स० १६६०) उसने अमीरख़ां ख़्वाफ़ी को कर्णसिंह पर भेजा, जिसके बीकानेर की सीमा पर पहुंचते ही वह (कर्णसिंह) अपने पुत्र अनूपसिंह तथा पद्मसिंह के साथ दरबार में उपस्थित हो गया। तब बादशाह ने उसका मनसब बहाल करके उसकी नियुक्ति दक्षिण में कर दी[2]।

(१) फ़ारसी तवारीख़ों के उपर्युक्त कथन से तो यही सिद्ध होता है कि शाहजहां के चारों पुत्रों में राज्य के लिए परस्पर जो युद्ध हुआ उसमें कर्णसिंह ने किसी ओर से भाग नहीं लिया। इसके विपरीत अन्य पुस्तकों में यह लिखा मिलता है कि कर्णसिंह के दो पुत्र (केसरीसिंह तथा पद्मसिंह जो शाही सेवक थे) तख़्त के लिए होनेवाली लड़ाइयों में औरंगज़ेब की ओर से शामिल थे। उनमें से एक केसरीसिंह को उसकी वीरता के लिए औरंगज़ेब ने लाहौर से दिल्ली आते समय मार्ग में मीनाकारी के काम की एक तलवार भेंट की, जो राज्य में अब तक सुरक्षित है (पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३४)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग १, पृ० ४०। उमराए हनूद; पृ० २१८। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; (हिन्दी); पृ० ८८। सर जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० २९-३० (अगस्त ई० स० १६६० में फौज भेजना लिखा है)।

सन् जुलूस ६ (वि० सं० १७२३ = ई० स० १६६६) में बादशाह ने कर्णसिंह को दिलेरखां दाऊदज़ई के साथ चांदा के ज़मींदार[1] को दंड देने के लिए भेजा। फिर कर्णसिंह से कुछ ऐसी बात हो गयी, जिससे उसे बादशाह का कोप-भाजन बनना पड़ा। बादशाह उससे इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने उसकी जागीर तथा मनसब ज़ब्त कर लिया और उसके स्थान में उसके ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का राज्य तथा ढाई हज़ार जात एवं दो हज़ार सवार का मनसब दिया[2]।

कर्णसिंह का चांदा के ज़मींदार पर भेजा जाना

फ़ारसी तवारीख़ों के उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि बादशाह कर्णसिंह पर बहुत ही रुष्ट हुआ, परंतु उसका कारण उनमें कुछ भी नहीं बतलाया है। ख्यातों में इस घटना से सम्बन्ध रखने-वाला जो वृत्तान्त दिया है उससे इसपर बहुत प्रकाश पड़ता है अतएव उसका उल्लेख करना आवश्यक है।

कर्णसिंह को 'जंगलधर बादशाह' का ख़िताब मिलना

वैसे तो कई मुसलमान बादशाहों की अभिलाषा इतर जातियों को मुसलमान बनाने की रही थी, परन्तु औरंगज़ेब इस मार्ग में आगे बढ़ना चाहता था। उसने हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए काशी आदि अनेक तीर्थ-

(१) इसका असली नाम जलालख़ां था और यह बहादुरख़ां रुहेला का छोटा भाई था। इसे आलमगीर के समय में पांच हज़ारी मनसब प्राप्त था। हिजरी सन् १०९४ (वि० सं० १७३९-४० = ई० स० १६८३) में दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई।

(२) उमराए हनूद; पृ० २९९। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४९८।

औरंगज़ेब के सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउल्अव्वल (हि० स० १०७८ = वि० सं० १७२४ आश्विन वदि ४ = ई० स० १६६७ ता० २७ अगस्त) के फ़रमान से भी फ़ारसी तवारीख़ों के उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। इस फ़रमान से पाया जाता है कि बादशाह कर्णसिंह से अत्यन्त ही अप्रसन्न हो गया था, इसलिए उसने बीकानेर का राज्य और मनसब अनूपसिंह के नाम कर दिया।

स्थानों के देवमंदिरों को नष्ट कर वहां मसजिदें बनवाना आरंभ किया। ऐसी प्रसिद्धि है कि एक समय बहुतसे राजाओं को साथ लेकर बादशाह ने ईरान (?) की ओर प्रस्थान किया और मार्ग में अटक में डेरे हुए। औरंगज़ेब की इस चाल में क्या भेद था, यह उसके साथ जानेवाले राजपूत राजाओं को मालूम न होने से उनके मन में नाना प्रकार के सन्देह होने लगे, अतएव आपस में सलाहकर उन्होंने साहबे के सैय्यद फ़कीर को, जो कर्णसिंह के साथ था, बादशाह के असली मनसूबे का पता लगाने को भेजा। उस फ़कीर को अस्तखां से जब मालूम हुआ कि बादशाह सब को एक दीन करना चाहता है, तो उसने तुरंत इसकी ख़बर कर्णसिंह को दी। तब सब राजाओं ने मिलकर यह राय स्थिर की कि मुसलमानों को पहले अटक के पार उतर जाने दिया जाय, फिर स्वयं अपने-अपने देश को लौट जायें। बाद में ऐसा ही हुआ। मुसलमान पहले ही पार उतर गये। इसी समय आंबेर से जयसिंह की माता की मृत्यु का समाचार पहुंचा, जिससे राजाओं को १२ दिन तक और रुक जाने का अवसर मिल गया, परन्तु उसके बाद फिर वही समस्या उत्पन्न हुई। तब सब के सब कर्णसिंह के पास गये और उन्होंने उससे कहा कि आपके बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। आप यदि सब नावें तुड़वा दें तो हमारा बचाव हो सकता है, क्योंकि ऐसा होने से देश को प्रस्थान करते समय शाही सेना हमारा पीछा न कर सकेगी। कर्णसिंह ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और धर्मरक्षा के लिए बादशाह का कोप-भाजन बनना पसन्द किया। निदान ऐसा ही किया गया और इसके बदले में समस्त राजाओं ने कर्णसिंह को 'जंगल-धर पादशाह' का ख़िताब दिया[1]। साहबे के फ़क़ीर को उसी दिन से

---

(१) जयपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

'बादशाह ने जयसिंह (मिर्ज़ा राजा) को कहा कि तुम सब राजाओं में बड़े हो, सो हम कहें वैसा करो। इसपर जयसिंह ने इस बात का भेद पाकर बादशाह को निवेदन किया कि सिर तो हमने बेचा, परन्तु धर्म बेचा नहीं। कई दिन पीछे सब राजाओं को साथ लेकर बादशाह अटक गया और राजाओं को आज्ञा दी कि सब अटक

उतरें। तब राजाओं ने जयसिंह के डेरे में इकट्ठे होकर सलाह की—बादशाह हमको अटक के पार क्यों ले जाता है, इसका कारण ठीक-ठीक ज्ञात नहीं। राजाओं ने जयसिंह से कहा कि इसका निश्चय आप से होगा। फिर जयसिंह ने सूरजमल भोमिये को बुला-कर सारे समाचार कहे। उसने कहा कि बादशाह तुम सब को अपने खाने में शामिल करेगा। यह बात जयसिंह ने राजाओं से कही तो उन्होंने मिलकर यह बात स्थिर की कि कल किसी बात की खुशी कर यहां डेरा रख दें और बादशाह को अटक पार हो जाने दें। फिर सब लोग अपने-अपने घर चल दें। बादशाह का हुक्म पहुंचा कि प्रातःकाल अटक के पार डेरा होगा। इसपर बीकानेर के राजा को कहलाया कि तुम खुशी करावो और यह बात प्रसिद्ध करो कि मेरे महाराजकुमार का जन्म हुआ है। तब उसने सब राजाओं के यहां सूचना दिलवा, उनको अपने यहां बुलवाये।

'जब यह ख़बर औरंगज़ेब ने सुनी और प्रातःकाल ही ताकीद की कि अवश्य हाज़िर हो, तो सब राजाओं ने मिलकर बादशाह से निवेदन कराया कि आप तो लवाजमे सहित अटक पार उतरें और हम सब कल हाज़िर होंगे। फिर सब मुसलमान तो अटक पार उतर गये और नावें इकट्ठी करवाकर आग लगवा दी। यह ख़बर बादशाह ने सुनी तो वह अपने वज़ीर के साथ बीकानेर के राजा के डेरे में आया। सब राजाओं ने उससे सलाम की। बादशाह ने कहा तुमने सब नावें जला दीं? तब सब राजाओं ने अर्ज़ किया कि आपने मुसलमान बनाने का विचार किया, इसलिए आप हमारे बादशाह नहीं और हम आपके सेवक नहीं। हमारा तो बादशाह बीकानेर का राजा है, सो जो वह कहेगा हम करेंगे, आपकी इच्छा हो वह आप करें। हम धर्म के साथ हैं, धर्म छोड़ जीवित रहना नहीं चाहते। बादशाह ने कहा — तुमने बीकानेर के राजा को बादशाह कहा सो अब वह जंगलपति बादशाह है। फिर उसने सब की तसल्ली कर कुरान बीच में रख सौगंध खाई कि अब ऐसी बात तुमसे नहीं होगी तथा तुम कहोगे वैसा करूंगा, तुम सब दिल्ली चलो, तब वे दिल्ली गये।'

(जयपुर के पुरोहित हरिनारायण, बी० ए० के
संग्रह की हस्तलिखित ख्यात से)।

कर्णसिंह को 'जंगलधर पातशाह' का ख़िताब मिलने की बात निर्मूल नहीं है (कारण चाहे जो हो), क्योंकि उसी के राज्यकाल में उसके विद्यानुरागी ज्येष्ठ कुंवर अनूपसिंह ने शुकसप्तति (शुकसारिका) नामक संस्कृत पुस्तक का राजस्थानी भाषा में अनुवाद कराया, जिसके अनुवादकर्त्ता ने कर्णसिंह को 'जंगल का पतसाह' लिखा है—

करि प्रणाम श्रीसारदा अपनी बुद्धि प्रमांण।
सुकसारिक वार्त्ता करूं द्यो मुझ अच्छर दान ॥ १ ॥

बीकानेर राज्य में प्रतिघर प्रतिवर्ष एक पैसा उगाहने का हक़ है। अनन्तर सब अपने-अपने देश चले गये[1]।

बादशाह को जब यह सारा समाचार विदित हुआ तो वह कर्णसिंह पर बहुत नाराज़ हुआ और दिल्ली लौटने पर उसने उसके ऊपर सेना भेज दी। बाद में औरंगज़ेब ने सेना को वापस बुला लिया और एक अहदी भेजकर कर्णसिंह को दरबार में बुलवाया। कर्णसिंह के कुछ साथियों की राय थी कि इस अवसर पर उसे स्वयं न जाकर अपने पुत्र अनूपसिंह को भेज देना चाहिये, परन्तु वीर कर्णसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया और वह स्वयं बादशाह की सेवा में गया। उसके साथ उसके दो पुत्र—केसरीसिंह तथा पद्मसिंह—भी गये। इसी बीच कर्णसिंह के अनौरस (पासवानिया) पुत्र वनमालीदास ने बीकानेर का राज्य मिलने के बदले मुसलमान हो जाने की अभिलाषा प्रकट की। बादशाह ने उसे आश्वासन देकर कर्णसिंह को दरबार में पहुंचते ही मरवा देने का प्रबन्ध किया[2], परन्तु कर्णसिंह के साथ केसरीसिंह तथा पद्मसिंह

बादशाह का कर्णसिंह को औरंगाबाद भेजना तथा उसकी जागीर अनूपसिंह को देना

विक्रमपुर सुहामणो सुख संपति की ठौर।
हिंदूस्थान हींदूधरम असो सहर न और ॥ २ ॥
तिहां तपै राजा करण जंगळ कौ पतिसाह।
ताको कुंवर अनोपसिंह दाता सूर दुवाह ॥ ३ ॥

(हमारे संग्रह की प्रति से)।

अतएव यह मानना पड़ेगा कि ख्यातों के इस कथन में सत्य का कुछ अंश अवश्य है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३५-६।

(२) जोनाथन स्कॉट (Jonathan Scott) ने दतिया के राजा के यहां से प्राप्त राय दलपत बुंदेला के एक सेवक की लिखी हुई फ़ारसी तवारीख़ के अंग्रेज़ी अनुवाद में हि० स० १०७७ (ई० स० १६६७=वि० सं० १७२४) के प्रसङ्ग में लिखा है—

"बीकानेर का स्वामी राव कर्ण जो दो हज़ारी मनसबदार और कुछ समय तक

के भी आ जाने से उसका अभीष्ट सिद्ध न हो सका। तब बादशाह ने कर्णसिंह को औरंगाबाद में भेज दिया, जहां वह अपने नाम से बसाये हुए कर्णपुरा में रहने लगा[1]।

दौलताबाद (दक्षिण) में क़िलेदार भी रहा, इन दिनों शाही कार्य की तरफ़ बेपरवाही रखता है और उसके बुरे बरताव का हाल बादशाह तक पहुंच चुका है। उसके पुत्र ने अपने बाप से विरोध किया है और इस समय बीकानेर की ज़मींदारी अपने लिए प्राप्त कर ली है। इससे राव कर्णसिंह दिन-दिन सेवा से विमुख रहता है और इस समय दिलेरख़ां के साथ होने पर भी उसकी आज्ञा की उपेक्षा करता है, क्योंकि उसकी आय बन्द हो गई है। रुपयों के अभाव में वह रात्रि के समय अपने राजपूतों सहित शाही छावनी को और कूच के समय आसपास के गांवों को भी लूटता है। इस बात का सबूत मिलने पर दिलेरख़ां ने अपनी बदनामी होने के भय से डरकर बादशाह को उसकी शिकायत लिखी, जिसपर यह आज्ञा मिली कि यदि उसका फिर ऐसा विचार हो तो उसे मार डालें अथवा क़ैद करें। राव भावसिंह हाड़ा (बूंदी का) के वकील ने, जो शाही दरबार में रहता था, यह ख़बर पाते ही तुरन्त अपने स्वामी को, जो दिलेरख़ां के साथ रहता था, सूचना दी।

"इस आज्ञा के पाते ही दूसरे दिन दिलेरख़ां शिकार का बहाना कर राव कर्ण के डेरों के पास होकर निकला और उससे कहलाया कि शिकार के आनन्द में वह सम्मिलित हो। राव कर्ण उसके छल से अपरिचित होने से हाथी पर सवार होकर अपने राजपूतों सहित ख़ान से जा मिला। सौभाग्य से राव भावसिंह इस बात की ख़बर पाते ही अपने राजपूतों सहित उसके पास पहुंचा और उसने अपने मित्र (कर्णसिंह) को ख़ान से अलग कर उसकी जान बचाई। दिलेरख़ां की इच्छा पूर्ण न होने से वह औरंगाबाद को चला गया, जहां यह दोनों राव (कर्णसिंह और भावसिंह) कुछ समय पीछे पहुंचे।"

(हिस्ट्री ऑव् दि डेकन; जि० २, पृ० १६-२०
सन् १७६४ ई० का लन्दन का संस्करण)।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३७-३८।

बादशाह औरंगज़ेब के सन् जुलूस ७ ता० १४ जमादिउस्सानी (हि० स० १०७५ = वि० सं० १७२१ माघ वदि १ = ई० स० १६६४ ता० २३ दिसंबर) के फ़रमान में भी लिखा है—'औरंगाबाद सूबे के अन्तर्गत बनवारी और कर्णपुर के ज़िले राव कर्ण के हैं।'

फ़ारसी तवारीख़ों में लिखा है कि औरंगाबाद पहुंचने के लगभग एक वर्ष बाद कर्णसिंह का देहांत हो गया[1]। कर्णसिंह की स्मारक छतरी के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १७२६ आषाढ सुदि ४ (ई० स० १६६६ ता० २२ जून) मंगलवार को उसकी मृत्यु हुई[2]। मृत्यु से पूर्व एक पत्र में उसने

मृत्यु

उपर्युक्त ज़िलों में उस (महाराजा कर्णसिंह) ने कर्णपुरा, केसरीसिंहपुरा और पद्मपुरा गांव नये बसाये थे। बीकानेर राज्य के पत्रों से ज्ञात होता है कि दक्षिण के इन दोनों परगनों में से एक गांव पनवाड़ी महाराजा अनूपसिंह के समय वि० सं० १७४३ (ई० स० १६८६) में वल्लभ संप्रदाय के औरंगाबाद के गोकुलजी विट्ठलनाथजी के मंदिर को भेंट कर दिया गया, जिसकी वार्षिक आय एक लाख दाम (ढाई हज़ार रुपये) थी। कर्णपुरा, केसरीसिंहपुरा और पद्मपुरा पर ई० स० १६०४ (वि० सं० १६६०) तक बीकानेर राज्य का अधिकार रहा। वर्त्तमान महाराजा साहब के समय में जब अंग्रेज़ सरकार ने औरंगाबाद की छावनी को बढ़ाना चाहा, तब इन गांवों को लेने की आवश्यकता समझ, इनके बदले में उतनी ही आय के पंजाब ज़िले के दो गांव, रत्ताखेड़ा और बावलवास तथा पचीस हज़ार रुपये बीकानेर राज्य को नक़द देकर इन्हें अपने अधिकार में कर लिया।

(१) उमराए हनूद; पृ० २६६। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ८६। बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' में भी कर्णसिंह का औरंगाबाद में मरना लिखा है (संख्या ११७)।

टॉड ने बीकानेर में उसका मरना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६), जो ठीक नहीं है। पाउलेट लिखता है कि कर्णसिंह की मृत्यु के समय चूरू का ठाकुर कुशलसिंह उसके पास था (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३८)।

(२) ············अथ संवत्सरेऽस्मिन् नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सं० १७२६ वर्षे शाके १५६१ प्र० महामांगल्यप्रदआसाढमासे शुक्लपक्षे तिथौ ४ भौमवारे······························ ·········श्रीकर्णः·········श्रीविष्णुपुरं प्राप्तः।

ख्यातों आदि में भी यही समय दिया है।

अनूपसिंह को बनमालीदास के षड्यन्त्रों से सावधान रहने को लिखा था[1]।

कर्णसिंह के आठ पुत्र हुए[2]—

राणियां तथा संतति

(१) रुक्मांगद चन्द्रावत की बेटी राणी कमलादे से अनूपसिंह। (२) खंडेला के राजा द्वारकादास की बेटी से केसरीसिंह। (३) हाड़ा बैरीसाल की बेटी से पद्मसिंह[3]। (४) श्रीनगर के राजा की पुत्री राणी अजबकुंवरी से मोहनसिंह—जन्म वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १६४६ ता० १७ मार्च)। (५) देवीसिंह। (६) मदनसिंह। (७) अजबसिंह तथा (८) अमरसिंह।

उसकी एक राणी उदयपुर के महाराणा कर्णसिंह की पुत्री थी[4]। उससे नंदकुंवरी का जन्म हुआ, जिसका विवाह रामपुरा के चंद्रावत हठीसिंह से हुआ था। जब महाराणा जगत्सिंह की माता (कर्णसिंह की राणी) जांबुवती सोरों की यात्रा को गई, तब नंदकुंवरी भी उसके साथ थी। वहां जब उस (जांबुवती) ने चांदी की तुला की, उस समय अपनी दोहिती नंदकुंवरी को भी अपने साथ तुला में बिठलाया था[5]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४७।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २००। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४१ और ४७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३८।

(३) यह कोंकण में काम आया (बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ११७)।

(४) यह विवाह महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के समय में हुआ था (मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० २, पृ० ८३०, टि० १)।

(५) बीकानेरेशकर्णस्य सुता राम पुरा प्रभोः।
हठीसिंहस्य सत्पत्नी उदारा नंदकुंवरी ॥ ४१ ॥
मातामह्या जांबुवत्या संगेरूप्यां तुलां व्यधात्।
पूर्वे वर्षे जांबुवत्या आज्ञया नंदकुंवरी ॥ ४२ ॥

राजप्रशस्तिमहाकाव्य; सर्ग ५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५६०।

मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० २, पृ० ८३८।

बीकानेर के शासकों में कर्णसिंह का स्थान बड़े महत्त्व का है, क्योंकि कट्टर मुग़ल शासक औरंगज़ेब से बीकानेर के राजाओं में सबसे पहले उसका ही सम्पर्क हुआ था। बादशाह शाहजहां के समय में उसका सम्मान बड़े ऊंचे दर्जे का था। फ़तहख़ां, शाहजी एवं परेंडे पर की चढ़ाइयों में उसने भी शाही सेना के साथ रहकर बड़ी वीरता दिखलाई थी। पीछे से जवारी का परगना लेने का निश्चय होने पर शाहजहां ने उसे ही वहां का शासक नियुक्त कर भेजा था। वह राजनीति का भी अच्छा ज्ञाता था। शाहजहां के बीमार पड़ने पर जब उसके चारों पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिए लड़ाइयां होने लगीं, उस समय वह अपने देश लौट गया और चुप-चाप युद्ध की गति-विधि देखने लगा। किसी एक का भी साथ देना, उसके असफल होने पर, कर्णसिंह के लिए हानिप्रद ही सिद्ध होता। शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ कई लड़ाइयों में रहने के कारण वह उसकी शक्ति से परिचित हो गया था। वह समझ गया था कि औरंगज़ेब ही अपने भाइयों में सबसे अधिक चतुर और बलशाली है, जिससे उसने अपने दो पुत्रों—पद्मसिंह और केसरीसिंह—को उसके संग कर दिया।

महाराजा कर्णसिंह का व्यक्तित्व

औरंगज़ेब की मनोवृत्ति और कुटिल चाल उससे छिपी न थी, इसलिए उसके सिंहासनारूढ़ होने पर वह उसकी तरफ़ से सदैव सतर्क रहा करता था। वह समय हिन्दुओं के लिए संकट का था। आये दिन मंदिर तोड़े जाते थे और हिन्दुओं को मुसलमान धर्म ग्रहण करने पर बाध्य किया जाता था। ख्यातों के कथन के अनुसार औरंगज़ेब की इच्छा हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने की थी, परंतु कर्णसिंह ने उसकी यह इच्छा पूरी न होने दी। ऐसी विपदापन्न दशा में धर्म और जातिप्रेम में रंगा हुआ कर्णसिंह ही उन(राजाओं)की सहायतार्थ सामने आया। इस साहसिक कार्य के लिए समस्त राजाओं ने मिलकर उसे 'जंगलधर पादशाह' की उपाधि दी, जो अब तक उसके वंश में चली आती है। बाद में बादशाह-द्वारा बुलवाये जाने पर सरदारों के मना करने पर भी वह अपने दो छोटे पुत्रों

के साथ दरबार में उपस्थित हुआ।

कर्णसिंह स्वयं विद्वान्, विद्वानों का आश्रयदाता और विद्यानुरागी राजा था। उसके आश्रय में कई ग्रंथ बने, जिनमें से कुछ का ब्योरा, जो हमें मालूम हो सका, नीचे लिखे अनुसार है—

(१) साहित्यकल्पद्रुम[1]—यह ग्रंथ कई विद्वानों की सहायता से कर्णसिंह ने बनाया।

(२) कर्णभूषण[2] (पंडित गंगानंद मैथिल रचित)।

---

(१) ॥ इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीशूरसिंहसुधोदधिसंभवश्रीकर्णसिंहविद्वत्संवर्द्धिते साहित्यकल्पद्रुमे अर्थालंकारनिरूपणं नाम दशमस्तबकः ॥ समाप्तश्चायं साहित्यकल्पद्रुमनिबंधः ॥ शाके १५८८ पराभवनामसंवत्सरे वैशाखशुद्ध ५ रविवारदिने लिखितं श्यामदास अंबष्ठ काशीकरेण मुकाम अवरंगाबाद कर्णपुरा मध्ये लिखितं ॥

अलंकार सम्बन्धी यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है और बड़े-बड़े ३८३ पत्रों में लिखा हुआ है। इसके प्रारंभिक भाग में महाराजा रायसिंह से लगाकर महाराजा कर्णसिंह तक का वंशविवरण भी दिया है।

(२) प्रारंभिक अंश—

······अस्ति स्वस्तिवहादृशां निवसतिर्लक्ष्म्या भुवोभूषणं
वीकानेरिपुरी कुबेरनगरीसौभाग्यनिंदाकरीः।
कैलासाचलचारुभास्वरपृथुप्रासादपालिद्युति-
व्याजेनोपहसत्युपर्युपगतां या राजधानी हरेः ॥
तत्रास्ते धरणीपतिः पृथुयशाः श्रीकर्ण इत्याख्यया
गोविंदाङ्घ्रियुगारविंदविलसच्चिन्तालिरत्युन्नतः।
राधेयभ्रममातमनि त्रिजगतां चित्ते स्थिरी कुर्वता
दीयंतेऽर्थिगणाय येन सततं हेमाश्वहस्त्यादयः ॥
आज्ञया तस्य भूमिन्द्रोर्न्यायकाव्यकलाविदः।
गंगानंदकवीन्द्रेण क्रियते कर्णभूषणं ॥

(३) काव्य डाकिनी[1] (पंडित गंगानन्द मैथिल रचित)।

(४) कर्णावतंस[2] (भट्ट होसिहक-कृत)।

(५) कर्णसन्तोष[3] (कवि मुद्गल-कृत)।

(६) वृत्तसारावली[4]।

ये ग्रंथ बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में अब तक विद्यमान हैं।

महाराजा अनूपसिंह

महाराजा कर्णसिंह के ज्येष्ठ कुंवर अनूपसिंह का जन्म वि० सं० १६९५ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १६३८ ता० ११ मार्च) को हुआ था[5]। उसके पिता की

अंतिम अंश—

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिंहकारिते मैथिलश्रीगंगानंदकविराजविरचिते कर्णभूषणे रसनिरूपणो नाम पंचमः परिच्छेदः ॥

(१) प्रारंभिक अंश—

काव्यदोषाय बोधाय कवीनां तमजानतां ।
गंगानंदकवीन्द्रेण क्रियते काव्यडाकिनी ॥

अंतिम अंश—

संवत् १७२२ वर्षे वैशाख सुदि ४ दिने शनिवारे ॥ श्रीबीकानयरे महाराजाधिराजमहाराजा श्री ७ कर्णसिंहजी विजयराज्ये ॥ श्री ॥ श्री महाराजकुमार श्री ७ अनूपसिंहजी पुस्तक लिखापिता ॥

(२, ३, ४) ऊपर लिखे हुए ६ ग्रन्थों में से केवल पहले ३ हमारे देखने में आये, जिनके मूल अवतरण ऊपर उद्धृत किये गये हैं। अंतिम ३ (संख्या ४, ५, ६) के नाम प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद के 'राजरसनामृत' (पृ० ४५-६) से लिये गये हैं।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४९१।

टॉड ने अनूपसिंह को चौथा पुत्र लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६), परन्तु उसका यह कथन कल्पित ही है, क्योंकि अन्य किसी तवारीख़ अथवा ख्यात से इस कथन की पुष्टि नहीं होती।

जन्म और गद्दीनशीनी

विद्यमानता में ही बादशाह ने उसे दो हज़ार ज़ात एवं डेढ़ हज़ार सवार का मनसब प्रदान कर बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया था[1]। वि० सं० १७२६ (ई० स० १६६९) में कर्णसिंह की मृत्यु हो जाने पर वह गद्दी पर बैठा और औरंगाबाद तथा बीजापुर का स्वामी बना रहा[2]। उसकी गद्दीनशीनी के समय बादशाह ने एक फ़रमान उसके पास भेजा, जिसमें भविष्य में योग्यतापूर्वक बीकानेर का राज्य-कार्य चलाने के लिए उसे लिखा[3]।

छत्रपति शिवाजी[4] के आतंक के कारण दक्षिण में बादशाह का

---

(१) औरंगज़ेब का सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल (हि० स० १०७८ = वि० स० १७२४ आश्विन वदि ४ = ई० स० १६६७ ता० २७ अगस्त) का फ़रमान।

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि मुहता दयालदास, कोठारी जीवनदास, वैद राजसी आदि के दिल्ली जाकर उद्योग करने से बादशाह ने बीकानेर का मनसब अनूपसिंह को दे दिया (जि० २, पत्र ४७)। पाउलेट लिखता है कि कुछ ही दिनों पीछे बीकानेर का मनसब आदि बादशाह ने बनमालीदास के नाम कर दिया, जिसपर अनूपसिंह दिल्ली गया, जहां जाने से उसका पैतृक मनसब फिर उसे ही मिल गया (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३८)। यह कथन कहां तक ठीक है, यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अन्य किसी तवारीख़ से इसकी पुष्टि नहीं होती। बनमालीदास का उल्लेख औरंगज़ेब के एक फ़रमान में आया है, पर उससे तो यही ज्ञात होता है कि शाही दरबार में उसका प्रवेश अनूपसिंह के ही कारण हुआ था। उक्त फ़रमान में स्पष्ट लिखा है कि उस कृपापात्र (अनूपसिंह) की सिफ़ारिश से ही उस (बनमालीदास)-का प्रवेश शाही दरबार में हुआ है (सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउलअव्वल का फ़रमान)।

(२) डा० जेम्स बर्जेस; दि क्रोनोलोजी ऑव् मॉडर्न इंडिया; पृ० ११८।

(३) सन् जुलूस १२ ता० २२ सफ़र (हि० स० १०८० = वि० सं० १७२६ श्रावण वदि ९ = ई० स० १६६९ ता० ११ जुलाई) का फ़रमान।

(४) इतिहास प्रसिद्ध मरहटा राज्य का संस्थापक—शाहजी का पुत्र। इसका जन्म वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६३० ता० १६ फ़रवरी) शुक्रवार को हुआ था।

प्रभुत्व जमना कठिन हो रहा था। सूरत की लूट के बाद शिवाजी ने एक बड़ी सेना एकत्र कर ली थी, जिससे बादशाह को अपनी नीति में परिवर्तन कर वि० सं० १७२७ पौष वदि ११ (ई० स० १६७० ता० २८ नवम्बर)[1] को

अनूपसिंह का दक्षिण में भेजा जाना

महाबतखां को दक्षिण में भेजना पड़ा[2]। इस अवसर पर महाराजा अनूपसिंह, राजा अमरसिंह आदि कई अन्य मनसबदारों को भी खिलअत आदि देकर बादशाह ने उसके साथ भेजा[3]। महाबतखां की अध्यक्षता में मुग़लों ने नवीन उत्साह से मरहटों पर आक्रमण किया। पहले उन्हें कुछ सफलता मिली और औंध तथा पट्टा पर अधिकार कर उन्होंने ई० स० १६७२ (वि० सं० १७२६) में साल्हेर को घेर लिया। इस समाचार के ज्ञात होते ही शिवाजी ने मोरोपन्त पिंगले तथा प्रतापराव गूजर को सैन्य एकत्र कर साल्हेर की रक्षार्थ जाने की आज्ञा दी। इधर महाबतखां ने भी इख़्लासखां के साथ अपनी अधिकांश सेना को मरहटों का अवरोध करने के लिए भेजा। मरहटी सेना दो भागों में होकर आगे बढ़ रही थी; प्रतापराव गूजर पश्चिम की ओर से बढ़ रहा था तथा मोरोपन्त पिंगले साल्हेर के पूर्व से। इख़्लासखां ने दोनों के बीच में पड़कर उनका नाश करने की चेष्टा की, परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल गया। प्रायः १२ घंटे की लड़ाई के बाद ही इख़्लासखां को भारी क्षति उठाकर रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा। बची हुई थोड़ी सी फ़ौज के बल पर साल्हेर को घेरने से कुछ लाभ निकलता न देख महाबतखां औरंगाबाद चला गया। साल्हेर को घेरने का नाशकारी परिणाम देखकर औरंगज़ेब विचलित हो गया, अतएव उसने तुरन्त

(१) सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० १६५।

(२) किंकेड एण्ड पारसनीज़; ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल; जि० १, पृ० २३४-५। डा० जेम्स बर्जेस; दि क्रोनोलॉजी ऑव् मॉडर्न इण्डिया; पृ० ११५।

(३) उमराए हनूद, पृ० ६३। मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ३०।

महाबतखां को वापस बुला लिया[1] और उसके स्थान में बहादुरखां[2] की नियुक्ति दिलेरखां के साथ दक्षिण में कर दी। महाराजा अनूपसिंह पूर्व की भांति ही उन अफ़सरों के साथ दक्षिण में रहा।

अनूपसिंह को बादशाह की तरफ़ से महाराजा का ख़िताब मिलना

प्रारंभ में, बहादुरखां दक्षिण में सुचारु प्रबन्ध न कर सका, परन्तु कुछ दिनों बाद अवसर पाकर मुग़लों ने डंडा राजापुरी (राजापुर) के बन्दरगाह में जाकर शिवाजी के बहुत से जहाज़ नष्ट कर डाले और उसके २०० नाविकों को बन्दी कर लिया। फिर उन्होंने डंडा राजापुरी पर आक्रमण किया, जहां का अध्यक्ष राघो बल्लाल अत्रे उनका सामना न कर सका। वि० सं० १७२६ पौष सुदि ६ (ई० स० १६७२ ता० १५ दिसम्बर) को बीजापुर के स्वामी अली आदिलशाह का देहांत हो गया। अली आदिलशाह के जीवनकाल में उसके राज्य के अधिकांश भाग पर मुग़लों और शिवाजी ने अधिकार कर लिया था। बीच में अली आदिल-शाह तथा शिवाजी में सन्धि स्थापित हो गई थी, पर उसके मर जाने पर शिवाजी ने उस सन्धि को तोड़कर पन्हाला पर पुनः अधिकार कर लिया। उसका वास्तविक उद्देश्य हुबली को लूटने का था, अतएव अन्नाजी दत्तो की अध्यक्षता में एक मरहटी सेना वहां भेजी गई, जिसने बीजापुर के

(१) किंकेड एण्ड पार्सनीज़; ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल; जि० १, पृ० २३५-७।

मुंशी देवीप्रसाद ने 'औरंगज़ेबनामे' में लिखा है कि महाबतख़ां आगरे से हुजूर में पहुंचकर दक्षिण के युद्ध में भेजा गया था, लेकिन पठानों से सलूक रखने के कारण वह पीछा बुला लिया गया (भाग २, पृ० ४०)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में भी शाहज़ादे मुअज़्ज़म के वकीलों (महाबतख़ां आदि) के स्थान में बहादुरख़ां की नियुक्ति दक्षिण में होना लिखा है (भाग २, पृ० ४२)। बहादुरख़ां औरंगज़ेब का धाय-भाई था। इसका पूरा नाम मलिकहुसेन था और यह मीर अबुल मआली ख़्वाफ़ी का पुत्र था। पीछे से इसे ख़ान-जहां बहादुर कोकल्ताश ज़फ़रजंग का ख़िताब मिला। ई० स० १६६७ (वि० सं० १७२४) में इसका देहांत हुआ।

सैनिकों को परास्त कर वहां खूब लूट मचाई। उस स्थान में अंग्रेज़ों का भी एक दलाल रहता था। इस लूट में अंग्रेज़ों का भी बड़ा नुकसान हुआ, जिसपर उन्होंने मरहटों से हरजाना मांगा। पूरा हरजाना न मिलने के कारण, उन्होंने मुग़लों के उधर आने पर मरहटों से फिर हरजाने की मांग पेश की। वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) में जब बीजापुरवालों ने पुर्तगाली तथा अंग्रेज़ों को लूटना आरम्भ किया तो शिवाजी ने बहादुरखां को धन देकर किसी ओर का पक्ष-ग्रहण न करने का वचन उससे ले लिया। फिर उस (शिवाजी) ने सेना सहित जल और स्थल दोनों मार्गों से बीजापुर पर स्वयं आक्रमण किया। पर्ली[1], सतारा, चन्दन, वन्दन, पांडवगढ़, नन्दगिरि, तथवाड़ा आदि[2] पर अधिकार करने के उपरान्त शिवाजी ने फोंदा[3] पर आक्रमण किया। मुसलमान सैनिक अपने इस अन्तिम आश्रय-स्थान की रक्षा करने में तत्पर थे। जिस समय शिवाजी उन्हें परास्त करने में व्यस्त था, सूरत के बन्दरगाह से मुग़ल बेड़े ने बाहर आकर काफ़ी उत्पात मचाया, परंतु मरहटों ने अंत में उन्हें भगा दिया।

फोंदा की बहुत दिनों तक रक्षा करने में समर्थ होने से उत्साहित होकर बीजापुरवालों ने पन्हाला[4] लेने की दृष्टि से बीजापुर के पश्चिमी प्रदेश के हाकिम अब्दुलकरीम को उधर भेजा। इस समय शिवाजी की ओर से अब्दुलकरीम[5] के मार्ग में पड़नेवाले स्थानों को लूटने के लिए प्रतापराव गूजर भेजा गया। इस कार्य में उसे इतनी सफलता मिली कि अब्दुल-करीम को मरहटों के आगे अवनत होना पड़ा और उनसे सुलह कर उस (अब्दुलकरीम) ने अपनी जान बचाई, पर बीजापुर पहुंचकर फिर उसने

(१) सतारा ज़िले में सतारा से ६ मील दक्षिण-पश्चिम में एक पहाड़ी गढ़।

(२) सतारा ज़िले के गढ़।

(३) पश्चिमी घाट का एक दुर्ग।

(४) बम्बई के कोल्हापुर राज्य का एक पहाड़ी क़िला।

(५) बहलोलख़ां का एक पठान सैनिक।

नई सेना एकत्र कर ली और पन्हाला की ओर अग्रसर हुआ। प्रतापराव गूजर ने अब्दुलकरीम को अपने हाथ से निकल जाने दिया था, इससे शिवाजी उसपर बहुत रुष्ट था और उसने उस(प्रतापराव)से कहला दिया था कि अब्दुलकरीम के सैन्य का नाश किये बिना वह अपना मुंह न दिखावे। अतएव प्रतापराव बिना आगा-पीछा विचारे ही इस बार अपने साथियों सहित अब्दुलकरीम पर टूट पड़ा, परन्तु मुसलमानों की शक्ति अधिक होने से वह इसी युद्ध में मारा गया। तब विजेता दूने उत्साह से आगे बढ़े पर हांसाजी मोहिते-द्वारा आक्रमण किये जाने पर उन्हें फिर बीजापुर लौट जाना पड़ा[1]।

फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि उपर्युक्त सब लड़ाइयों में अनूपसिंह मुसलमानों की ओर से बड़ी वीरता के साथ लड़ा था[2]। बहादुरख़ां ने दक्षिण में शिवाजी से लड़ने में बड़ी वीरता का परिचय दिया और बीजापुर तथा हैदराबाद के स्वामियों से पेशकशी वसूल करके शाही सेवा में भिजवाई, अतएव सन् जुलूस १८ ता० २४ रबीउलआख़िर (वि० सं० १७३२ श्रावण वदि ११ = ई० स० १६७५ ता० ८ जुलाई) को उसे ख़ानजहां बहादुर ज़फ़रजंग कोकलताश का ख़िताब एवं बहुतसा पुरस्कार दिया गया[3]। इस अवसर पर उसके साथ के अमीरों को भी ख़िलअत आदि दी गई तथा बीकानेर के अनूपसिंह को महाराजा का ख़िताब मिला[4]।

---

(१) किंकेड एण्ड पारसनीस; हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल; जि० 1, पृ० २३६-४३।

(२) उमराए हनूद; पृ० ६३। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ६०।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ५५।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३६। अर्सकिन; राजपूताने का गैज़ेटियर; पृ० ३२२।

उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने एक करोड़ से अधिक रुपये के व्यय से राजसमुद्र नामक विशाल तालाब बनवाकर वि० सं० १७३२ माघ सुदि ६ (ई० स० १६७६ ता० १४ जनवरी) को बड़ी धूमधाम से उसकी प्रतिष्ठा की। इस अवसर पर उस (राजसिंह) ने अपने बहनोई बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह (जो उस उत्सव में सम्मिलित न हो सका था) के लिए साढ़े सात हज़ार रुपये मूल्य का मनमुक्ति नाम का हाथी और पन्द्रह सौ रुपये मूल्य का सहणसिंगार घोड़ा तथा साढ़े सात सौ रुपये मूल्य का तेजनिधान नामक दूसरा घोड़ा एवं बहुतसे वस्त्राभूषण जोशी माधव के साथ बीकानेर भेजे[1]।

महाराणा राजसिंह का हाथी, घोड़े और सिरोपाव भेजना

कुछ समय बाद दिलेरखां[2] तथा बहलोलखां ने बादशाह के पास शिकायत कर दी कि बहादुरखां विपक्षियों से मिल गया है। इसपर बादशाह ने दिलेरखां को दक्षिण का हाकिम नियुक्त कर[3] बहादुरखां को वापस बुला लिया। अनूपसिंह पहले की तरह ही दक्षिण में रक्खा गया तथा उसने दक्षिण के युद्धों में दिलेरखां के साथ वीरता-पूर्वक भाग लिया[4]।

अनूपसिंह का दिलेरखां के साथ दक्षिण में रहना

---

(१) राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग; २०, श्लोक ६-१२।

(२) इसका वास्तविक नाम जलालखां था और यह बहादुरखां रोहिला का छोटा भाई था। इसकी मृत्यु दक्षिण में हि० स० १०९४ (वि० सं० १७४० = ई० स० १६८३) में हुई।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में भी लिखा है कि सन् जुलूस १९ ता० ४ ज़िलहिज्ज (हि० स० १०८६ = वि० सं० १७३२ फाल्गुन सुदि ६ = ई० स० १६७६ ता० २१ फ़रवरी) को दिलेरखां खिलअत आदि पाकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ (भाग २, पृ० ६१)।

स्टोरिआ डो मोगोर—इर्विन-कृत अनुवाद (जि० २, पृ० २३०) में भी बहादुरखां को हटाकर दिलेरखां की दक्षिण में नियुक्ति होना लिखा है।

(४) उमराए हनूद; पृ० ९३। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ९०।

दिलेरखां ने सर्वप्रथम गोलकुंडे पर आक्रमण किया[1], पर वहां उसे विशेष सफलता न मिली। फिर उसने बीजापुर पर आक्रमण कर आसपास के सारे प्रदेशों को उजाड़ दिया[2], परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ, तब बादशाह ने वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८०) में उसे वापस बुला लिया और दूसरी बार बहादुरखां को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया[3]।

अनूपसिंह की औरंगाबाद में नियुक्ति

सन् जुलूस २१ (वि० सं० १७३४-५=ई० स० १६७७-८) में अनूपसिंह बादशाह की ओर से औरंगाबाद का शासक नियुक्त हुआ। उसी वर्ष शिवाजी ने उधर उत्पात करना शुरू किया। इसपर अनूपसिंह अपनी सारी सेना एकत्र कर उसके मुक़ाबिले के लिए गया। इसी समय दक्षिण का हाकिम बहादुरखां भी अपनी सेना के साथ उसकी सहायता को जा पहुंचा, जिससे शिवाजी वहां से लौट गया[4]।

आदूणी के विद्रोहियों का दमन करना

अनन्तर अनूपसिंह की नियुक्ति आदूणी (दक्षिण) में हुई, जहां के विद्रोहियों का दमन करने के लिए वह सेना लेकर उनपर गया। इस चढ़ाई में उसको सफलता न मिली और उसकी पराजय होनेवाली ही थी कि उसी समय उसका भाई पद्मसिंह नई सेना के साथ उसकी सहायतार्थ आ गया, जिससे विपक्षी भाग गये[5]।

जिन दिनों अनूपसिंह आदूणी में था, उसके पास खारबारा और रायमलवाली के भाटियों के विद्रोही हो जाने का समाचार पहुंचा। अनूपसिंह

(१) सर जदुनाथ सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० २५२।

(२) वही; पृ० २५५-६।

(३) वही; पृ० २५८।

(४) उमराए हनूद; पृ० ६३। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ६०।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८।

इस घटना का फ़ारसी तवारीख़ों में उल्लेख नहीं है।

भाटियों पर विजय और अनूपगढ़ का निर्माण

ने उसी समय मुहता मुकंदराय को अपने पास बुलाकर इस विषय में सलाह की और चूडेर में गढ़ बनवाकर वहां अपना थाना स्थापित करने का निश्चय कर उसे अपने विश्वस्त आसामियों के नाम पत्र देकर बीकानेर भेजा। मुकन्दराय ने बीकानेर पहुंचकर सेना एकत्र की और खड्गसेन के पुत्र अमरसिंह के साथ भाटियों पर प्रस्थान किया। खारबारा, रायमलवाली तथा रांणीर के ठाकुरों ने चूडेर के गढ़ में जमा होकर बीकानेर की फ़ौज का सामना करने का प्रबंध किया। दो मास के घेरे के बाद जब गढ़ में रसद की कमी हुई तो भाटियों के सरदार जगरूपसिंह तथा बिहारीदास ने लखवेरा के जोहियों से रसद तथा अन्य युद्ध की सामग्री भिजवाने के लिए कहलाया। इसपर जोहिये रसद और बारूद, गोले आदि लेकर चूडेर की ओर अग्रसर हुए। जब बीकानेर की सेना में उनके निकट आने का समाचार पहुंचा तो मुकंदराय, अमरसिंह (भृंगोत) तथा भागचन्द[1] ने उनपर आक्रमण कर दिया। उधर गढ़ से भाटी भी रसद लेने के लिए बाहर निकले, परन्तु बीकानेरवालों के ठीक समय पर पहुंच जाने से वे कृतकार्य न हो सके और उनमें से बहुतसे मारे गये। रसद लानेवाले जोहिये भी मैदान छोड़कर भाग गये, जिससे रसद आदि सामान बीकानेरवालों के हाथ लग गया। कुछ दिन और बीतने पर जब अन्न के अभाव के कारण भाटी बहुत पीड़ित हुए, तो उन्होंने मुकन्दराय के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा और उनकी तरफ़ के जगरूपसिंह तथा बिहारीदास ने आकर एक लाख रुपया पेशकशी देने की प्रतिज्ञा कर सुलह कर ली। इधर मुकन्दराय के कुछ वैरियों ने जगरूपसिंह तथा बिहारीदास के पास इस आशय का पत्र भेजा कि मुकन्दराय का उद्देश्य वास्तव में भाटियों के साथ धोखा करना है, अतएव उससे सन्धि करने के बदले उसे मार देने में ही भाटियों का कल्याण है। इसका परिणाम जो कुछ भी हो उससे बचाने का, पत्र लिखनेवालों ने अपने

(१) यह भाटी था और इस लड़ाई में अनूपसिंह का सहायक हो गया था।

पत्र में भाटियों को पूरा पूरा विश्वास दिलाया था, परन्तु उन्होंने इस पत्र पर विश्वास न किया और उसे मुकन्दराय को दिखा दिया। पांच दिन पश्चात् दंड के ५०००० रुपये लेकर मुकन्दराय ने भाटियों को आश्वासन दिया कि शेष आधा मैं माफ़ करा दूंगा। यह आश्वासन प्राप्तकर तथा बढ़े हुए खर्च को घटाने के विचार से भाटियों ने जोहियों एवं अधिकांश भाटियों को वहां से विदा कर दिया। फलस्वरूप गढ़ के भीतर भाटियों की शक्ति बहुत कम हो गई। ऐसा अच्छा अवसर देखकर मुकन्दराय और अमरसिंह अपनी बात से बदल गये और उन्होंने आधी रात के समय भाटियों पर आक्रमण कर दिया। शक्ति कम तथा रात्रि का समय होने के कारण भाटी इस आक्रमण का सामना न कर सके और जगरूपसिंह, बिहारीदास आदि सब के सब मारे गये। गढ़ पर अनूपसिंह की सेना का अधिकार हो गया। पीछे वि० सं० १७३५ (ई० स० १६७८) में उस स्थान पर एक नये गढ़ का निर्माण हुआ, जिसका नाम अनूपगढ़ रक्खा गया। जब यह खबर अनूपसिंह के पास पहुंची तो उसने अपनी ओर के वीर विजेताओं के लिए सिरोपाव तथा आभूषण आदि पुरस्कार में भेजे। इस युद्ध में भागचन्द भाटी बीकानेरवालों का सहायक हो गया था, अतएव खारबारा की जागीर उसके नाम कर दी गई[1]।

खारबारा का अन्तर-कलह

खारबारा की जागीर भागचन्द के नाम कर देने का तात्कालिक परिणाम हानिकारक ही सिद्ध हुआ, क्योंकि कुछ ही दिनों बाद बिहारीदास के पुत्र ने जोहियों की सहायता से खारबारा पर आक्रमण कर दिया और उस प्रदेश का सारा उत्तरी भाग उजाड़ डाला। इसपर महाजन के ठाकुर अजबसिंह ने अनूपसिंह के पास प्रार्थना करवाई कि यदि खारबारा मुझे दे दिया जाय तो मैं बीकानेर की सीमा सतलज तक पहुंचा दूं। उक्त प्रदेश के उसे मिलते ही भागचन्द के उत्तराधिकारी ने जोहियों से सहायता प्राप्तकर उसपर

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ३९-४०।

आक्रमण कर दिया, फलतः महाजन का ठाकुर मारा गया और उसका पुत्र बन्दी कर लिया गया, जो छोटी अवस्था का होने के कारण बाद में छोड़ दिया गया। पीछे से जब वह बड़ा हुआ तो उसने अपने पिता को मारने का बदला जोहियों को मारकर लिया। कहा जाता है कि उसी दिन से जोहिये पूरे तौर से बीकानेर के अधीन हो गये। बीच में एक बार उन्होंने विद्रोह किया था और हयातखां भट्टी, जो भटनेर का स्वामी था, उनसे मिलकर कुछ दिनों के लिए स्वतन्त्र हो गया था[1]।

महाराजा अनूपसिंह का जोधपुर का राज्य अजीतसिंह को दिलाने के लिए बादशाह से निवेदन कराना

वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह का जमरूद में देहांत हो गया। तब बादशाह ने जोधपुर खालसा कर लिया और उसके पुत्र अजीतसिंह को, सरदारों आदि के बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी, जोधपुर का राज्य नहीं दिया। इसपर महाराजा अनूपसिंह और रतलाम के स्वामी रामसिंह के वकीलों ने अपने-अपने राजाओं की तरफ़ से बादशाह से निवेदन किया कि जोधपुर अजीतसिंह को मिल जाना चाहिये[2], परन्तु बादशाह महाराजा जसवंतसिंह से नाराज़ था, इसलिए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई[3]।

बनमालीदास को मरवाना

अनूपसिंह के अनौरस (पासवानिये) भाई बनमालीदास ने बादशाह की सेवा में रहकर वहां के एक कार्यकर्त्ता सय्यद हसनअली से बड़ी घनिष्ठता पैदा कर ली थी, जिसकी सिफ़ारिश पर बादशाह ने पीछे से बीकानेर का आधा मनसब उस (बनमालीदास) को प्रदान कर दिया। तब कुछ फ़ौज साथ लेकर बनमालीदास बीकानेर गया और पुराने गढ़ के पास ठहरा। राज्य की ओर से उसका अच्छा सत्कार किया गया, परन्तु बनमालीदास तो मुसल-

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४०।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १६।

(३) वही; जि० २, पृ० १६।

मान हो गया था, अतएव उसने वहां के निवासियों की भावनाओं का रत्ती भर भी ध्यान न करते हुए लक्ष्मीनारायण के मंदिर के निकट बकरे मरवाये। जब अनूपसिंह के पास इसकी खबर पहुंची तो उसने मुहता दयालदास तथा कोठारी जीवनदास को उसके पास भेजकर कहलाया कि अपने पूर्वजों के बनवाये हुए इस देवमंदिर के निकट पशु मरवाना उचित नहीं है, परन्तु बनमालीदास इसपर अधिक क्रुद्ध हो उठा और उसने उत्तर दिया कि मेरी जो मर्ज़ी आयेगी मैं करूंगा। अनन्तर उसने मूंधड़ा रघुनाथ आदि खज़ांचियों को बुलाकर पट्टा-बही लाने को कहा। जब उन्होंने ऐसा करने से इनकार किया तो उसने उन्हें क़ैद कर लिया। अनूपसिंह के पास इसकी ख़बर पहुंचने पर उसने उदैराम अहीर से बनमालीदास को मरवाने की सलाह की। उदैराम यह कार्य-भार अपने ऊपर ले बनमालीदास के पास पहुंचा और थोड़े समय में ही उसने उससे खूब मेल-जोल पैदा कर लिया। फिर चंगोई के पास उसका गढ़ बनवाने का विचार देख उदैराम ने वह स्थान एवं बीकानेर के आधे गांवों का रुक्का अनूपसिंह से लिखवाकर बनमालीदास को दे दिया। बनमालीदास उदैराम की इस सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ और कुछ समय बाद चंगोई चला गया[1]।

अनूपसिंह का एक विवाह वाय के सोनगरे लक्ष्मीदास की पुत्री से हुआ था। निर्धनता के कारण दहेज देने में समर्थ न होने से उसने अनूपसिंह से कहा था कि यदि कभी अवसर आया तो मैं आपकी सेवा करने से पीछे न हटूंगा। इस समय बनमालीदास को मारने का कार्य अनूपसिंह ने लक्ष्मीदास को बुलाकर उसे ही सौंपा और उसकी सहायता के लिए राजपुरा के बीका भीमराजोत को उसके साथ कर दिया। कुछ दिनों बाद दोनों अनूपसिंह के विद्रोहियों के रूप में चंगोई में बनमालीदास के पास पहुंचे। अनूपसिंह ने इस सम्बन्ध में बनमालीदास को सचेत करते हुए एक पत्र उसके पास भेज दिया था, परन्तु इससे उसने और

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४१।

भी उत्तेजित हो उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। अनन्तर लक्ष्मीदास ने उस (बनमालीदास) से अर्ज़ की कि मैं साथ में एक डोला लाया हूं; यदि आप विवाह कर लें तो बड़ा उपकार हो। बनमालीदास के स्वीकार करने पर, एक दासी-पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया गया, जिसने विवाह की रात्रि को ही पूर्व आदेशानुसार उसको शराब में संखिया मिलाकर पिला दिया, जिससे उसी समय उसकी मृत्यु हो गई। बनमालीदास के साथ एक नबाब भी बीकानेर गया था। जब बादशाह से सब हाल कह देने का उसने भय दिखलाया तो एक लाख रुपया देकर उसका मुंह बन्द कर दिया गया, जिससे उसने बादशाह को यही सूचित किया कि बनमालीदास स्वाभाविक मृत्यु से मरा है। इस प्रकार इस घटना से अनूपसिंह पर बादशाह की कुछ भी नाराज़गी नहीं हुई[1]।

अनूपसिंह का मोरोपन्त पर भेजा जाना

वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में आहोंत के क़िलेदार सैय्यद नजाबत ने बादशाह के पास सूचना भेजी कि मरहटों की एक बड़ी सेना शिवाजी के सेवक मोरोपन्त की अध्यक्षता में शाही मुल्क में प्रवेश कर माहू एवं तरबंक के गढ़ों तक जा पहुंची है। उसका उद्देश्य चतरसंघी की पहाड़ियों को सुदृढ़ करने का है। इससे उधर की प्रजा की बहुत हानि होने की संभावना थी; अतएव बादशाह ने अनूपसिंह के पास फ़रमान भेजकर सूचना भेजी कि वह उधर जाकर उनका दमन करे और उन्हें शाही मुल्क की सीमा से बाहर कर दे[2]।

हिजरी सन् १०६१ ता० २४ रबीउलआख़िर (वि० सं० १७३७ ज्येष्ठ वदि ११ = ई० स० १६८० ता० १४ मई) को राजगढ़ में शिवाजी

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४९६।

(२) औरंगज़ेब के पुत्र शाह आलम का सन् जुलूस २१ ता० १४ रमज़ान (हि० स० १०९० = वि० सं० १७३६ कार्तिक वदि १ = ई० स० १६७६ ता० १० अक्टोबर) का अनूपसिंह के नाम का निशान।

का देहांत हो गया[1]। उस(शिवाजी)के साथ शाही सेना की जितनी लड़ाइयां हुई, प्रायः उन सबों में अनूपसिंह भी सम्मिलित था और उसने क्षत्रियोचित वीरता का परिचय देकर राजपूतों के इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

बीजापुर का स्वामी सिकन्दर राज्य-कार्य चलाने में सर्वथा अयोग्य था। सीदी मसऊद, अब्दुलरऊफ़ और शरज़ा आदि उसकी अयोग्यता से लाभ उठाकर अपना फ़ायदा कर रहे थे। बादशाह का इरादा प्रारम्भ में बीजापुर पर आक्रमण करने का न था, परन्तु अब शम्भा का उपद्रव बढ़ने की आशंका हुई तो उधर चढ़ाई करना आवश्यक हो गया। अतएव वि० सं० १७३८ श्रावण सुदि ८ (ई० स० १६८१ ता० १३ जुलाई) को बादशाह ने इस आशय का एक पत्र शरज़ाख़ां के पास भेजा कि शाही सेना शम्भा को दंड देने के लिए भेजी जा रही है, जिसकी उसे हर प्रकार से सहायता करनी चाहिये। बीजापुर की शाहज़ादी शहरबानू ने भी, जिसका विवाह शाहज़ादे आज़म के साथ हुआ था, अपने ता० १८ जुलाई (श्रावण सुदि १३) के पत्र में बीजापुरवालों को शाही सेना की सहायता करने के लिए लिखा था, परन्तु इन पत्रों का उन्होंने कोई उत्तर न दिया। इससे निश्चित हो गया कि उनकी सहानुभूति शम्भा के साथ थी, अतएव वि० सं० १७३८ (ई० स० १६८२ जनवरी) में रुहुल्लाख़ां[2] बीजापुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया, पर उसकी अध्यक्षता में भेजी हुई सेना अधिक हानि पहुंचाये बिना ही लौट आई। कुछ दिनों बाद पहिले से बड़ी फ़ौज के साथ शाहज़ादे आज़म को उधर भेजा। उसने धरूर के क़िले पर अधिकार कर आदिलशाही की राजधानी (बीजापुर) की ओर बढ़ने का प्रयत्न

बीजापुर की चढ़ाई और अनूपसिंह

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ६८।

(२) यह औरंगज़ेब का मीरबख़्शी था। ई० स० १६९२ ता० ८ अगस्त (वि० सं० १७४९ प्रथम भाद्रपद सुदि ७) को दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई।

किया, पर इस बीच में ही वह पीछा बुला लिया गया। वर्षाऋतु व्यतीत हो जाने पर वह फिर उधर भेजा गया, परन्तु पीछे से वह नासिक में बदल दिया गया। वि० सं० १७४० मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १६८३ ता० १३ नवम्बर) को बादशाह स्वयं अहमदनगर में पहुंच गया। उधर सिकन्दर ने भी भीतर ही भीतर अपनी रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लिया और अपने पड़ोसी राज्यों के पास सहायता के लिए पत्र भेजे। मुग़ल सेना ने आगे बढ़कर वि० सं० १७४२ चैत्र सुदि ७ (ई० स० १६८५ ता० १ अप्रेल) को बीजापुर घेरने का कार्य आरम्भ कर दिया। बादशाह ने भी इस अवसर पर निकट रहना उचित समझा, अतएव वि० सं० १७४२ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६८५ ता० २६ अप्रेल) को अहमदनगर से रवाना होकर ज्येष्ठ सुदि १ (ता० २४ मई) को वह भी शोलापुर पहुंच गया[1]। कुछ दिनों वहां ठहरने के उपरान्त हि० स० १०९७ ता० २ शाबान (वि० सं० १७४३ आषाढ सुदि ३ = ई० स० १६८६ ता० १४ जून) को बादशाह आगे बढ़ा। ता० १४ शाबान (श्रावण वदि १ = ता० २६ जून) को शाहज़ादा आज़म तथा बेदारबख़्त[2] उसकी सेवा में उपस्थित हो गये, जिन्हें खिलअत आदि दी गई। इसी अवसर पर बहादुरख़ां तथा महाराजा अनूपसिंह भी शाही सेवा में उपस्थित हो गये। वहां से प्रस्थान कर ता० २१ शाबान (श्रावण वदि ८ = ता० ३ जुलाई) को बीजापुर से ३ कोस दूर रसूलपुर में बादशाह के डेरे हुए[3]।

बीजापुर की इस चढ़ाई में आरम्भ से ही शाहज़ादे शाह आलम ने, जो बादशाह के साथ था, बीजापुर तथा गोलकुंडे के स्वामियों से मैत्री का भाव बनाये रक्खा और सिकन्दर से पत्रव्यवहार भी किया। बादशाह को जब इसका पता लगा तो उसका दिल अपने ज्येष्ठ पुत्र की ओर से

(१) सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३००-१२।

(२) आज़मशाह का पुत्र।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ३३।

हट गया[1]। जब दो मास और १२ दिन[2] तक तोपों और बन्दूकों की मार से बीजापुर के बहुतसे आदमी मारे गये और क़िला तोड़ने का सारा प्रबन्ध मुग़लों ने कर लिया, तब तो सिकन्दर और उसके साथियों को पराजय का पूरा भय हो गया। अधिक युद्ध करने में हानि की संभावना ही विशेष थी, अतएव वि० सं० १७४३ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १६८६ ता० १२ सितम्बर[3]) को सिकन्दर ने आत्मसमर्पण कर दिया। बादशाह ने उसके क़सूर माफ़ कर दिये और ख़िलअत आदि देकर एक लाख रुपया सालाना उसके लिए नियत कर दिया[4]।

उसी वर्ष बादशाह ने अनूपसिंह को सक्खर का शासक नियुक्त कर उधर भेज दिया[5]।

---

(१) सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३१६-२०।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ३५।

(३) मुंशी देवीप्रसाद ने 'औरंगज़ेबनामे' में ता० १३ सितंबर दी है (भाग ३, पृ० ३५)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ३५। सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० ४, पृ० ३२३।

मुंतख़बुल्लुबाब (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० ३२३) में लिखा है कि सिकन्दर दौलताबाद में क़ैद रक्खा गया।

ऊपर आये हुए वर्णन के विरुद्ध ख्यात में लिखा है कि जब बीजापुर का नवाब सिकन्दर विद्रोही हो गया तो अनूपसिंह शाही सेना के साथ उसपर भेजा गया। एक वर्ष तक घेरा रहने पर जब गढ़ में सामान का अभाव हो गया तो सिकन्दर बाहर आकर लड़ा और क़ैद कर लिया गया। बादशाह की आज्ञानुसार सिकन्दर दौलताबाद में रक्खा गया (दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४७-८)। ख्यात का यह कथन कुछ बढ़ाकर लिखा हुआ जान पड़ता है, परन्तु जैसा कि मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' से प्रकट है, अनूपसिंह बीजापुर की इस चढ़ाई में बादशाह के साथ अवश्य था।

(५) उमराए हनूद; पृ० ६३। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० १०। मुंशी देवीप्रसाद कृत 'औरंगज़ेबनामे' (भाग ३, पृ० ३८) में सन् जुलूस ३० ता० ६ ज़िलहिज (हि० स० १०९७ = वि० सं० १७४३ कार्तिक सुदि ८ =

वि० सं० १७४२ (ई० स० १६८५) में जब बादशाह बीजापुर पर आक्रमण करने में व्यस्त था, उसके पास गोलकुंडे के स्वामी अबुलहसन के भी विपरीत हो जाने का समाचार पहुंचा। इसपर उसने उसी समय शाह आलम (शाहज़ादा) को एक विशाल सेना के साथ हैदराबाद पर भेजा। गोलकुंडे की सेना ने शाही फ़ौज को रोकने का प्रयत्न किया, पर पीछे से अफ़सरों में मतभेद हो जाने के कारण, वह सेना लौट गई। अनन्तर शाह आलम के प्रयत्न से बादशाह और अबुलहसन के बीच सन्धि स्थापित हो गई। वि० सं० १७४३ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १६८६ ता० १२ सितम्बर) को बीजापुर विजय करने के बाद बादशाह की दृष्टि फिर गोलकुंडे की ओर गई। गोलकुंडे की विजय के बिना दक्षिण की विजय अधूरी ही रहती थी, अतएव वि० सं० १७४३ फाल्गुन वदि १० (ई० स० १६८७ ता० २८ जनवरी) को बादशाह ससैन्य गोलकुंडे के निकट जा पहुंचा। इसपर अबुलहसन ने क़िले में आश्रय लिया, जिससे हैदराबाद पर आसानी से मुग़लों का अधिकार हो गया। कुलीचख़ां[1] की अध्यक्षता में मुग़ल सेना ने गढ़ में घुसने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी समय एक गोला लग जाने से उसकी मृत्यु हो गई। तब बादशाह ने अधिक दृढ़ता से घेरे का कार्य आगे बढ़ाया।

औरंगज़ेब की गोलकुंडे पर चढ़ाई

शाह आलम, बादशाह की इस चढ़ाई से प्रसन्न नहीं था, क्योंकि पहिले सन्धि स्थापित करने में उसी का हाथ था और अब उसी संधि का उल्लंघन किया जा रहा था। अबुलहसन के दूतों और उसके बीच गुप्त रीति से फिर सन्धि के विषय में बात-चीत चल रही थी। जब बादशाह को इस बात की ख़बर हुई तो उसने शाह आलम तथा उसके पुत्रों

ई० स० १६८६ ता० १४ अक्टोबर) को अनूपसिंह का सक्खर की क़िलेदारी पर जाना लिखा है। वीरविनोद; (जि० २, प्रकरण ९, पृ० ७०९) में भी इसका उल्लेख है।

(१) इसका वास्तविक नाम आबिदख़ां था और यह ग़ाज़ीउद्दीनख़ां फ़ीरोज़जंग प्रथम का पिता तथा हैदराबाद के सुप्रसिद्ध निज़ामुल्मुल्क आसफ़ज़ाद का दादा था।

को धोखे से बुलाकर बन्दी कर लिया[1]। लेकिन इतने ही से बाधाओं का अन्त नहीं हो गया। मुग़ल सेना के कितने ही शिया तथा सुन्नी अफ़सर भी यह नहीं चाहते थे कि एक मुसलमानी राज्य का इस प्रकार नाश किया जाय और उनमें से अधिकांश ने अपने-अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया तो भी गढ़ को तोड़ने का कार्य जारी रहा। वि० सं० १७४४ ज्येष्ठ सुदि १४ (ता० १६ मई) को फ़ीरोज़जंग ने गढ़ लेने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली। इसी बीच अकाल पड़ जाने से मुग़ल सेना की बहुत हानि हुई। गोलकुंडे की फ़ौज ने भी ऐसे अवसर से लाभ उठा, कई बार उन्हें पीछे हटाया, परन्तु औरंगज़ेब अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ। इस प्रकार आठ महीने[2] बीत गये, पर क़िले में मुग़ल सेना का प्रवेश न हो सका। इस समय एक ऐसी बात हो गई, जिससे क़िला बिना युद्ध और रक्तपात के मुग़लों के अधिकार में आ गया। बीजापुर की विजय के बाद अब्दुल्ला पानी[3] (सरदारखां) मुग़ल सेना में भर्ती हो गया था और इस चढ़ाई में भी वह साथ था। किसी कारणवश वह बीच में गोलकुंडेवालों का सहायक हो गया था। अब फिर वह मुग़ल सेना से आ मिला, जिसकी सहायता से वि० सं० १७४४ आश्विन वदि १० (ई० स० १६८७ ता० २१ सितम्बर) को रुहल्लाख़ां गढ़ में घुस गया। शाहज़ादा आज़म भी दूसरी ओर से फ़ौज लेकर जा पहुंचा। इस अवसर पर गोलकुंडा के अब्दुर्रज़्ज़ाक ने सच्ची स्वामिभक्ति और वीरता का परिचय दिया, परन्तु उस एक से क्या हो सकता था? उसके घायल हो जाने पर अबुलहसन के लिए आत्मसमर्पण करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहा। तब बादशाह

---

(१) मनूकी; स्टोरिया डो मोगोर—इर्विन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०३-४।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में ६ महीना दिया है (भाग ३, पृ० ४१)। दयालदास की ख्यात में घेरा रहने की अवधि ६ महीने दी है (जि० २, पत्र ४८)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के 'औरंगज़ेबनामे' में इसका नाम तीरंदाज़ख़ां दिया है (भाग ३, पृ० ४८)।

ने ५०००० रु० सालाना नियत कर उसे दौलताबाद में क़ैद कर दिया[1]।

गोलकुंडे की इस चढ़ाई के उपर्युक्त वर्णन में किसी हिन्दू राजा का नाम नहीं आया, परन्तु ख्यात के कथनानुसार इस चढ़ाई में अनूपसिंह ने भी भाग लिया था। दयालदास लिखता है—'जब गोलकुंडे का स्वामी तानाशाह[2] (?) विद्रोही हो गया तो औरंगज़ेब स्वयं सेना लेकर उसपर गया, परंतु नौ मास तक गढ़ को घेरे रहने और गोलों की वर्षा करने पर भी, जब कोई फल न निकला तो बादशाह ने दीवान इस्तखां के पुत्र ज़ुल्फ़िक़ारखां को, जो उन दिनों पेशावर में लड़ रहा था, सेना सहित दक्षिण में आने को लिखा। इसपर वह (ज़ुल्फ़िक़ारखां) अनूपसिंह को भी साथ लेता हुआ बड़ी सेना के साथ गोलकुंडे पहुंचा और उन दोनों ने उस युद्ध में काफ़ी भाग लिया। अनन्तर तानाशाह पकड़ा गया और अनूपसिंह की वीरता के लिए बादशाह ने उस (अनूपसिंह) का मनसब बढ़ाकर तीन हज़ारी[3] कर दिया[4]।'

ख्यात और गोलकुंडे की चढ़ाई

ख्यात का उपर्युक्त कथन अतिरंजित अवश्य है, परन्तु यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सत्य से रहित नहीं है। गढ़ पर बहुत दिनों तक घेरा रहने पर भी विफल होने पर अधिक संभव तो यही है कि बादशाह ने सहायता के लिए और सेना बुलवाई हो। दक्षिण की अधिकांश चढ़ाइयों में अनूपसिंह शाही सेना के साथ था जैसा कि ऊपर

(१) सरकार; शॉर्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० २७१-८५। मनुकी; स्टोरिया डो मोगोर—इर्विन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०१-८। मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग ३, पृ० ४०-४१।

(२) संभव है तानाशाह से ख्यातकार का आशय गोलकुंडे के स्वामी अबुलहसन से हो, क्योंकि वही उस समय गोलकुंडे का स्वामी था और फ़ारसी तवारीख़ों से औरंगज़ेब का उसी पर जाना पाया जाता है।

(३) इसकी अन्य किसी तवारीख़ से पुष्टि नहीं होती।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८।

लिखा जा चुका है। इस घटना के पहिले ही अनूपसिंह की सक्खर में नियुक्ति हो गई थी, अतएव पेशावर से सहायक सेना आने पर उसका भी साथ रहना असंभव नहीं कहा जा सकता।

सन् जुलूस ३३ (वि० सं० १७४६ = ई० स० १६८९) में बादशाह ने अमतियाज़गढ़ अदूनी की हकूमत पर अनूपसिंह को नियत किया[1]। मआसिरुल् उमरा (हिन्दी) से पाया जाता है कि वहां पहले राव दलपत बुंदेला था, जिसकी जगह पर वह (अनूपसिंह) भेजा गया[2]। लगभग दो वर्ष बाद सन् जुलूस ३५ (वि० सं० १७४८ = ई० स० १६९१) में अनूपसिंह उस पद से हटा दिया गया[3]।

अनूपसिंह की आदूणी में नियुक्ति

अनूपसिंह का पहला विवाह कुमार अवस्था में ही वि० सं० १७०९ फाल्गुन वदि २ (ई० स० १६५३ ता० ४ फ़रवरी) को उदयपुर के महाराणा राजसिंह की बहिन के साथ हुआ था[4]। उस समय महाराणा ने अपने कुटुंब की और ७१ लड़कियों

विवाह और सन्तति

(१) उमराए हनूद; पृ० ६३।

(२) व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४०।

(३) उमराए हनूद; पृ० ६३। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४०।

(४) शते सप्तदशे पूर्णे नवाब्धेऽब्दे करोत्तुलां ॥
रूप्यस्य चक्रे या फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥ १ ॥
द्वितीया दिवसे······राजसिंहो नरेश्वरः ॥
राज्ञो भूराटियाकर्णनाम्नो जेष्ठाय सूनवे ॥ २ ॥
अनूपसिंहाय ददौ स्वसारं विधिना नृपः ॥
क्षत्रेभ्योदाद्बन्धुकन्या एकसप्ततिसंमिताः ॥ ३ ॥
(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ६)।

दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७२१ दिया है, जो निर्मूल है।

की शादी अनूपसिंह के कुटुंबी राठोड़ों के साथ की। उसका दूसरा विवाह जैसलमेर के रावल अखैसिंह की पुत्री अतिरंगदे से वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) में हुआ था। उसी वर्ष उसका तीसरा विवाह लक्ष्मीदास सोनगरे की कन्या से गांव वाय में सम्पन्न हुआ[१]। इनके अतिरिक्त उसके और भी कई राणियां थी, क्योंकि तंवर राणी का उसके साथ सती होना उसकी मृत्यु स्मारक छत्री में लिखा है और स्वरूपसिंह को ख्यात में सीसोदिया हरिसिंह जसवंतसिंहोत का दोहिता लिखा है[२]। अनूपसिंह के पांच पुत्र—स्वरूपसिंह, सुजानसिंह, रूपसिंह, रुद्रसिंह और आनन्दसिंह—हुए[३]।

वि० सं० १७५५ प्रथम ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १६६८ ता० ८ मई) रविवार[४]

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८।

(२) वही; जि० २, पत्र ४८।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २००। दयालदास ने केवल चार पुत्रों के नाम दिये हैं, उसकी ख्यात में रूपसिंह का नाम नहीं है (जि० २, पत्र ५२)। वीरविनोद में भी चार पुत्रों के ही नाम हैं (भाग २, पृ० ४६६)। बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' में भी चार ही नाम दिये हैं। उसमें एक पुत्र का नाम सुंदरसिंह दिया है (संख्या १०५३)। पाउलेट भी चार ही नाम देता है (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४२)। टॉड ने केवल दो पुत्रों—सुजानसिंह और स्वरूपसिंह—के नाम दिये हैं (जि० २, पृ० ११३७); जो ठीक नहीं है, क्योंकि मुंहणोत नैणसी की ख्यात से उसके पांच और अन्य से चार पुत्र होना स्पष्ट है।

(४) श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १७५५ वर्षे शाके १६२० प्रवर्तमाने प्रथमज्येष्ठमासे शुक्लपक्षे तिथौ नवम्यां रवौ······ ···············राठौडवंशावतंसश्रीकर्णसिंहात्मजमहाराजाधिराजमहाराज श्री ३श्रीअनूपसिंहजीदेवाः श्रीजैसलमेरी अतिरंगदेजीश्रीतुंवरजी······ ··················सह ब्रह्मलोकमगमत्।

(अनूपसिंह की बीकानेरवाली स्मारक छत्री से)।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी यही तिथि दी है (जि० २, पृ० २००)।

अनूपसिंह की मृत्यु

को आदूणी[1] में अनूपसिंह का देहांत हुआ। इस अवसर पर जैसलमेरी अतिरंगदे तथा तंवर राणी सती हुई।

महाराजा के भाइयों की वीरता

महाराजा अनूपसिंह के भाई केसरीसिंह, पद्मसिंह और मोहनसिंह बड़े ही पराक्रमी हुए। ख्यातों आदि में उनकी वीरता की बहुतसी बातें लिखी हुई हैं, जिनमें से कुछ यहां लिखी जाती हैं—

केसरीसिंह—महाराजा कर्णसिंह का दूसरा पुत्र था। उसका उक्त महाराजा की कछवाही राणी के गर्भ से वि० सं० १६६८ (ई० स० १६४१) में जन्म हुआ था। केसरीसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह औरंगज़ेब ने, जब वह लाहौर की तरफ़ दाराशिकोह का पीछा कर रहा था, मार्ग में उसे मीनाकारी के काम की तलवार दी थी, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

कर्नल टॉड लिखता है—'केसरीसिंह ने एक बड़े शेर को बाहु-युद्ध में मार डाला था, जिसपर प्रसन्न होकर बादशाह औरंगज़ेब ने उसे पचीस गांव (संयुक्त प्रांत में) जागीर में दिये थे। उसने दक्षिण में रहते समय एक हब्शी सरदार को, जो बहमनी सेना का अफ़सर था, युद्ध में वीरतापूर्वक मारा था[2]।'

हि० स० १०७८ (वि० सं० १७२४ = ई० स० १६६७) में बंगाल की तरफ फ़िसाद होने पर वह आमेर के राजा रामसिंह आदि सहित

(१) दयालदास (ख्यात; जि० २, पत्र ४२), बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ११७), मुंशी देवीप्रसाद (राजरसनामृत; पृ० ४६), पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४२) तथा अर्सकिन (राजपूताना गैज़ेटियर; पृ० ३२२) ने अनूपसिंह की मृत्यु आदूणी में होना लिखा है। ब्रजरत्नदास-कृत 'मआसिरुल् उमरा' के अनुसार बादशाह औरंगज़ेब के ३४ वें राज्यवर्ष में अनूपसिंह आदूणी की अध्यक्षता से हटा दिया गया था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है (देखो पृ० २७२)। संभवतः पीछे से वह फिर वहीं बहाल कर दिया गया हो।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६, टि० १।

वहां भेजा गया[1]। वह बादशाह औरंगज़ेब के समय दक्षिण में ही रहा और वहां के युद्धों में उसने बड़ा भाग लिया। वि० सं० १७४१ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६८५ ता० १३ मार्च) शुक्रवार को उसका देहांत हो गया[2]।

पद्मसिंह—महाराजा कर्णसिंह का तीसरा पुत्र था। उसका उक्त महाराजा की हाड़ी राणी स्वरूपदे से वि० सं० १७०२ वैशाख सुदि ८ (ई० १६४५ ता० २२ अप्रेल) को जन्म हुआ था। उसकी वीरता और अतुल पराक्रम की कई गाथाएं प्रसिद्ध हैं। वह भी धर्मातपुर, समूनगर आदि के युद्धों में अपने भाई केसरीसिंह के साथ रहकर औरंगज़ेब के पक्ष में लड़ा था। ऐसी प्रसिद्धि है कि शाहज़ादे दाराशिकोह के मुक़ाबले में जब खजवा के युद्ध में विजय पाकर सब लोग शाही सेना में पहुंचे, उस समय बादशाह औरंगज़ेब ने केसरीसिंह और पद्मसिंह का यहां तक सम्मान किया कि अपने रुमाल से उनके बख्तरों की धूल को झाड़ा। फिर बादशाह ने उसको दक्षिण में नियत किया, जहां अपने पिता और भाई अनूपसिंह के साथ रहकर उसने कई बार वीरता के जौहर दिखलाये। वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७२) में जब उसका छोटा भाई मोहनसिंह, शाहज़ादे मुअज़्ज़म के साले मुहम्मदशाह मीर तोज़क (जो वहां का कोतवाल था) के साथ झगड़ा होने पर औरंगाबाद में मारा गया तो पद्मसिंह ने क्रोधित होकर दीवानखाने में पहुंच मुहम्मदशाह को मार डाला। उसके बढ़े हुए क्रोध को

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०० ।

(२) ······अथास्मिन् शुभसंवत्सरे······१७४१ चैत्रवदि ३ शुक्रवारे महाराजाधिराजमहाराजश्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रोमहावीरः क्षात्रधर्मनिष्ठः महाराजश्रीकेसरीसिंहजीवर्मा द्वाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां············सह देवलोकमगमत्

(मूल लेख की नक़ल से)।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र ४७) तथा पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट (पृ० ४५) में वि० सं० १७२७ में कांगड़े में उसकी मृत्यु होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

देख किसी का साहस उसे रोकने का नहीं हुआ और जितने भी शाही सेवक वहां विद्यमान थे भाग गये[1]।

इस घटना के सम्बन्ध में कर्नल टॉड ने लिखा है—'पद्मसिंह की तलवार के प्रहार से दीवानखाने का खंभा (?) तक टूट गया। जयपुर और जोधपुर के राजा उसके पक्ष में हो गये तथा वे इस घटना से शाहज़ादे की छावनी छोड़ बीस मील दूर चले गये। शाहज़ादे ने उनको बुलाने के लिए प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजा, परंतु जब वे नहीं आये, तब स्वयं शाहज़ादा आकर उनको लौटा लाया[2]।'

दक्षिण में तापती (तापी) नदी के तट पर मरहटों से युद्ध होने पर पद्मसिंह वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ, सावंतराय और आटूराय नामक मरहटा वीरों को कई आदमियों सहित मारकर वि० सं० १७३९ चैत्र वदि १२ (ई० स० १६८३ ता० १४ मार्च)[3] को परलोक सिधारा।

उसके वीरतापूर्वक युद्ध कर प्राण त्याग करने की शाही दरबार में बड़ी ख्याति हुई और सन् जुलूस २६ ता० १७ रबीउस्सानी (हि० स० १०९४=वि० सं० १७४० चैत्र सुदि ५=ई० स० १६८३ ता० ५ अप्रेल) को स्वयं बादशाह ने फ़रमान भेज महाराजा अनूपसिंह के प्रति अत्यन्त ही सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखा—"पद्मसिंह जो अपने सहयोगियों में सर्वश्रेष्ठ और उमरावों में शिरोमणि था, राजभक्ति एवं अनुपम वीरता के साथ युद्ध करता हुआ रणक्षेत्र में वीर-गति को प्राप्त हुआ। यह समाचार सुन हमें बड़ा भारी दुःख हुआ है, परन्तु उस स्वार्थत्यागी

(१) जोनाथन स्कॉट; हिस्ट्री ऑव् डेक्कन, जि० २, पृ० ३० ।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३६, टि० १ ।

(३) ·········अथास्मिन् संवत् १७३९ चैत्रकृष्णपक्षे द्वादश्यां महाराजाधिराजमहाराजश्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रोदानवीरो युद्धशूरो महाराजपद्म-सिंहजी एकया धर्मपत्न्या···सह······देवलोकमगमत्······

(मूल लेख की नकल से)।

वीर ने अपने सम्राट् के लिए युद्धक्षेत्र में प्राण त्याग किया है, अतः उसकी मृत्यु धन्य और गौरवपूर्ण हुई है, यही समझना चाहिये।"

कर्नल पाउलेट लिखता है—'पद्मसिंह बीकानेर का सर्वश्रेष्ठ वीर था और जनता के हृदय में उसका वही स्थान है, जो इंग्लैंड की जनता के हृदय में रिचर्ड दि लायन हार्टेड्[1] (सिंह-हृदय रिचर्ड) का है[2]।'

घोड़े पर बैठकर उसे दौड़ाते हुए पद्मसिंह का एक बड़े सिंह को बल्लम से मारने का एक चित्र बीकानेर में हमारे देखने में आया। यह चित्र प्राचीनता की दृष्टि से दो सौ वर्ष से कम पुराना नहीं है। उस(पद्मसिंह) की वीरता की गाथाएं कपोलकल्पित नहीं कही जा सकतीं और निःसंकोच कहा जा सकता है कि वह बीकानेर के राजवंश में बड़ा ही पराक्रमी योद्धा हो गया है।

सकेला की बनी हुई उसकी तलवार आठ पौंड वज़न की तीन फुट ११ इंच लंबी और ढाई इंच चौड़ी है। उसके शस्त्राभ्यास का खांडा (खड्ग) पच्चीस पौंड वज़न का चार फुट छः इंच लंबा और ढाई इंच चौड़ा है, जिसको आजकल का पहलवान सरलता से नहीं चला सकता। ये दोनों

(१) इंगलैंड का बादशाह रिचर्ड प्रथम सिंह-हृदय रिचर्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यह विजयी विलियम की पौत्री मटिल्डा का पौत्र और बादशाह हेनरी द्वितीय का तीसरा पुत्र था। इसने ई० स० ११८६ से ११६६ तक राज्य किया। यह पक्का सिपाही था और अपनी वीरता, साहसप्रियता, शारीरिक बल तथा सैनिक-पराक्रम के लिए यूरोप भर में प्रसिद्ध था। इसका सारा जीवन युद्ध करने में ही बीता। ईसाइयों का प्रसिद्ध तीर्थ जेरुसेलम उस समय मुसलमानों के अधिकार में था। उसे उनके हाथों से छुड़ाने के लिए जो तीसरा क्रूसेड (धर्मयुद्ध) हुआ, उसमें रिचर्ड ने प्रमुख भाग लिया था। वहां इसने बड़ी बहादुरी तथा साहस का परिचय दिया, पर आपस की फूट के कारण कोई फल न निकला। लौटते समय वह अपने शत्रु जर्मनी के सम्राट् के हाथ में पड़ गया। वहां बहुत दिनों तक क़ैद रहने के बाद, बहुत बड़ी रक़म देने पर कहीं इसका छुटकारा हुआ। चालुज दुर्ग के घेरे में कंधे में तीर लगने से ४२ वर्ष की अवस्था में, इसका देहांत हुआ था।

(२) गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट्, पृ० ७२।

बीकानेर के शस्त्रागार में सुरक्षित हैं और दर्शनीय वस्तु हैं। पद्मसिंह तलवार चलाने में बड़ा निपुण था, जिसके लिए यह दोहा प्रसिद्ध है—

कटारी अमरेस री, पदमे री तरवार।
सेल तिहारो राजसी, सरायो संसार॥

मोहनसिंह—महाराजा कर्णसिंह का चतुर्थ पुत्र था। उसका जन्म वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १६४६ ता० १७ मार्च) को हुआ था। शाहज़ादा मुअज़्ज़म उस (मोहनसिंह) पर अत्यन्त ही कृपा और स्नेह रखता था। इस कारण शाहज़ादे के सेवक उससे डाह रखते थे और उसको अपमानित करने का अवसर ढूंढते थे। औरंगाबाद में वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७२) में उसका शाहज़ादे के साले मुहम्मदशाह मीर तोज़क (जो कोतवाल था) से एक दिन झगड़ा हो गया, जिसने भीषण रूप धारण किया। इस सम्बन्ध में जोनाथन स्कॉट लिखता है—

'शाहज़ादे के साले मुहम्मदशाह मीर तोज़क का हिरन भागकर मोहनसिंह के डेरे की तरफ़ चला गया था, जिसको मोहनसिंह के सेवक पकड़कर अपने डेरे में ले गये। उसको यह मालूम नहीं था कि यह हिरन किसका है। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मोहनसिंह अन्य सेवकों के साथ शाहज़ादे के दीवानख़ाने में बैठा हुआ था तो मुहम्मदशाह उसके पास गया और भला बुरा कहने लगा। मोहनसिंह ने कहा मैं अपने स्थान पर जाते ही हिरन तुम्हारे यहां पहुंचा दूंगा, परन्तु इससे उसे संतोष नहीं हुआ और उसने कहा कि हिरन को अभी का अभी मंगवा दो, नहीं तो मैं तुम्हें उठने न दूंगा। मोहनसिंह इसपर क्रुद्ध होकर खड़ा हो गया और उसने अपनी तलवार पर हाथ डाला। दोनों तरफ़ से तलवारें चलने लगीं, जिससे दोनों के बड़े घाव लगे। अंत में शाहज़ादे के कितनेक सेवक मोहनसिंह की तरफ़ दौड़े। उस समय मोहनसिंह रक्त बहने से निस्तेज होकर दीवानख़ाने के थंभे के सहारे खड़ा था। एक दूसरे आदमी ने उसके सिर पर प्रहार किया, जिससे वह मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर गया।

'मोहनसिंह का बड़ा भाई पद्मसिंह, जो दीवानख़ाने की दूसरी तरफ़ बैठा हुआ था, अपने भाई के घायल होने का समाचार सुन दौड़ा और अपनी तलवार के एक प्रहार से ही उसने मुहम्मदशाह का काम तमाम कर दिया[1], जिसपर शाहज़ादे के नौकर घबराकर इधर उधर भाग निकले। पद्मसिंह, मुहम्मदशाह के पास खड़ा रहा और उसने यह निश्चय किया कि इसको कोई उठाने के लिए आवे तो उसको भी मार डालूं। फिर उसके भाई (मोहनसिंह) के बहुत से राजपूत पालकी लेकर आ पहुंचे, जिसमें वे मोहनसिंह को, जो अब तक जीवित था, रखकर ले चले। अनन्तर शाहज़ादे ने वहां आकर आज्ञा दी कि मोहनसिंह को मारनेवाले की पूरी जांच की जावे, किन्तु नौकरों ने उसे छिपा दिया। पद्मसिंह को यह भय था कि शाहज़ादा मुझ पर नाराज़ होगा, तो भी वह वहां से न हटा। इतने में राजा रायसिंह सीसोदिया (टोडे का), जो पांच हज़ारी मनसबदार था, आ पहुंचा और उसको मोहनसिंह के डेरे में ले गया। मोहनसिंह का डेरे पहुंचने

(१) सिंढायच दयालदास (ख्यात; जि० २, पत्र ४२) और कर्नल पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४२) लिखते हैं कि मोहनसिंह और मुहम्मदशाह के बीच झगड़ा होने का हाल सुनकर पद्मसिंह दौड़कर पहुंचा और उसने मोहनसिंह को ज़मीन पर पड़ा हुआ देखकर कहा कि तुम वीर होकर इस तरह कायरों की भांति क्यों पड़े हो? तब मोहनसिंह ने कहा कि मेरे पीठ पर के घावों को देखो। मुझे घायल करनेवाला कोतवाल अभी ज़िन्दा है। इसपर पद्मसिंह तलवार खींच थंभे के पास खड़े हुए कोतवाल पर टूट पड़ा और एक ही प्रहार में उसे मार डाला। पद्मसिंह की इस फुर्ती और वीरतापूर्ण प्रहार पर किसी कवि ने ऐसा कहा है—

एक घड़ी आलोच, मोहन रे करतो मरण।
सोह जमारो सोच, करतां जातो करणउत॥

भावार्थ—मोहनसिंह के मरण पर यदि एक घड़ी भर भी विचार करता रह जाता तो हे करणसिंह के पुत्र, तेरा सारा जीवन सोच करते ही बीतता।

इसका आशय यह है कि यदि उस समय पद्मसिंह एक घड़ी भर की भी देर कर देता तो मोहनसिंह का हत्याकारी भाग जाता, जिससे वह उसका बदला फिर नहीं ले सकता था और जीवन पर्यन्त उस(पद्मसिंह)को यही सोच बना रहता कि मैंने अपने भाई मोहनसिंह का बदला नहीं लिया।

के पूर्व ही देहांत हो गया और उसकी एक स्त्री सती हुई[1]।'

बीकानेर के देवी कुंड पर उसकी स्मारक छत्री है, जिसमें वि० सं० १७२८ चैत्र सुदि ७ (ई० स० १६७१ ता० ७ मार्च) को उसका देहांत होना लिखा है[2]।

अनूपसिंह का विद्यानुराग

वैसे तो अनूपसिंह के पहिले बीकानेर के कई शासकों—रायसिंह, कर्णसिंह आदि—की प्रवृत्ति विद्याप्रेम की ओर रही थी, परन्तु उसका विकास अनूपसिंह में अधिक हुआ था। वह जैसा वीर था वैसा ही संस्कृत और भाषा का विद्वान्, विद्वानों का सम्मानकर्त्ता एवं उनका आश्रयदाता था। उसने स्वयं भिन्न-भिन्न विषयों पर संस्कृत में कई ग्रन्थ निर्माण किये थे, जिनमें 'अनूपविवेक[3]' (तंत्रशास्त्र), 'कामप्रबोध[4]' (कामशास्त्र), 'श्राद्धप्रयोग चिन्तामणि[5]' और 'गीतगोविन्द' की 'अनूपोदय' नाम की टीका[6] का निश्चय रूप से पता

(१) जोनाथन स्कॉट; हिस्ट्री ऑव् डेकन; जि० २, पृ० ३०।

(२) ······संवत् १७२८ चैत्रमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां······ श्रीकर्णसिंहजीतत्पुत्रमहाराजश्रीमुहणसिंहजीवर्मा एकया धर्मपत्न्या सह देवलोकमगमत्······।

(३) आफ्रेक्ट; कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्; भाग १, पृ० १८।

(४) डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग् ऑव् संस्कृत मन्युस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव् हिज हाइनेस दि महाराजा ऑव् बीकानेर; पृ० ५३२, संख्या ११३३। आफ्रेक्ट; कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्; भाग १, पृ० ६३।

(५) वही; पृ० ४७१, संख्या १०१३। आफ्रेक्ट; कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम् भा० १, पृ० ६६६।

(६) श्रीमद्राजाधिराजेंद्रतनयोऽनूपभूपतिः।
व्याचक्रे जयदेवीयं सर्गोऽगात्तद्द्वितीयकः॥

यह ग्रन्थ काश्मीर राज्य के पुस्तक भण्डार में है। डाक्टर एम० ए० स्टाइन; कैटेलॉग् ऑव् दि संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि रघुनाथ टेम्पल लाइब्रेरी ऑव् हिज हाइनेस दि महाराजा ऑव् जम्मू एण्ड काश्मीर; पृ० २८०-८१, संख्या १२८४।

चलता है। उसके आश्रय में कितने ही संस्कृत के विद्वान् रहते थे, जिन्होंने उसकी आज्ञा से अनेक विषयों के संस्कृत ग्रन्थ लिखकर उसका नाम अमर किया। उन विद्वानों के लिखे हुए बहुत से ग्रन्थ अब भी उपलब्ध होते हैं। श्रीनाथ सूरि के पुत्र विद्यानाथ (वैद्यनाथ) सूरि ने 'ज्योत्पत्ति-सार'[1] (ज्योतिष), गंगाराम के पुत्र मणिराम दीक्षित ने 'अनूपव्यवहार-सागर'[2] (ज्योतिष), 'अनूपविलास'[3] या 'धर्माम्बुधि' (धर्मशास्त्र), भद्रराम

---

(१) नत्वा श्रीमदनूपसिंहनृपतेराज्ञावशाददद्भुतं
वक्ष्येशेपविशेषयुक्तिसहितं ज्योत्पत्तिसारंपरं ॥ २ ॥

इति श्रीमन्निखिलभूपालमौलिमालामिलन्मुकुटतटनटन्मरीचिमञ्जरी-पुञ्जपिञ्जरितमञ्जुपादाम्बुजयुगलप्रचण्डभुजदण्डचण्डिकाकर्णकुण्डलित-कोदण्डताण्डवाखण्डवरदृढखण्डितारिमुण्डपुण्डरीकमण्डितमहीमंडला-खण्डलमहाराजाधिराजश्रीमदनूपसिंहभूपाज्ञया कारितेस्मिन् सकलागमा-चार्य्यश्रीमत्श्रीनाथसूरिसूनुविद्यानाथविरचितेज्योत्पत्तिसारे वासनाध्यायः समाप्तः ।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर; पृ० ३०७, संख्या ६६१ ।

(२) कुर्वे श्रीमदनूपसिंहवचनात् स्पष्टार्थसंसूचकम् ।
चक्रोद्धारमहं मुहूर्त्तविषये विद्वज्जनानां मुदे ॥

इति श्रीगङ्गारामात्मजदीक्षितमणिरामविरचिते अनूपव्यवहारसागरे नानाऋषिसम्मता ग्रहमुहूर्त्तचक्रोद्धाराख्या दशमी लहरी समाप्ता ।

वही; पृ० २१०, संख्या ६२२ ।

(३) यह पुस्तक अलवर के राजकीय पुस्तकालय में भी है ।

डा० राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर; पृ० ३६०, संख्या ७७८ । आफ्रेक्ट; कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम्; भाग १, पृ० १८ । पिटर्सन; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् हिज़ हाइनेस दि महाराजा ऑव् अलवर; पृ० ५४, संख्या १२४६ ।

ने 'अयुतलक्षहोमकोटिप्रयोग[1]' (यज्ञ विषयक), अनन्तभट्ट ने 'तीर्थरत्नाकर[2]' और श्वेताम्बर उदयचन्द्र ने 'पाण्डित्यदर्पण[3]' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। उस(अनूपसिंह)को राजस्थानी भाषा से भी बड़ी प्रीति थी, जिससे उसने अपने पिता के राजत्वकाल में ही 'शुकसारिका[4]' (सुआ

(१) इति महयज्ञत्रयसाधारणविधिः।

इति श्रीमहाराजाधिराजमहाराजानूपसिंहाज्ञया होमिगोपनामकभद्ररामेण अयुतहोम-लक्षहोम-कोटि-होमास्तथाथर्वणप्रयोगाश्च ॥

डा० राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर पृ० ११२, संख्या ७८८।

(२) इति श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीमन्महाराजानूपसिंहस्याज्ञया मीमांसाशास्त्रपाठिना यदुसूनुना अनन्तभट्टेन विरचिते तीर्थरत्नाकरे सकलतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम कल्लोलः।

वही; पृष्ठ ४७७, संख्या १०२५।

(३) इति सूर्यवंशावतंससदसत्ययोवि(र्वि)वेचनराजहंसमहारा[ज] श्रीमदनूपसिंहदेवेनाज्ञप्तेन श्वेतांबरोदयचंद्रेण संदर्शिते पांडित्यदर्पणे प्रज्ञामुकुटमंडनादर्शो नाम नवमः प्रकाशः।

सी० डी० दलाल; ए कैटेलॉग ऑव् मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि जैन भन्डार्स ऐट् जैसलमेर; पृ० ४६ (गायकवाड् ओरिएन्टल सिरीज़; संख्या २१)।

(४) करिप्रणांम श्रीसारदा अपणी बुद्धि प्रमांण।
सुकसारिक वार्त्ता करुं द्यो मुझ अक्षर दान ॥ १ ॥
विक्रमपुर सुहांमणो सुख संपति की ठौर।
हिंदूस्थान हींदूधरम ऐसो सहर न और ॥ २ ॥
तिहां तपै राजा करण जंगळ कौ पतिसाह।
ताको कुंवर अनोपसिंह दाता सूर दुवाह ॥ ३ ॥
जोधवंस आखै जगत वंस राठौड़ विख्यात।
अजै विजै थी ऊपना गोमती गंगामात ॥ ४ ॥

बहोत्तरी) की बहत्तर कथाओं का भाषानुवाद किसी विद्वान् से कराया। खेद का विषय है कि उक्त विद्वान् ने उस पुस्तक में कहीं अपना नाम नहीं दिया। उसके कुंवरपदे में ही उसकी प्रशंसा में चारण गाडण वीरभाण ठाकुरसीओत ने 'वेलिया' गीतों में 'राजकुमार अनोपसिंह री वेल' की रचना की[1]। इसके गीतों की संख्या ४१ है। फिर उसके राज्य समय में 'वैताल-पचीसी[2]' की कथाओं का कविता मिश्रित मारवाड़ी गद्य में अनुवाद हुआ तथा जोशीराय ने शुकसारिका की कथाओं का संस्कृत तथा मारवाड़ी कविता मिश्रित मारवाड़ी गद्य में 'दंपतिविनोद[3]' नाम से अनुवाद किया। इस ग्रन्थ

तिण मोकुं आग्या दई सुप्रसन हुइकै एह।
संस्कृत हुंती वारिता सुख संपति करि देह ॥ ५ ॥

[हमारे संग्रह की प्रति से]।

(१) टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग आव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्; सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ६०, बीकानेर।

(२) प्रणमूं सरसती माय वले बिनायक वीनवूं।
सिध बुद्ध दिवराय सनमुख थाये सरस्वती ॥ १ ॥
देश मरूधर देव नवकोटी मै कोट नव।
बीकानेर विशेष निहचै मनकर जांणज्यो ॥ २ ॥
राज करै राठोड़ करण सूरसुत करण रौ।
मही चत्रीयां शिर मोड़ छत्रवट खुमांणो खरौ ॥ ३ ॥

······॥ वारता ॥ दिखण देश रै विषै प्रस्थानपुर नगर। तठै विक्रमादित्य उजेणी नगरी रो धणी राज्य करै छै······।

(टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्; सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ४०-१ बीकानेर)।

(३) समरूं देवी सरस्वती मत विस्तारण मात।
वीणा पुस्तक धारणी विघ्न हरण विख्यात ॥ १ ॥
गणपति वंदू चरण जुग·················

में पुरुषों तथा स्त्रियों के दूषणों का चित्रण किया गया है। इनके अतिरिक्त उस (अनूपसिंह) की आज्ञा से 'दूहा रत्नाकर'' नाम से शृंगाररसपूर्ण तथा अलग-अलग विषयों के दोहों का संग्रह हुआ। महाराजा अनूपसिंह के आश्रय में ही उसके कार्यकर्ता नाज़र आनन्दराम ने श्रीधर की टीका के आधार पर गीता का गद्य और पद्य दोनों में अनुवाद किया[2]।

बीकानेर सुहावणो दिन दिन चढ़तौ दौर।
हिन्दुस्थान मृजाद हद नव कोटी सिर मौर ॥ ३ ॥
राज करै राजा तिहां कमधज भूप अनूप।
सकबंधी करणेससुत राठौड़ां कुल रूप ॥ ४ ॥
देस राज सुभ देख कैं मन मैं भयो हुलास।
दंपतिविनोद की वार्त्ता कहिस कथा सविलास ॥ ५ ॥

॥ अथ कथा प्रारंभते ॥ अेकदा प्रस्थावे आबू विषै विदग्धमंगा इसै नाम सूवौ रहे। माहा चतुर ग्याता। सर्व सासत्र प्रवीण। सासत्र जोवतां सांभलतां वैराग ऊपनौ जो औ संसार बंधनौ कारण छै।······

(टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्; सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ४९ बीकानेर)।

(१) टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्; सेक्शन २, पार्ट १; पृ० ३१ बीकानेर।

(२) इस पुस्तक की वि० सं० १८८३ की लिखी एक प्रति बयाना (भरतपुर राज्य) के बोहरा छाजूराम सनाढ्य ब्राह्मण के यहां मेरे देखने में आई। इसमें १९७ पत्रे हैं। इसका प्रारंभिक अंश नीचे लिखे अनुसार है—

ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ श्रीगुरुपरमात्मने नमः ॥ अथ भगवद्गीता भाषा संयुक्त लिख्यते।

॥ दोहा ॥

हरगौरी गणेश गुरु, प्रणवौं सीस नवाय।
गीता भाषारथ करौं, दोहा सहित बनाय ॥ १ ॥

अनूपसिंह जैसा विद्वान् था वैसा ही संगीतज्ञ भी था। अकबर, जहांगीर और शाहजहां के दरबार में संगीतवेत्ताओं का बड़ा आदर रहा, परन्तु औरंगज़ेब ने गद्दी पर बैठने के बाद धार्मिक ज़िद में पड़कर अपने दरबार से संगीत की चर्चा उठा दी। तब शाही दरबार के संगीतवेत्ताओं ने जयपुर, बीकानेर आदि राज्यों में जाकर आश्रय लिया। उस समय शाहजहां के दरबार के प्रसिद्ध संगीताचार्य जनार्दनभट्ट का पुत्र भावभट्ट (संगीतराय) अनूपसिंह के दरबार में जा रहा, जहां रहते समय उसने 'संगीतअनूपांकुश'[1],

सुथिर राज विक्रम नगर, नृपमनि नृपति अनूप।
थिर थाप्यो परधान यह राज सभा को रूप ॥ २ ॥
नाज़र आनंदराम के, यह उपज्यो चित चाय।
गीता की टीका करौं, सुनि श्रीधर के भाव ॥ ३ ॥
गीता ज्ञान गंभीर लखि, रची जू आनंदराम।
कृष्णचरण चित लागि रह्यो, मन में अति अभिराम ॥४॥
आनंदन उच्छव भयो, हरिगीता अवरेषि।
दोहारथ भाषा करी, वानी महा विशेष ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धृतराष्ट्र पूछते हैं ॥ संजय सौं कि हे संजय धर्म्म कौ क्षेत्र ऐसौ जु कुरुक्षेत्र ॥ ताविषैं एकत्र भये हैं ॥ अरु युद्ध की इच्छा करते हैं ॥ ऐसे मेरे अरु पांडव के पुत्र कहा करत भये ॥ दोहा ॥ धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, मिले युद्ध के साज। संजय सो ....(आगे एक पंक्ति जाती रही है। फिर धर्म क्षेत्रे.............. संस्कृत श्लोक है। इसी तरह संपूर्ण गीता का गद्य और पद्य में अनुवाद है)।

नाज़र आनन्दराम महाराजा अनूपसिंह का मुसाहिब था। उसके पीछे वह महाराजा स्वरूपसिंह तथा महाराजा सुजानसिंह की सेवा में रहा, जिसके समय में वि० सं० १७८९ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३ ता० २६ फ़रवरी) को वह मारा गया।

(१) स्तोकं मुद्रामुरीकृत्य सा[र्धे]वर्षत्रयात्मिका।
श्रीमदनूपसिंहस्याज्ञ[ज्ञ]या ग्रंथद्वयं कृतं ॥ २ ॥
एकोनूपविलासाख्योनूपरत्नांक[कु]रः परः।
अनूपांकुशनामायं ग्रंथो निःपाद्यतेधुना ॥ ३ ॥

'अनूपसंगीतविलास'[1], अनूपसंगीतरत्नाकर[2], 'नष्टोद्दिष्टप्रबोधकध्रौपद-टीका[3]' आदि ग्रन्थों की रचना की। इनके अतिरिक्त और भी ग्रंथ स्वयं

इति चक्रवलिप्रबंधः इति श्रीमद्राठवु[ड]कुलदिनकरमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिंहात्म[ज]नयश्रीविराजमानचतु[ः]समुद्रमुद्रावच्छिन्नमेदिनीप्रतिपालनचतुरवदान्मना[न्यता]तिशयनिर्जितचिंतामणिस्वप्रतापतापितारिवगा[र्ग]धर्म्मावतारश्रीमहाराजाधिराजश्रीमदनूपसिंहप्रमा[मो]दितश्रीमहीमहे[न्द्र]मौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरणकमलश्रीसाहजा[साहिजहां]सभामंडनसंगीतरायजनार्दनमदांग[भट्टांग]जागुष्ट[नुष्टु]प् चक्रवर्ती संगीतरायभावभट्टविरचिते संगीतानूपांकुशे प्रबंधाध्यायः समाप्तः चतुर्थ............॥

यह ग्रन्थ काश्मीर राज्य के पुस्तक भंडार में है।

डॉक्टर स्टाइन; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि रघुनाथ टेंपल लाइब्रेरी ऑव् हिज़ हाइनेस दि महाराजा ऑव् जम्मू एण्ड काश्मीर; पृ० २६७, संख्या ११११५।

(१) इति श्रीमद्राठोरकुलदिनकरमहाराजाधिराजश्रीकर्णसिंहात्मजजयश्रीविराजमानचतुःसमुद्रावच्छिन्नमेदिनीप्रतिपालनचतुरवदान्यातिशयनिर्जितचिन्तामणिस्वप्रतापतापितारिवर्गधर्म्मावतारश्रीमदनूपसिंहप्रमोदितश्रीमहीमहीन्द्रमौलिमुकुटरत्नकिरणनीराजितचरणकमलश्रीसाहिजहांसभामण्डनसङ्गीतराजजनार्द्दनभट्टाङ्गजानुष्टुप्चक्रवर्त्तिसङ्गीतरायभावभट्टविरचितेऽनूपसङ्गीतविलासे नृत्याध्यायः समाप्तः ॥

डॉक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर; पृ० ५१०, संख्या १०६१।

(२) देखो ऊपर पृ० २८५ टिप्पण १।

(३) इति श्रीभावभट्टसङ्गीतरायानुष्टुप्चक्रवर्त्तिविरचितनष्टोद्दिष्टप्रबोधकध्रौपदटीका समाप्ता।

डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र; कैटेलॉग ऑव् दि संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स् इन दि लाइब्रेरी ऑव् बीकानेर; पृ० ५१४, संख्या १०१७।

महाराजा अनूपसिंह के रचे हुए अथवा उसके दरबार के विद्वानों के बनाये हुए माने जाते हैं', जिनका ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सका।

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद ने स्वयं महाराजा के बनाये हुए ग्रन्थों की नामावली में नीचे लिखे हुए नाम दिये हैं—

सन्तानकल्पलता (वैद्यक)।
चिकित्सामालतीमाला (वैद्यक)।
संग्रहरत्नमाला (वैद्यक)।
अनूपरत्नाकर (ज्योतिष)।
अनूपमहोदधि (ज्योतिष)।
संगीतवर्तमान (संगीत)।
संगीतानूपराग (संगीत)।
लक्ष्मीनारायणस्तुति (वैष्णवपूजा)।
लक्ष्मीनारायणपूजासार (छन्दोबद्ध, वैष्णवपूजा)।
सांबसदाशिवस्तुति (शिवपूजा)।
कौतुकसारोद्धार (राजविनोद)।
संस्कृत व भाषा कौतुक।

नीति ग्रन्थ—

महाराजा के आश्रय में बने हुए ग्रंथों के नीचे लिखे नाम भी दिये हैं—

धर्म्मशास्त्र······महाशान्ति, रामभट्ट-कृत।
शान्तिसुधाकर, विद्यानाथसूरि-कृत।

कर्म्म-विपाक······केरली सूर्य्यारुणाख्य टीका, पन्तुजीभट्ट-कृत।

वैद्यक···········अमृतमंजरी, होसिंग भट्ट-कृत।
शुभमंजरी, अम्बकभट्ट-कृत।

ज्योतिष······अनूपमहोदधि—वीरसिंह ज्योतिषराद्-कृत।
अनूपमेघ—रामभट्ट-कृत।

संगीत·········संगीतविनोद, भावभट्ट-कृत।
संगीतअनूपोद्देश्य, रघुनाथ गोस्वामी-कृत।

विष्णुपूजा······नाना छन्दों में श्रीलक्ष्मीनारायणस्तुति—शिव पण्डित कृत।

शिवपूजा—रुद्रपति, रामभट्ट-कृत।
शिवताण्डव की टीका, नीलकंठ-कृत।
अनूपकौतुकार्णव, रामभट्ट-कृत।
मन्त्रकल्पद्रुम, विद्यानाथ-कृत।

महाराजा कर्णसिंह से नाराज़ होने के कारण बादशाह औरंगज़ेब ने उसके जीवनकाल में ही उसके पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का शासन-भार सौंप दिया था। वह वीर, राजनीतिज्ञ, दयालु और विद्याप्रेमी था। बादशाह की तरफ़ की दक्षिण, गोलकुंडे आदि की लड़ाइयों में शामिल रहकर उसने बड़ी वीरता दिखलाई थी। इसके अतिरिक्त वह क्रमशः आदूणी और औरंगाबाद का बादशाह की तरफ़ से शासक भी रहा, जहां का प्रबन्ध उसने बड़ी बुद्धिमानी से किया। बादशाह की तरफ़ से उसे 'माही मरातिब' का सम्मान भी मिला था[1]। स्वदेश की तरफ़ से भी वह उदासीन न रहा। खारबारा आदि में सरदारों का उपद्रव बढ़ने पर उसने उनका दमन कराया।

महाराजा अनूपसिंह का व्यक्तित्व

अनेक प्रकार के छन्दों में—लक्ष्मीनारायणस्तुति—
भट्ट शिवनन्दन-कृत।
यन्त्रचिन्तामणि, दामोदर-कृत।
तन्त्रलीला, तर्कानन सरस्वती भट्टाचार्य-कृत।
सहस्रार्जुनदीपदान, त्रिम्बक-कृत।
वायुस्तुतनुष्ठानप्रयोग, रामभट्ट-कृत।
राजधर्म—कामप्रबोध, जनार्दन-कृत।
दशकुमारप्रबन्ध, शिवराम-कृत।
माधवीयकारिका, शांबभट्ट-कृत।
(मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० ४६-४८)।

(१) पाउलेट; गैज़ेटियर; ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १२३।

'माहि मरातिब' मुसलमान बादशाहों की तरफ़ से प्रमुख राजाओं आदि को मिलनेवाला बहुत बड़ा सम्मान माना जाता था। फ़ारस के बादशाह सुप्रसिद्ध नौशेरवां के पौत्र खुसरु परवेज़ ने सर्वप्रथम इसका प्रारंभ किया था। सेनापति बहराम-द्वारा निकाले जाने पर वह यूनान के बादशाह मारिस की शरण में गया, जिसकी पुत्री शीरीं के साथ उसका विवाह हुआ। अनन्तर नार्सेस की अध्यक्षता में एक सेना के साथ वह पुनः फ़ारस लौटा और ई० स० ५९१ में वहां की गद्दी पर बैठा। उस दिन चन्द्रमा मीन राशि में था, अतएव उसने धातु के दो गोले बनवाये और उन्हें लम्बे डंडों में लगवाया, जो 'कौकाब' अर्थात् सितारे कहलाये। ये दो

उसका अनौरस भाई बनमालीदास बादशाह के पास चला गया था, जहां उसने मुसलमान धर्म ग्रहणकर बीकानेर का आधा राज्य अपने नाम लिखवा लिया। अनूपसिंह बादशाह की कट्टरता से भलीभांति परिचित था और वह यह भी अच्छी तरह से समझता था कि बनमालीदास के हाथ में राज्य जाने से उसका परिणाम क्या होगा। अतएव उसने इस अवसर पर कूटनीति से काम लिया और उस (बनमालीदास) के बीकानेर आने पर उसे छल से मरवा डाला। यह कार्य इतनी अच्छी तरह से हुआ कि बादशाह किसी प्रकार का सन्देह न कर सका और इस भांति शाही दरबार में बीकानेर का गौरव पहिले जैसा ही बना रहा।

अनूपसिंह का बनवाया हुआ सुदृढ़ क़िला अनूपगढ़ उसकी कलाप्रियता का परिचय देता है। अपने सुयोग्य पूर्वजों के अनुरूप ही उसमें

सितारे, एक तीसरे लम्बे डंडे में लगी हुई सुवर्णनिर्मित मछली के साथ जो दोनों के बीच में रहती थी, बादशाह की प्रत्येक सवारी में उसके ठीक पीछे और प्रधान मंत्री के आगे रक्खे जाते थे। पीछे से दोनों सितारे तांबे के और आकृति में कुछ अंडाकार बनने लगे, पर मछली सोने की ही बनती रही। ससानियनवंशी बादशाहों के बाद नूह समानी फ़ारस का बादशाह हुआ। उसके तख़्तनशीन होने के समय चन्द्रमा सिंह राशि में था, जिससे उसने सोने की सिंह के शिर की आकृति उक्त चिह्नों के साथ और बढ़ा दी। वह भी माही मरातिब का सम्मान कहा जाता था। तैमूर के वंशज भारत के मुग़ल बादशाहों के समय से इसका चलन यहां भी शुरू हुआ और यह सम्मान वे अपने कृपापात्र बड़े लोगों को समय-समय पर देते रहे। इसके देने में धर्म-सम्बन्धी बन्धन का विचार नहीं किया जाता था (देखो मेजर जेनरल सर डब्ल्यू० एच० स्लीमैन-कृत 'रैम्बल्स एण्ड रिकलेक्शन्स ऑव् ऐन इण्डियन आफ़िशियल' पृ० १३४-७)। पीछे से मुग़ल बादशाह अपने सिंहासनारूढ़ होने के समय की विभिन्न राशियों के अलग-अलग चिह्न बनवाने लगे। बादशाह जहांगीर के सिक्कों पर बारहों राशियों के एक-एक करके चिह्न मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि मुग़ल बादशाहों का भी ग्रह, राशि आदि पर बड़ा विश्वास था।

बीकानेर के नरेशों में महाराजा अनूपसिंह के बाद यह सम्मान महाराजा गजसिंह तथा महाराजा रत्नसिंह को भी मिला, जिनके चिह्न गढ़ में सुरक्षित हैं। इनमें एक स्त्री का शिर है, जो कन्या राशि का सूचक होना चाहिये।

भी विद्याप्रेम का प्रस्फुरण हुआ था। उसके दरबार में साहित्य सेवियों का बड़ा सम्मान होता था और स्वयं उसने भिन्न-भिन्न विषयों पर संस्कृत तथा भाषा में कई ग्रन्थ लिखे थे। साथ ही अन्य विद्वानों ने भी उसके आश्रय में रहकर अनेकों ग्रन्थों का निर्माण किया अथवा उनपर टीकाएं बनाईं।

औरंगज़ेब ने धार्मिक कट्टरता के कारण अपने दरबार से संगीत की चर्चा ही उठा दी, जिससे संगीत के कई विद्वानों ने राजपूताने के भिन्न-भिन्न राज्यों में आश्रय लिया। उनमें से कुछ के बीकानेर में आने पर, महाराजा ने उनको बड़े सम्मान के साथ रक्खा, क्योंकि वह स्वयं संगीत का विद्वान् था। उन्होंने वहां रहते समय संगीत विषयक कई अमूल्य ग्रंथों की रचना की, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है।

वह समय हिन्दुओं के लिए बड़े संकट का था। बादशाह औरंगज़ेब की कट्टरता यहां तक बढ़ गई थी कि उसकी दक्षिण की चढ़ाइयों के समय वहां के ब्राह्मणों को अपनी पुस्तकें नष्ट किये जाने का भय रहता था। मुसलमानों के हाथ से अपनी हस्त-लिखित पुस्तकों के नष्ट किये जाने की अपेक्षा वे कभी-कभी उन्हें नदियों में बहा देना श्रेयस्कर समझते थे। संस्कृत ग्रन्थों के इस प्रकार नष्ट किये जाने से हिन्दु-संस्कृति के नाश हो जाने की पूरी आशंका थी। ऐसी दशा में वीर एवं विद्यानुरागी महाराजा अनूपसिंह ने उन ब्राह्मणों को प्रचुर धन दे-देकर उनसे पुस्तकें खरीदकर बीकानेर के सुरक्षित दुर्ग-स्थित पुस्तक-भंडार में भिजवानी प्रारम्भ कर दीं। यह कार्य कितने महत्त्व का था, यह वही समझ सकता है, जिसे बीकानेर राज्य का सुविशाल पुस्तकालय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि महाराजा अनूपसिंह जैसे विद्यारसिक शासकों के उद्योग के फलस्वरूप ही उक्त पुस्तकालय में ऐसे-ऐसे बहुमूल्य ग्रंथ अबतक सुरक्षित हैं, जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के बनाये हुए संगीत-ग्रंथों का पूरा संग्रह केवल बीकानेर के पुस्तक भंडार में ही विद्यमान है। ऐसे ही और भी कई अलभ्य ग्रंथ यहां विद्यमान हैं। ई० स० १८८० में कलकत्ते के

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने इस बृहत् संग्रह की बहुत-सी संस्कृत पुस्तकों की सूची ७४५ पृष्ठों में छपवाकर कलकत्ते से प्रकाशित की थी। उक्त संग्रह में राजस्थानी भाषा की पुस्तकों का भी बहुत बड़ा संग्रह है, जिनकी सूची अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

दक्षिण में जहां-कहीं मुसलमान सैनिक हिन्दू-मंदिरों को तोड़ते वहां उनकी मूर्तियों को भी वे नष्ट कर देते थे। ऐसे प्रसंगों पर महाराजा अनूपसिंह ने दक्षिण में रहते समय बहुतेरी सर्वधातु की बनी मूर्तियों की भी रक्षा की और उन्हें बीकानेर पहुंचवा दिया, जहां के क़िले के एक स्थान में सब की सब अबतक सुरक्षित हैं और वह 'तैंतीस करोड़ देवताओं का मंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है।

महाराजा अनूपसिंह जैसे विद्याप्रेमी, विद्वान् और विद्वानों के आश्रयदाता राजा राजपूताने में कम ही हुए हैं और इस दृष्टि से उसका नाम संसार में सदैव अमर रहेगा।

महाराजा स्वरूपसिंह

महाराजा अनूपसिंह के ज्येष्ठ पुत्र स्वरूपसिंह का जन्म वि० सं० १७४६ भाद्रपद वदि १ (ई० स० १६८६ ता० २३ जुलाई) को हुआ था।

जन्म, गद्दीनशीनी तथा दक्षिण में नियुक्ति

पिता की मृत्यु के समय वह आदूणी में ही था और वहीं नौ वर्ष की अवस्था में उसकी गद्दीनशीनी हुई। आरंभ से ही वह औरंगाबाद तथा बुरहानपुर में बादशाह के प्रतिनिधि की हैसियत से कार्य करता रहा। हि० स० ११११

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें', (संख्या १६५३ में) लिखा है कि स्वरूपसिंह का कुंवरपदे में देहांत हो गया, लेकिन आगे चलकर (संख्या १४३५ में) लिखा है कि वह छः मास राज्य करने के बाद शीतला से मरा, परन्तु ये दोनों बातें निर्मूल हैं, क्योंकि स्वरूपसिंह की स्मारक छत्री के लेख से स्पष्ट है कि वह लगभग दो वर्ष राज्य करने के बाद मरा।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८।

ता० २२ मुहर्रम (वि० सं० १७५६ श्रावण वदि १० = ई० स० १६९९ ता० १० जुलाई) को महाराजा स्वरूपसिंह राम राजा के बाल-बच्चों को, जो ज़ुल्फ़िक़ारखां की क़ैद में थे, अपने साथ लेकर बादशाह के पास पहुंचा[1]। फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि उसे एक हज़ार ज़ात और पांच सौ सवार का मनसब प्राप्त हुआ तथा वह ज़ुल्फ़िक़ारखां के साथ शाही सेवा में रहा[2]।

स्वरूपसिंह की माता का कई मुसाहबों को मरवाना

बीकानेर में राज्य-कार्य स्वरूपसिंह की माता सीसोदणी चलाती थी, परन्तु मुसाहबों में परस्पर मन-मुटाव था। एक दल में कुंवर भीमसिंह (महाजन), ठाकुर पृथ्वीसिंह (भूकरका), अमरसिंह (जसाणा) और ललित नाज़िर[3] आदि थे। दूसरे दल में मूंधड़ा जसरूप चतुर्भुज प्रमुख था। वह स्वरूपसिंह के साथ रहता था, परन्तु उसके अनुयायी मान रामपुरिया, कोठारी नैणसी, अमरचन्द तथा कर्मचन्द बीकानेर में रहकर राज्य-कार्य में योग देते थे। राजमाता को ललित पर पूरा विश्वास था, इसलिए एक दिन जब वह बीमार पड़ी और उसको कई बार वमन हुए तो उस-(ललित)ने उसके मन में यह बात जमादी कि मान रामपुरिया आदि उसको विष देकर मार डालना चाहते हैं। इसपर उसने स्वरूपसिंह को इसका प्रबन्ध करने के लिए लिखा। उसने मुकुंदराय को, जो राजमाता का पत्र लेकर गया था, समझा-बुझाकर बीकानेर भेजा, जहां पहुंचकर उसने मान रामपुरिया, कोठारी नैणसी, अमरचन्द और कर्मचंद को महाराजा का पत्र दिखलाने के बहाने बुलवाकर क़ैद कर दिया और पीछे से राजमाता के आदेशानुसार मरवा डाला। जब यह समाचार दक्षिण में पहुंचा तो खवास उदयराम तथा अन्य सरदारों ने महाराजा से निवेदन किया कि यह कार्य अनुचित हुआ, अब ऐसे स्वामीभक्त सेवक कहां मिलेंगे? वह तो बालक बुद्धि था, उसके हृदय में उनकी बातों ने घर कर

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७१७।

(२) उमराए हनूद; पृ० ९३। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ९०।

(३) अंतःपुर में रहनेवाले नपुंसक बनाये हुए पुरुष (ख़ोजे)।

लिया और उसकी नज़र ललित की तरफ़ से फिर गई[1]।

ललित ने जब यह दशा देखी तो वह सुजानसिंह तथा आनन्दसिंह से मिल गया और उसने उनकी मां से कहा कि सीसोदिणी राणी कुछ ही दिनों में आपके पुत्रों को मरवा देगी, अतएव अभी से इसका प्रबन्ध करना चाहिये। तब उसके कहने से उस(ललित)ने दोनों कुमारों को साथ लेकर बादशाह की सेवा में प्रस्थान किया[2]।

ललित का सुजानसिंह से मिल जाना

तीन मंज़िल पहुंचने पर उनके डेरे हुए। वहां से भी वे आगे बढ़ना चाहते थे, परन्तु जैसलमेर के एक शकुन जाननेवाले भाटी के कहने से वे १६ पहर तक और ठहर गये। ठीक उसी समय जब कि वे वहां से कूच करने का आयोजन कर रहे थे, दो क़ासिद शीघ्रतापूर्वक आते हुए दिखाई पड़े। ललित ने उन्हें पास बुला कर समाचार पूछा तो ज्ञात हुआ कि स्वरूपसिंह का आदूणी में शीतला[3] से देहांत हो गया और वे उसी की ख़बर देने बीकानेर जा रहे हैं। तब ललित आदि वहां से ही बीकानेर लौट गये[4]।

स्वरूपसिंह की मृत्यु

स्वरूपसिंह की बीकानेरवाली स्मारक छतरी के लेख से पाया जाता है कि वि० सं० १७५७ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० स० १७०० ता०

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४८-९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४५।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४९। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४५-६।

(३) टॉड लिखता है कि स्वरूपसिंह आदूणी लेने के प्रयत्न में मारा गया (जि० २, पृ० ११३७), परन्तु वह तो आदूणी का शासक ही था अतएव इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ४९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

१५ दिसम्बर) को उसका देहांत हुआ[1]।

महाराजा सुजानसिंह

महाराजा स्वरूपसिंह के छोटी अवस्था में ही निःसन्तान मर जाने पर उसका छोटा भाई सुजानसिंह, जिसका जन्म वि० सं० १७४७ श्रावण सुदि ३ (ई० स० १६६० ता० २८ जुलाई) सोमवार को हुआ था, वि० सं० १७५७ (ई० स० १७००) में बीकानेर का स्वामी हुआ[2]।

जन्म और गद्दीनशीनी

उन दिनों बादशाह औरंगज़ेब दक्षिण में था। वहां से उसने सुजानसिंह को बुलवाया, जिसपर वह (सुजानसिंह) अपने सरदारों के साथ बादशाह की सेवा में जा रहा[3] और क़रीब दस वर्ष वहां रहने के बाद बीकानेर लौटा।

सुजानसिंह का दक्षिण जाना

वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में महाराजा जसवन्तसिंह[4] की मृत्यु हो जाने पर बादशाह ने मारवाड़ पर अधिकार करके वहां का प्रबन्ध करने के लिए शाही अफ़सर नियुक्त कर दिये थे[5]। वि० सं० १७६३ फाल्गुन वदि अमावास्या (ई० स० १७०७ ता० २१ फ़रवरी) को अहमदनगर में औरंगज़ेब का देहांत हो जाने से साम्राज्य में बड़ी अव्यवस्था

अजीतसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई

---

(१) संवत् १७५७ मिती मिगसर सुदि १५ महाराजाधिराज-महाराजश्रीअनोपसिंहजीतत्पुत्रमहाराजाधिराजमहाराजश्रीस्वरूपसिंहजी··· ·········देवलोके गतः·········।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

(४) जोधपुर का स्वामी—गजसिंह का पुत्र।

(५) सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० १६६-७०।

फैल गई[1]। इस अनुकूल परिस्थिति से लाभ उठाकर अजीतसिंह[2] ने वि० सं० १७६३ फाल्गुन सुदि १५ (ई० स० १७०७ ता० ७ मार्च) को जोधपुर पहुंच ज़फ़रकुलीख़ां को हटा दिया और इस भांति अपने पैतृक राज्य पर फिर अधिकार कर लिया[3]। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-साम्राज्य का शासनाधिकार बहादुरशाह[4] के हाथ में चला गया। सुजानसिंह पूर्व की भांति ही दक्षिण में रहा और बीकानेर का राज्य-कार्य मंत्री तथा अन्य सरदार करते रहे। सुजानसिंह की अनुपस्थिति में राज्य-विस्तार करने का अच्छा अवसर देखकर अजीतसिंह ने फ़ौज के साथ बीकानेर की ओर प्रस्थान किया और लाडणूं में आकर डेरे किये। राज्य की सीमा के तेजसिंहोत बीदावत, सुजानसिंह से विरोध रखते थे, अजीतसिंह ने उन्हें लाडणूं बुलाकर बातचीत की, जिससे उनमें से अधिकांश उसके सहायक हो गये, परन्तु गोपालपुरा के कर्मसेन तथा बीदासर के बिहारीदास ने इस दुष्कार्य में सहयोग देना स्वीकार न किया, जिससे अजीतसिंह ने उन्हें नज़र क़ैद कर दिया और भंडारी रघुनाथ को एक बड़ी सेना के साथ बीकानेर पर भेजा। कर्मसेन और बिहारीदास ने नज़र कैद होने पर भी इस चढ़ाई का समाचार गुप्त रूप से बीकानेर भिजवा दिया, परन्तु बीकानेरवालों की सामर्थ्य जोधपुरवालों का सामना करने की न पड़ी, जिससे वहां पर अजीतसिंह का अधिकार हो गया और नगर में उसकी दुहाई फिर गई। बीकानेर में रामजी नामका एक वीर, साहसी एवं राजभक्त लुहार रहता था। उसके हृदय को यह घटना इतनी असह्य हुई कि वह अकेला ही जोधपुर के सैनिकों से भिड़ गया और पांच आदमियों को मारकर मारा गया। इस घटना से बीकानेर के सरदारों

(१) सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० ३८३।

(२) महाराजा जसवंतसिंह का पुत्र।

(३) सरकार; शार्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० ३१७।

(४) औरंगज़ेब का दूसरा पुत्र मुअज़्ज़म। बादशाह की मृत्यु होने पर वह काबुल से आकर कुतुबुद्दीन शाहआलम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा।

को भी जोश आया और भूकरका के ठाकुर पृथ्वीराज एवं मलसीसर के बीदावत हिन्दूसिंह (तेजसिंहोत) सेना एकत्रकर जोधपुर की फ़ौज के समक्ष जा डटे, जिससे जोधपुर की सेना में खलबली मच गई। विजय की सारी आशा काफ़ूर हो गई और जोधपुर के सारे सरदारों ने सन्धि कर लौट जाने में ही भलाई समझी। जब अजीतसिंह के पास यह समाचार पहुंचा तो उसने भी सेना का लौटना ही उचित समझा। फलतः जोधपुर की सेना जैसी आई थी वैसी ही लौट गई। अजीतसिंह ने वापस लौटते वक्त कर्मसेन तथा बिहारीदास को मुक्त कर दिया[1]। अपनी अनुपस्थिति में बुद्धिमानी एवं वीरता-पूर्वक कार्य करने के लिए सुजानसिंह ने दक्षिण से लौटने पर पृथ्वीराज की प्रतिष्ठा बढ़ाई[2]।

ख्यातों आदि में महाराजा सुजानसिंह की वरसलपुर पर चढ़ाई होने का वर्णन नहीं मिलता है, परन्तु मथेन (मथेरण) जोगीदास[3] रचित 'वरसलपुर विजय' अर्थात् 'महाराजा सुजानसिंह रो रासो' में इस चढ़ाई का वर्णन नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई का उल्लेख नहीं है, परन्तु कविराजा श्यामलदास के 'वीरविनोद' नामक ग्रंथ में भी लिखा मिलता है कि औरंगज़ेब की मृत्यु होने पर, जोधपुर पर अधिकार करने के उपरान्त अजीतसिंह ने बीकानेर भी लेने का विचार किया, लेकिन उसका यह विचार पूरा न हुआ (भाग २, पृ० ५००)। इससे निश्चित है कि दयालदास का इस सम्बन्ध का वर्णन कोरी कल्पना नहीं है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०।

(३) मथेन (मथेरण) = गृहस्थी बने हुए जैन यति।

इतिश्री श्रीमहाराजाधिराजमहाराजा श्री ५ श्रीसुजाणसिंघजी वरसल्लपुर गढ़ विजयं नाम समयः। मथेन जोगीदासकृत समाप्तः॥ संवत् १७६६ वर्षे माघ सुदि ५ दिने लिखतं।

एक क़ाफ़िला मुलतान से बीकानेर को जा रहा था, जिसको बरसलपुर की सीमा में वहां के भाटियों ने लूट लिया। जब क़ाफ़िलेवालों ने महाराजा सुजानसिंह के दरबार में आकर शिकायत की तो प्रधान नाज़िर आनन्दराम आदि की सलाह से महाराजा ने अपनी सेना के साथ प्रयाण कर बरसलपुर को जा घेरा। वहां के राव लखधीर को लूटा हुआ माल पीछा दे देने के लिए उसने कहलाया, पर उसने न माना। इसपर महाराजा ने गढ़ पर आक्रमण कर उसे विजय कर लिया। अंत में भाटियों ने क्षमा मांगकर सेना-व्यय देना स्वीकार किया, तब वहां से वह पीछा लौट गया[1]।

महाराजा सुजानसिंह का बरसलपुर विजय करना

अनन्तर वि० सं० १७७६ आषाढ वदि ८ (ई० स० १७१६ ता० २० मई) को सुजानसिंह डूंगरपुर गया, जहां महारावल रामसिंह की पुत्री रूपकुंवरी से उसका विवाह हुआ[2]। वहां से लौटते समय वह सलूंबर के रावत केसरीसिंह के यहां ठहरा। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) के आग्रह करने पर वह उदयपुर जाकर एक मास तक उसके साथ रहा। उसके घोड़े की कुदान देखकर महाराणा ने उसकी बड़ी प्रशंसा की, जिसपर उसने वह घोड़ा महाराणा को भेंट कर दिया। फिर नाथद्वारे में श्रीनाथजी का दर्शन करता हुआ वह बीकानेर लौट गया[3]।

सुजानसिंह का डूंगरपुर में विवाह करना तथा लौटते समय उदयपुर ठहरना

मुग़ल बादशाहों में औरंगज़ेब के समय मुग़ल-साम्राज्य का विस्तार

(१) यह चढ़ाई वि० सं० १७६७ और १७६६ के बीच होनी चाहिये क्योंकि वि० सं० १७६६ की लिखी हुई उपर्युक्त पुस्तक विद्यमान है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

सब से अधिक बढ़ा, परन्तु उसकी कट्टर धार्मिकता के कारण अकबर की डाली हुई मुग़ल-साम्राज्य की नींव हिलने लगी और उसे जीतेजी ही यह मालूम हो गया कि मेरे पीछे राज्य की दशा अवश्य बिगड़ जायगी। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। उसके पीछे शाह-आलम (बहादुरशाह) ने लगभग ५ वर्ष तक राज्य किया[1]। फिर उसका पुत्र मुहम्मद मुईज़ुद्दीन (जहांदारशाह) तख़्त पर बैठा, परन्तु नौ मास बाद ही वह अपने भतीजे फ़र्रुख़सियर की आज्ञा से मार डाला गया[2]। फ़र्रुख़सियर भी अधिक दिनों तक राज्य-सुख न भोग सका। वह तो नाम-मात्र का ही बादशाह रहा, राज्य का सारा काम उसके समय में सैय्यद-बन्धु अब्दुल्लाख़ां तथा हुसेनख़ां करते थे, जिन्होंने जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह को अपने पक्ष में मिलाकर वि० सं० १७७६[3] (ई० स० १७१६) में उस (फ़र्रुख़सियर) को मरवा डाला[4]। फिर रफ़ीउद्दरजात और रफ़ीउद्दौला क्रमशः दिल्ली के तख़्त पर बैठे, परन्तु लगभग सात मास के अन्दर ही दोनों काल-कवलित हो गये[5]। तदनन्तर बहादुरशाह का पौत्र तथा जहांदारशाह का पुत्र रोशनअख़्तर, मुहम्मदशाह का विरुद धारणकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। कुछ दिनों बाद नवीन बादशाह (मुहम्मदशाह) ने सुजानसिंह को बुलाने के लिए अहदी (दूत) भेजे, परन्तु साम्राज्य की दशा दिन-दिन गिरती जा रही थी, ऐसी परिस्थिति में

मुग़ल साम्राज्य की परिस्थिति और सुजानसिंह का स्वयं शाही सेवा में न जाना

(१) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ५, पृ० २६-७।

(२) वही; भाग ५, पृ० २८।

(३) दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०६) दिया है, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार उक्त ख्यात में आगे चलकर मुहम्मदशाह की मृत्यु आदि के जो संवत् दिये हैं, वे भी ग़लत हैं।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८४१-४२।

(५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ५, पृ० ३१-२।

उसने स्वयं शाही सेवा में आना उचित न समझा। फिर भी दिल्ली के बादशाह से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए उसने खवास आनन्दराम और मूंधड़ा जसरूप को कुछ सेना के साथ दिल्ली तथा मेहता पृथ्वीसिंह को अजमेर की चौकी पर भेज दिया[1]।

महाराजा अजीतसिंह का महाराजा सुजानसिंह को पकड़ने का प्रयत्न करना

जोधपुर के अजीतसिंह के हृदय में तो बीकानेर पर अधिकार करने की लालसा बनी ही थी। एक बार उसको पता लगा कि सुजानसिंह केवल थोड़े से मनुष्यों के साथ नाल में है। कुछ दिनों पूर्व (वि० सं० १७७३ में) सुजानसिंह के दूसरे कुंवर अभयसिंह का जन्म हुआ था। इस अवसर पर उस(अजीतसिंह)ने अपने दूतों के हाथ कुंवर अभयसिंह के जन्म के उपलक्ष्य में वस्त्राभूपण भिजवाये, पर उन्हें गुप्त रीति से कह दिया कि यदि अवसर मिले तो सुजानसिंह को पकड़ लाना, नहीं तो यह भेंट देकर चले आना। अजीतसिंह के इस गुप्त उद्देश्य का पता किसी प्रकार सुजानसिंह को लग गया, जिससे वह तत्काल नाल का परित्याग कर गढ़ में चला गया। तब दूत बीकानेर में भेंट आदि देकर जोधपुर लौट गये। इस प्रकार अजीतसिंह का आन्तरिक उद्देश्य सफल न हो सका[2]।

विद्रोही भट्टियों को दबाना

कुछ दिनों बाद भट्टियों और जोहियों ने उत्पात करना आरंभ किया, अतएव वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में उनका दमन करने के लिए सुजानसिंह फ़ौज एकत्रकर नोहर गया। उसका आगमन सुनते ही भट्टियों ने भटनेर के गढ़ की तालियां उसे सौंप दीं तथा पेशकशी के बीस हज़ार रुपये उसे दिये। वहां का समुचित प्रबन्ध करने के उपरान्त

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०-१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

सुजानसिंह बीकानेर लौट गया[1]।

सुजानसिंह के एक मुसाहब ख़वास आनंदराम तथा ज़ोरावरसिंह में वैमनस्य होने के कारण वह (ज़ोरावरसिंह) उसको मरवाकर उसके स्थान में अपने प्रीतिपात्र मेहता फ़तहसिंह के पुत्र बख़्तावरसिंह को रखवाना चाहता था। अपनी यह अभिलाषा उसने पिता के सामने प्रकट भी की, पर जब उधर से उसे प्रोत्साहन न मिला तो वह नोहर में जाकर रहने लगा, जहां अवसर पाकर उसने वि० सं० १७८६ चैत्र वदि ८ (ई० स० १७३३ ता० २६ फ़रवरी) को आधीरात के समय ख़वास आनंदराम को मरवा डाला। जब सुजानसिंह को इस अपकृत्य की सूचना मिली तो वह अपने पुत्र से अप्रसन्न रहने लगा। इसपर ज़ोरावरसिंह ऊदासर जा रहा। तब प्रतिष्ठित मनुष्यों ने महाराजा सुजानसिंह को समझाया कि जो हो गया सो हो गया, अब आप कुंवर को बुला लें। इसपर सुजानसिंह ने कुंवर की माता देरावरी[2] तथा सीसोदणी राणी को ऊदासर भेजकर ज़ोरावरसिंह को बीकानेर बुलवा लिया और कुछ दिनों बाद सारा राज्य-कार्य उसे ही सौंप दिया[3]।

सुजानसिंह और उसके पुत्र ज़ोरावरसिंह में मनमुटाव होना

उन्हीं दिनों जैमलसर के भाटियों में विद्रोह का अंकुर उत्पन्न हुआ

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि राणावत इन्द्रसिंह की कन्या राणी रत्नकुंवरी के गर्भ से ज़ोरावरसिंह का जन्म हुआ था (जि० २, पृ० २०१), परंतु अन्य ग्रन्थों में उसका जन्म देरावरी राणी से ही होना लिखा है।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट; गैज़ेटियर; ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८। वीरविनोद में यह घटना जोधपुर के महाराणा अभयसिंह की चढ़ाई के बाद लिखी है; परन्तु जैसा कि दयालदास की ख्यात से प्रकट होता है यह उससे कुछ दिनों पहले की घटना है। जोधपुर की चढ़ाई से पहले ही पिता पुत्र के बीच का झगड़ा मिट गया था और जब यह चढ़ाई हुई तो ज़ोरावरसिंह ने वीरतापूर्वक विरोधियों का सामना किया था।

और वहां का स्वामी उदयसिंह विपरीत आचरण करने लगा, अतएव कुंवर जोरावरसिंह उसपर फ़ौज लेकर गया। दोपहर तक लड़ाई होने के बाद उदयसिंह ने अपने सम्बंधी कुशलसिंह को भेजकर सन्धि कर ली तथा पीछे से स्वयं जोरावरसिंह के समक्ष उपस्थित होकर उसने दो घोड़े तथा पेशकशी के पांच हजार रुपये उसे दिये और अधीनता स्वीकार कर ली। तब जैमलसर का ठिकाना फिर उसे देकर, जोरावरसिंह, ऊदासर, पुनरासर होता हुआ लौट गया[1]।

जोरावरसिंह का जैमलसर के भाटियों पर जाना

बादशाह फ़र्रुख़सियर को मरवाने में सैय्यद अब्दुल्लाखां के साथ-साथ जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह का भी हाथ था। पीछे से अब्दुल्लाखां के मुहम्मदशाह से लड़कर बन्दी होने की खबर पाकर महाराजा ने अजमेर आदि बादशाही ज़िलों पर कब्ज़ा कर लिया। इसपर मुहम्मदशाह ने मारवाड़ पर फ़ौज भेज दी। वि० सं० १७७९ (ई० स० १७२२) में मेड़ते पर घेरा पड़ने पर महाराजा ने सुलह करके अपने ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को दिल्ली भेज दिया। कुंवर अभयसिंह को महाराजा जयसिंह तथा अन्य मुग़ल सरदारों ने समझाया कि फ़र्रुख़सियर को मरवाने में शामिल रहने के कारण बादशाह महाराजा से अप्रसन्न है; तुम यदि मारवाड़ का राज्य अपने कब्ज़े में रखना चाहते हो तो उसे मार डालो। तब कुंवर ने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को लिख भेजा, जिसने अपने भाई के इशारे के अनुसार वि० सं० १७८१ आषाढ सुदि १३ (ई० स० १७२४ ता० २३ जून) को ज़नाने में सोते समय अपने पिता को मार डाला। अभयसिंह ने जोधपुर का स्वामी होकर बख्तसिंह की इस सेवा के एवज़ में उसे राजाधिराज का खिताब एवं नागोर की जागीर दी[2]।

बख्तसिंह को नागोर मिलना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८।

(२) वीरविनोद; भाग १, पृ० ८४१-४।

वि० सं० १७६० (ई० स० १७३३)[1] में जब जोधपुर की गद्दी पर अभयसिंह था, उसके छोटे भाई बख़्तसिंह ने नागोर से एक बड़ी सेना लेकर बीकानेर पर अधिकार करने के विचार से प्रस्थान किया और स्वरूपदेसर के निकट आकर डेरे किये। उन दिनों सुजानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र जोरावरसिंह अपनी सेना सहित नोहर में था। महाराजा (सुजानसिंह) के समाचार भिजवाने पर वह अमरसर में चला आया, जहां बीकानेर की और फ़ौज भी उससे मिल गई। इस सम्मिलित सेना के साथ जोधपुर की सेना का तालाब नाज़रसर पर मुक़ाबला होने पर, प्रथम आक्रमण में ही बख़्तसिंह की सेना के पैर उखड़ गये और वह भागकर अपने डेरों में चली गई। अनन्तर बख़्तसिंह के यह समाचार जोधपुर भेजने पर अभयसिंह स्वयं एक बड़ी सेना के साथ उससे आ मिला। फिर मोरचेबन्दी हुई और युद्ध जारी हुआ, परन्तु बीकानेरवालों ने गढ़ की रक्षा का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था और इतनी दृढ़ता के साथ जोधपुरवालों का सामना कर रहे थे कि अभयसिंह को विजय की आशा न रही। फिर रसद आदि का पहुंचना भी जब बन्द हो गया तो अभयसिंह ने मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) से कहलाया कि आप अपने प्रतिष्ठित आदमियों को भेजकर हमारे बीच सुलह करा दें, जिसपर महाराणा ने चूंडावत जगत्सिंह (दौलतगढ़ का), मोही के भाटी सुरताणसिंह तथा पंचोली कानजी (सहीवालों का पूर्वज) को दोनों दलों में सुलह कराने के लिए भेजा। पहले तो जोधपुरवालों ने सेना के ख़र्च की भी मांग की, परन्तु बीकानेरवालों ने वह शर्त स्वीकार नहीं की। पीछे से इस शर्त पर सुलह हुई कि जब जोधपुरवाले पीछा लौटें तो बीकानेरवाले उनका पीछा न

बख़्तसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में बख़्तसिंह का वि० सं० १७९१ (ई० स० १७३४) के भाद्रपद मास में बीकानेर पर चढ़कर जाना लिखा है (जि० २, पृ० १४२) जो ठीक नहीं है। वीरविनोद में भी वि० संवत् १७९० (ई० स० १७३३) ही मिलता है।

करें। तदनुसार फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १७३४ ता० २० फ़रवरी) को दोनों भाई (अभयसिंह तथा बख़्तसिंह) कूचकर नागोर चले गये'।

बख़्तसिंह नागोर में निवास करता था। बीकानेर की प्रथम चढ़ाई के असफल होने पर भी उसने अभी आशा का परित्याग न किया था।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५००-१। पाउलेट गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४७।

यह घटना जोधपुर राज्य की ख्यात में इस प्रकार दी है—'वि० सं० १७९१ के भाद्रपद (ई० स० १७३४ अगस्त) में बख़्तसिंह ने बीकानेर पर चढ़ाई की और गोपालपुर खरबूजी पर अधिकार करता हुआ वह बीकानेर की सीमा पर जा पहुंचा। अनन्तर अभयसिंह भी जोधपुर से कूचकर खींवसर पहुंचा, जहां पंचोली रामकिशन, जिसे महाराज (अभयसिंह) ने एक लाख रुपया देकर फ़ौज एकत्र करने के लिए भेजा था, चार हज़ार सवारों के साथ उससे आ मिला। बख़्तसिंह के मोरचे लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की तरफ़ लगे थे। बीकानेरवालों ने बाहर आकर लड़ाई की, परन्तु बख़्तसिंह के राजपूतों ने उन्हें फिर गढ़ के भीतर शरण लेने पर बाध्य कर दिया। इस बीच अभयसिंह भी सेना सहित आ पहुंचा और नये सिरे से मोरचेबन्दी तथा युद्ध आरंभ हुआ। बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह का पुत्र जोरावरसिंह भादा की तरफ़ था, वह भी कांधलोत लालसिंह तथा अपनी ४००० सेना को साथ ले शहर में आ गया। चार महीने तक लड़ाई हुई, परन्तु बीकानेर की रक्षा के सुदृढ़ प्रबन्ध के कारण गढ़ टूटता दिखाई न दिया। तब लालसिंह ने जोधपुरवालों को जाकर समझाया कि इस समय आपका चला जाना ही लाभप्रद होगा तथा उसने भविष्य में चढ़ाई होने पर सहायता करने का वचन भी दिया। इसपर अभयसिंह और बख़्तसिंह नागोर लौट गये (जि० २, पृ० १४२)।'

उपर्युक्त वर्णन में महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) के आदमियों-द्वारा दोनों दलों में संधि स्थापित किया जाना नहीं लिखा है, परन्तु इसका उल्लेख 'वीरविनोद' में भी आया है (भाग २, पृ० ५०१), अतएव कोई कारण नहीं है कि इसपर अविश्वास किया जाय।

बीकानेर पर फिर अधिकार करने का बख़्तसिंह का विफल षड्यन्त्र

बीकानेर के वंशपरंपरागत क़िलेदार नापा सांखला के वंशज दौलतसिंह ने अपने स्वामी से कपट करके बख़्तसिंह से बीकानेर के गढ़ पर उसका अधिकार करा देने के विषय में गुप्त मंत्रणा की। बख़्तसिंह तो यह चाहता ही था। दौलतसिंह के उद्योग से जैमलसर का भाटी उदयसिंह, शिव पुरोहित, भगवानदास गोवर्धनोत और उसके दो पुत्र हरिदास तथा राम एवं बीकानेर के कितने ही अन्य सरदार आदि भी विद्रोहियों से मिल गये। उदयसिंह के एक सम्बन्धी, पड़िहार राजसी के पौत्र जैतसी की बीकानेर-राज्य में बहुत चलती थी। उन दिनों कुंवर ज़ोरावरसिंह ऊदासर में था, उदयसिंह जैतसी को साथ ले उसके पास ऊदासर में चला गया। इस प्रकार बीकानेर का गढ़ अरक्षित रह गया। ऊदासर में एक रोज़ गोठ के समय उदयसिंह अधिक नशे में हो गया और ऐसी बातें करने लगा, जिससे स्पष्ट पता चलता था कि उसके मन में कोई गुप्त भेद है। जैतसी ने जब अधिक ज़ोर दिया तो उसने सारी बातें खोलकर उस(जैतसी)से कह दीं। जैतसी सुनते ही तुरन्त सावधान हो गया और आसपास से सेना एकत्र करने को उसने ऊंट सवार भेजे। इतना करने के उपरान्त वह गढ़ के उस भाग में गया जहां पड़िहार रक्षा पर थे और उनसे रस्सी नीचे गिरवाकर वह गढ़ में दाख़िल हो गया। अनन्तर उसने महाराजा को इसकी सूचना दी। सुजानसिंह तत्काल जैतसी को लेकर सूरजपोल पर पहुंचा तो उसने उसके ताले खुले हुए पाये। इसी प्रकार गढ़ के अन्य दरवाज़ों के ताले भी खुले हुए थे। उसी समय सब दरवाज़े मज़बूती से बंद किये गये और गढ़ की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर क़िले की तोपें दागी गईं। सांखला नाहरख़ां, बख़्तसिंह तथा उसके आदमियों को बुलाने गया हुआ था, जो गढ़ के निकट ही सूचना मिलने की बाट जोह रहे थे। जब उसने तोपों की आवाज़ सुनी तो समझ गया कि षड्यन्त्र का सारा भेद खुल गया। बख़्तसिंह ने भी जान लिया कि अब आशा फलीभूत होना असम्भव है, अतएव अपने साथियों सहित वह वहां से

निकल गया। उधर गढ़ के भीतर के सांखले मार डाले गये तथा धायभाई को गढ़ की रक्षा का कार्य सौंपा गया। यह घटना वि० सं० १७६१ आषाढ़ वदि ११ (ई० स० १७३४ ता० १६ जून) को हुई[1]।

सुजानसिंह का एक विवाह डूंगरपुर में हुआ था, जिसके सम्बन्ध में ऊपर विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। अन्य दो राणियां देरावरी[2] और सीसोदिणी थीं, जिनका उल्लेख भी ऊपर आ गया है। सुजानसिंह के दो पुत्र हुए—देरावरी राणी के गर्भ से वि० सं० १७६६ माघ वदि १४ (ई० स० १७१३ ता० १४ जनवरी) को कुंवर जोरावरसिंह का जन्म हुआ तथा वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) में उसके दूसरे कुंवर अभयसिंह का जन्म हुआ[3]।

विवाह तथा सन्तति

कुछ दिनों बाद भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह तथा भाद्रा के ठाकुर लालसिंह में वैमनस्य उत्पन्न हो गया, जिससे गांव रायसिंहपुरे में उन दोनों में झगड़ा हुआ। जब सुजानसिंह को इस घटना की खबर हुई तो वह उधर गया, जिससे वहां शांति स्थापित हो गई। रायसिंहपुरे में ही सुजानसिंह रोगग्रस्त हुआ और वि० सं० १७९२ पौष सुदि १३ (ई० स० १७३५ ता० १६ दिसम्बर) मंगलवार को वहीं उसका देहावसान हो गया। पीछे यह दुःखद समाचार पौष सुदि

सुजानसिंह की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८-६। 'वीरविनोद' में भी इस घटना का संक्षिप्त वर्णन है (भाग २, पृ० ५०१), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता, जिसका कारण यह है कि इस चढ़ाई का सम्बन्ध केवल बख़्तसिंह से ही था, जोधपुर से नहीं। एक बार विफल प्रयत्न होने पर पुनः बीकानेर पर अधिकार करने के लिए षड्यन्त्र करना कोई असम्भव कल्पना नहीं है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जि० २, पृ० २०१)। सुजानसिंह के मृत्यु स्मारक लेख से पाया जाता है कि देरावरी राणी का नाम सुरतादे था।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६०।

१५ (ता० १८ दिसम्बर) को बीकानेर पहुंचने पर उसकी देरावरी राणी सती हुई[1]।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

पीछे से बढ़ाये हुए मुंहणोत नैणसी की ख्यात के वृत्तान्त में वि० सं० १७८३ (ई० स० १७२६) में सुजानसिंह की मृत्यु होना लिखा है (जि० २, पृ० २०१), जो ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि सुजानसिंह की बीकानेर की स्मारक छत्री में वि० सं० १७९२ (ई० स० १७३५) में ही उसकी मृत्यु होना लिखा है:—

अथ श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १७६२ वर्षे शाके १६५७ प्रवर्तमाने पौषमासे शुभे शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ भौमवासरे ....राठोडवंशावतंसश्रीमदनूपसिंहात्मजमहाराजाधिराजमहाराज श्री ५ श्रीसुजाणसिंहजीदेवाः श्रीदेरावरीसुरताणदेजीधर्मपत्न्या सह.................।

सातवां अध्याय

महाराजा जोरावरसिंह से महाराजा प्रतापसिंह तक

महाराजा जोरावरसिंह

जन्म तथा गद्दीनशीनी

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जोरावरसिंह का जन्म वि० सं० १७६६ माघ वदि १४ (ई० स० १७१३ ता० १४ जनवरी) को हुआ था[1] और वह वि० सं० १७६२ माघ वदि ६ (ई० स० १७३६ ता० २४ फ़रवरी) को बीकानेर के सिंहासन पर आसीन हुआ[2]।

बीकानेर के इलाके से जोधपुर के थाने उठाना

अभयसिंह ने पिछली चढ़ाई के समय बीकानेर की दक्षिणी सीमा पर अपने कुछ थाने स्थापित कर दिये थे, जिनको जोरावरसिंह ने सिंहासनारूढ़ होने के बाद ही उठा दिया[3]।

बख़्तसिंह तथा जोरावरसिंह में मेल का सूत्रपात

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह तथा उसके छोटे भाई बख़्तसिंह में अनबन हो जाने के कारण, अभयसिंह ने फ़ौज के साथ जाकर उस-(बख़्तसिंह)की सीमा के पास डेरा किया। बख़्तसिंह अकेला अपने भाई का सामना करने की सामर्थ्य न रखता था, अतएव उसने जोरावरसिंह

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

से मेल की बातचीत की। जब अभयसिंह को इस रहस्य की खबर मिली तो वह तत्काल जोधपुर लौट गया[1]।

अनन्तर जोरावरसिंह ने अपने राज्य के भीतर होनेवाली अव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। चूरू के ठाकुर संग्रामसिंह इन्द्रसिंहोत के बदल जाने की आशङ्का बढ़ रही थी, अतएव उसने उसकी जागीर छीनकर जुझारसिंह (इन्द्रसिंहोत) को दे दी। इसपर संग्रामसिंह जोधपुर चला गया। जोरावरसिंह यह नहीं चाहता था कि उसका कोई भी अधीनस्थ सरदार किसी दूसरे का आश्रित होकर रहे, अतएव उसने चूरू का पट्टा फिर संग्रामसिंह के ही नाम कर दिया। संग्रामसिंह जोधपुर से लौटा तो अवश्य, पर बीकानेर में महाराजा के समक्ष उपस्थित न होकर सीधा चूरू चला गया, जिससे समस्या पहले जैसी ही हो गई और वह फिर पदच्युत कर दिया गया। संग्रामसिंह तथा भाद्रा के ठाकुर लालसिंह में बड़ी मित्रता थी। पदच्युत होने पर वह उस (लालसिंह) को भी साथ लेकर जोधपुर चला गया जहां महाराजा अभयसिंह ने उन दोनों का बड़ा सत्कार किया[2]।

चूरू के ठाकुर को निकालना

वि० सं० १७९३ (ई० स० १७३६) में जब महाराजा जोरावरसिंह लूणकरणसर गया हुआ था, देरावर का भाटी सूरसिंह एक डोला लेकर उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। विवाहोपरान्त वि० सं० १७९३ मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० स० १७३६ ता० २३ नवम्बर) को वहां से प्रस्थान कर जोरावरसिंह ने पलू में डेरा किया, जहां के राव से उसने पेशकशी वसूल की। बीकानेर लौटने पर उसने अपनी माता को दौलतसिंह पृथ्वीराजोत, मेहता

भाटी सूरसिंह की पुत्री से विवाह तथा पलू के राव को दंड देना

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४१।

इस घटना का जोधपुर राज्य की ख्यात में उल्लेख नहीं है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४१।

आनंदराम आदि के साथ ब्रज की यात्रा एवं सोरम तीर्थ में स्नान करने को भेजा[1]।

वि० सं० १७९६ (ई० स० १७३६) में जोधपुर की चढ़ाई बीकानेर पर हुई। भंडारी तथा मेड़तिये आदि दस हज़ार फ़ौज के साथ बीकानेर राज्य में प्रवेशकर उपद्रव करने लगे। पंचोली लाला, अभयकरण दुरगादासोत तथा आसोप का ठाकुर कनीराम रामसिंहोत भी एक बड़ी सेना के साथ फलोधी के मार्ग से कोलायत पहुंचे। तीसरी सेना पुरोहित जगन्नाथ आदि तथा सांईदासोत लालसिंह की अध्यक्षता में बीकानेर पहुंच गई।

अभयसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है बख़्तसिंह तथा जोरावरसिंह में मेल की बातचीत बहुत पहले से जारी थी तथा उस (बख़्तसिंह) ने बारहट दलपत को इस विषय में बातचीत करने के लिए जोरावरसिंह के पास भेजा था[2], परन्तु जोरावरसिंह को विश्वास न होता था, जिससे उसने प्रतीति के लिए प्रमाण मांगा। बख़्तसिंह ने तत्काल मेड़ते पर अधिकार करके अपनी सत्यता का प्रमाण दिया, जिसके पश्चात् उसके तथा जोरावरसिंह के बीच मेल स्थापित हो गया। तब महाराजा ने कुशलसिंह (भूकरका), दौलतराम (अमरावत बीका, महाजन का प्रधान) आदि को बख़्तसिंह के पास भेजा, जिन्होंने लौटकर बख़्तसिंह और अभयसिंह में वास्तव में फूट पड़ जाने का निश्चित हाल उससे निवेदन किया। अनन्तर मेहता बख़्तावरसिंह के अर्ज़ करने पर मेहता मनरूप एवं सिंढायच

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जब जोरावरसिंह गोपालपुर की गढ़ी में था उस समय बख़्तसिंह ने नागोर से चढ़कर उक्त गढ़ी को घेर लिया। पीछे से ख़रबूजी की पट्टी कांधलोत लालसिंह को चाकरी में देकर जोरावरसिंह ने बख़्तसिंह से सन्धि कर ली (जि० २, पृ० १४७)। इस कथन में सत्य का अंश कितना है, यह कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना तो निश्चित है कि जोरावरसिंह तथा बख़्तसिंह में मेल हो गया था, जिसकी वजह से अभयसिंह बीकानेर का बिगाड़ न कर सका।

अजबराम बख़्तसिंह के पास भेजे गये, जिन्होंने उससे आकर अभयसिंह की चढ़ाई का सारा हाल निवेदन किया। तब बख़्तसिंह ने ज़ोरावरसिंह के पास लिख भेजा कि आप निश्चिन्त रहें। मैं यहां से जोधपुर पर चढ़ाई करता हूं, जिससे अभयसिंह को बाध्य होकर अपनी सेना को पीछा बुला लेना पड़ेगा, परन्तु आप मेरे साथ विश्वासघात न कीजियेगा। ज़ोरावरसिंह की इच्छा स्वयं बख़्तसिंह की सहायतार्थ जाने की थी, परन्तु अपनी आकस्मिक बीमारी के कारण उसे रुक जाना पड़ा और बख़्तावरसिंह आठ हज़ार सेना के साथ इस कार्य पर भेजा गया। इसके बाद बख़्तसिंह कापरडे पहुंचा तथा अभयसिंह बीसलपुर, जहां युद्ध की तय्यारी हुई; पर बाद में, संभवतः बीकानेर की सहायता बख़्तसिंह को प्राप्त हो जाने के कारण उसने युद्ध से विमुख हो अपने प्रधानों को उस(बख़्तसिंह)के पास भेज सन्धि कर ली, जिसके अनुसार मेड़ता उसे वापिस मिल गया तथा जालोर की मरम्मत का तीन लाख रुपया उसे बख़्तसिंह को देना पड़ा। तदनन्तर बख़्तसिंह नागोर लौट गया, जहां से उसने बीकानेर के सरदारों को सिरोपाव देकर विदा किया[1]।

जोहियों से भटनेर लेना

कुछ ही दिन बाद महाजन के ठाकुर भीमसिंह ने ज़ोरावरसिंह से भटनेर पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। बीकों की फ़ौज, रावतोतों की फ़ौज तथा मेहता (राठी) रघुनाथ आदि इसी कार्य की पूर्ति के लिए एकत्र हुए, परन्तु प्रकट यह किया गया कि यह सेना राज्य के

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६३-४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०२-३) में भी इसका संक्षिप्त वर्णन दिया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उससे इतना पता अवश्य लगता है कि बख़्तसिंह तथा अभयसिंह में मनमुटाव हो गया था, जिससे मेड़ते पर अधिकार करके बख़्तसिंह जोधपुर की तरफ़ गया था और उस समय अभयसिंह के डेरे बीसलपुर में हुए थे, जैसा कि ऊपर के वर्णन में भी आया है (जि० २, पृ० १४६)।

सुप्रबन्ध के लिए एकत्रित की गई है। फिर अपने सरदारों से सलाहकर तलवाड़े के जोहिया स्वामी मला गोदारा (जिसके अधिकार में भटनेर था) को धोखे से मरवाने का निश्चय कर १२५ ऊंटों पर युद्ध का सामान लादकर भटनेर को भेज दिया। अनन्तर महाजन के ठाकुर ने भी आगे बढ़कर जोहिया मला को तलवाड़े से बुलाया और एक दिन गोठ में उसको तथा उसके ७० साथियों को सोमल मिली हुई शराब पिलाकर बेहोश कर दिया और पीछे से मार डाला। यह घटना वि० सं० १७६६ फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १७४० ता० १४ फ़रवरी) को हुई। फिर भीमसिंह ने भटनेर के गढ़ पर चढ़ाई कर मला के पुत्रों आदि को भी मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार गढ़ तथा उसमें मिली हुई चार लाख की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। सारी सम्पत्ति स्वयं हड़प जाने और उसमें से एक अंश भी किसी दूसरे को न देने के कारण, बीकानेर की सेना अप्रसन्न होकर लौट गई। इसकी खबर ज़ोरावरसिंह को मिलने पर उसने हसनखां भट्टी को भटनेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। हसनखां भट्टी ने दस हज़ार फ़ौज के साथ गढ़ घेर लिया। इस अवसर पर वहां की सारी प्रजा भी उसके साथ मिल गई, जिससे उसका कार्य सुगम हो गया। भीमसिंह ने अन्यत्र से सहायता मंगवाने की चेष्टा की, परन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हुआ और अन्त में उसे भटनेर का गढ़ छोड़कर प्राण बचाने पड़े तथा वहां हसनखां भट्टी का अधिकार हो गया[1]।

बीकानेर पर की पिछली चढ़ाई की असफलता का ध्यान जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के हृदय में बना ही हुआ था। वि० सं० १७६७[2]

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४६-५०।

(२) दयालदास की ख्यात में वि० सं० १७६६ का प्रारम्भ दिया है (जि० २, पृ० ६४) जो ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उक्त संवत् के फाल्गुन मास तक तो ठाकुर भीमसिंह का राज्य का पक्षपाती रहना उक्त ख्यात से सिद्ध है। जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह चढ़ाई श्रावणादि वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) के वैशाख मास में हुई (जि० २, पृ० १४१), जो ठीक जान पड़ता है।

अभयसिंह की बीकानेर पर दूसरी चढ़ाई

(ई० स० १७४०) में उसने बीकानेर के विद्रोही ठाकुरों—ठाकुर लालसिंह (भाद्रा), ठाकुर संग्रामसिंह (चूरू) तथा ठाकुर भीमसिंह (महाजन)—के साथ पुनः बीकानेर पर चढ़ाई कर दी । देशणोक पहुंचकर उसने करणीजी का दर्शन किया और वहां के चारणों से अपने आपको उसी तरह संबोधन करने को कहा, जिस प्रकार वे अपने स्वामी (बीकानेर के राजा) को करते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा न किया । अनन्तर उसने बीकानेर (नगर) में प्रवेश कर तीन पहर तक लूट मचाई, जिससे लगभग एक लाख रुपये की सम्पत्ति उसके हाथ लगी । नगर की लूट का समाचार सुनकर कुंवर गजसिंह एवं रावल रायसिंह कितने ही साथियों के साथ विरोधी दल का सामना करने को आये, परन्तु जोरावरसिंह ने उन्हें भी गढ़ के भीतर बुला लिया । महाराजा अभयसिंह का डेरा लक्ष्मीनारायण के मंदिर के निकट पुराने गढ़ के खंडहरों की तरफ़ था, अनूपसागर कुएं के पास उसकी सेना के कर्मसोतों, देपालदासोतों एवं पृथ्वीराजोतों का एक मोरचा था; दूसरा मोरचा उसी कुएं के पूर्वी ढाल पर मनरूप जोगीदासोत व देवकर्ण भागचन्दोत आदि मंडलावतों का था; तीसरा मोरचा दंगल्या (दंगली साधुओं के अखाड़े का स्थान) के स्थान पर कूंपावत रघुनाथ रामसिंहोत और जोधा शिवसिंह (जूनियां) का था तथा दूसरी तरफ़ पीपल के वृक्षों के नीचे तोपें, पैदल, रिसाला, भाटी हठीसिंह उरजनोत, पाता जोगीदास मुकुन्ददासोत, मेड़तिया जैमलोत, सांवलदास एवं पंचोली लाला आदि थे । अन्य जोधपुर के सरदार भी उपयुक्त स्थलों पर नियुक्त थे । सूरसागर पूर्णरूप से आक्रमणकारियों के हाथ में था एवं गिन्नाणी तालाब पर भी भाद्रा का विद्रोही ठाकुर लालसिंह तथा अनेक राठोड़ एवं भाटी आदि थे ।

उधर गढ़ के भीतर भी सारे बीका, बीदावत व रावतोत सरदार आदि महाराजा जोरावरसिंह की सेवा में गढ़ की रक्षार्थ उपस्थित थे और सारी सेना का संचालन भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह के हाथ में था । तोपों के गोलों की लगातार वर्षा से गढ़ का बहुत नुक़सान हो रहा था ।

मुख्यतः एक 'शंभुबाण' नाम की तोप तो क्षण-क्षण पर अपनी विकरालता का परिचय दे रही थी। उसका नष्ट करना बहुत आवश्यक हो गया था, अतएव कुंवर गजसिंह की आज्ञानुसार एक पड़िहार ने 'रामचंगी' तोप के सहारे अन्त में उसका ध्वंस कर दिया[1], जिससे जोधपुरवालों का एक प्रबल नष्टकारी शस्त्र बेकार हो गया। अनन्तर खवास अजबसिंह आनंदरामोत तथा पड़िहार अैतसिंह भोजराजोत, भाद्रा के ठाकुर लालसिंह के पास उसे अपनी ओर मिलाने के लिए भेजे गये। पीछे से महाराजा स्वयं गुप्त रूप से उससे मिला, परन्तु कोई परिणाम न निकला।

युद्ध दिन पर दिन उग्र रूप धारण कर रहा था। इसी अवसर पर नागोर से बख़्तसिंह का भेजा हुआ केलण दूदा एक पत्र लेकर आया और उसने निवेदन किया कि मेरे स्वामी ने कहा है कि आप निश्चिन्त होकर गढ़ की रक्षा करें और अपना एक मनुष्य उनके पास भेज दें ताकि सहायता का समुचित प्रबन्ध किया जाय, परन्तु जोरावरसिंह ने इसपर कुछ ध्यान न दिया। कुछ दिनों पश्चात् दूसरा मनुष्य बख़्तसिंह के पास से आने पर आनंदरूप उसके पास भेजा गया, जिसने जाकर निवेदन किया कि गढ़ में सामग्री तो बहुत है, परन्तु बाहर से सहायता प्राप्त हुए बिना विजय पाना असम्भव है[2]। बख़्तसिंह ने उत्तर में कहा कि मैं तन-धन दोनों

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि 'शंभुबाण' तोप वहां नष्ट नहीं हुई, वरन् अभयसिंह के घेरा उठाने के बाद पंचोली लाला तथा पुरोहित जग्गा उसको अपने साथ ला रहे थे, उस समय बैलों के थक जाने से उन्होंने उसे एक दूसरी तोप के साथ ज़मीन में गाड़ दिया। पीछे से उसे खुदवाकर मंगवाया गया (जि० २, पृ० १५०)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अभयसिंह के क़िला घेर लेने से, भीतर रसद की कमी हो गई तो जोरावरसिंह ने उसके पास आदमी भेजकर कहलाया कि यदि आप बारबरदारी दें तो हम क़िला छोड़ कर चले जायं, पर यह शर्त स्वीकार न हुई। इस बीच बख़्तसिंह रसद आदि सामान नागोर से बीकानेरवालों के पास भेजता रहा। पीछे से जोरावरसिंह ने मेहता बख़्तावरमल को उसके पास सहायता के लिए भेजा (जि० २, पृ० १४६)। दयालदास की ख्यात से इस वर्णन में थोड़ा अन्तर अवश्य है, जो स्वाभाविक ही है, परन्तु इससे ऐतिहासिक सत्य में कोई भेद नहीं पड़ता।

से तुम्हारे स्वामी की सहायता करने को प्रस्तुत हूं। फिर उसी के परामर्शानुसार आनन्दरूप, धांधल कल्याणदास के साथ जयपुर के स्वामी सवाई जयसिंह के पास सहायता प्राप्त करने के लिए गया, पर जयसिंह को बख़्तसिंह की तरफ़ से कुछ सन्देह था, जिससे उसने कहलाया कि पहले आप मेड़ता ले लें; मैं भी निश्चय आऊंगा। यह संदेशा प्राप्त होते ही मेड़ता पर अधिकार करके बख़्तसिंह ने अपनी सचाई का प्रमाण दिया[1]। कुछ दिनों बाद आनन्दरूप ने जयसिंह से निवेदन किया कि आपने सहायता देना तो स्वीकार कर लिया है अब आप इस आशय का एक पत्र बीकानेर लिख दें। जयसिंह ने उसी समय महाराजा ज़ोरावरसिंह के नाम खरीता लिखकर उसे दे दिया और हँसी में उससे पूछा कि तुम्हारी करणीजी और लक्ष्मीनारायणजी इस अवसर पर कहां चले गये? चतुर आनंदरूप ने तुरंत उत्तर दिया कि उनका प्रवेश इस समय आप में ही हो गया है, क्योंकि आप हमारी सहायता के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। जयसिंह आनन्दरूप की इस अनूठी उक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इसी अवसर पर उस (जयसिंह) के पास सूचना पहुंची कि बादशाह मुहम्मदशाह[2] के पास से इस आशय का एक पत्र बीकानेर आया है कि यदि गढ़ पर अभयसिंह का अधिकार हो भी गया तब भी वह बाहर निकाल दिया जायगा, जिससे बीकानेरवालों में नई स्फूर्ति एवं साहस का संचार हो गया है।

अनन्तर महाराजा जयसिंह ने २०००० सेना के साथ राजामल खत्री को जोधपुर पर भेजा। बख़्तसिंह उस समय मेड़ते के पास गांव जालोड़े में था तथा मेड़ते में अभयसिंह की तरफ़ के पंचोली मेहकरण आदि १०००० फ़ौज के साथ थे। राजामल के आने का समाचार सुनते ही, उन्होंने बख़्तसिंह पर

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से भी पाया जाता है कि बख़्तसिंह ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया था और जयसिंह उससे उसी स्थान पर आकर मिला था (जि० २, पृ० १५०)।

(२) दयालदास ने इसके स्थान पर अहमदशाह लिखा है जो ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय दिल्ली के तख़्त पर मुहम्मदशाह था।

आक्रमण कर दिया, परन्तु उनको विजय प्राप्त न हुई। पीछे से राजामल भी बख़्तसिंह से आकर मिल गया। जयसिंह ने इसमें स्वयं अब तक कोई विशेष भाग नहीं लिया था। जब बार-बार उससे आग्रह किया गया तो उसने अपने सरदारों से इस विषय में राय ली। अधिकांश लोगों की तो राय यह थी कि अभयसिंह उसका सम्बन्धी (जामाता) है, दूसरे इस युद्ध में अपरिमित धन-व्यय होगा, अतएव चढ़ाई करना युक्तिसंगत न होगा, परन्तु शिवसिंह (सीकर) ने कहा कि जोधपुर का बीकानेर पर अधिकार हो जाना पड़ोसी राज्यों के लिए हानिकारक ही सिद्ध होगा, इसलिए प्रारम्भ में ही इसका कोई उपाय करना चाहिये। जयसिंह के हृदय में उसकी बात बैठ गई और उसने तीन लाख सेना के साथ जोधपुर पर चढ़ाई कर दी[1]। जब अभयसिंह को यह समाचार ज्ञात हुआ, तो उसने उदयपुर आदमी भेजकर वहां के प्रतिष्ठित मनुष्यों को बीकानेर के साथ संधि करा देने को बुलवाया। अभयसिंह यह चाहता था कि यदि बीकानेरवाले झुक जायं तो वह वापस चला जाय, परन्तु जब बीकानेर-वालों ने यह अपमान-जनक शर्तें स्वीकार न की और स्पष्ट कह दिया कि हमारी ओर से उत्तर जयसिंह देगा तो अभयसिंह को इतने दिनों के परिश्रम के बदले में फिर निराश होकर लौट जाना पड़ा। इस अवसर पर भागते हुए जोधपुर के सैन्य को बीकानेर की फ़ौज ने बुरी तरह लूटा। अभयसिंह भागा-भागा एक हज़ार सवारों के साथ जोधपुर पहुंचा, क्योंकि उसे जयसिंह की ओर से पूरा-पूरा भय था, परन्तु जयसिंह अभी तक मार्ग में ही था। उसका वास्तविक उद्देश्य जोधपुर पर अधिकार करने का न था। वह तो केवल अभयसिंह को बीकानेर से हटाकर एवं उससे कुछ रुपये वसूल कर स्वदेश लौट जाना चाहता था। अभयसिंह के आते ही २१ लाख

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि जयसिंह ने यह सोचकर कि बीकानेर पर अधिकार कर लेने से अभयसिंह की शक्ति बढ़ जायगी, तत्काल उसे लिखा कि बीकानेर पर से घेरा उठा लो, परन्तु जब उसने ऐसा न किया, तो उस-(जयसिंह)ने जोधपुर पर चढ़ाई कर दी (जि० २, पृ० १४९-५०)।

रुपये पेशकशी के वसूलकर वह वहां से लौट गया[१]। इस धन में से ११ लाख के तो वे ही आभूषण थे, जो उसने विवाह के अवसर पर अपनी पुत्री को दिये थे, परन्तु उसने यह कहकर उन्हें भी स्वीकार कर लिया कि अब ये जोधपुर की निजी सम्पत्ति हैं अतएव इन्हें लेने में कोई दोष नहीं है[२]।

वहां से प्रस्थान कर जयसिंह ने गांव वणार में डेरा किया जहां बीकानेर से जोरावरसिंह भी आकर उपस्थित हुआ और समय पर सहायता प्रदान करने के लिए उसे धन्यवाद दिया। पर जयसिंह ने यही कहा कि मैंने जो कुछ भी किया है उसका मूल्य 'कुछ नहीं' के बराबर है, क्योंकि आपके पूर्वज जैतसी ने हमारे पूर्वज सांगाजी की बड़ी सहायता की थी[३]।

जोरावरसिंह का जयसिंह से मिलना

अनन्तर दोनों के डेरे बीवम में हुए। वहां से वे बांधनवाड़े पहुंचे, जहां उनकी उदयपुर के महाराणा जगत्सिंह (दूसरा) और कोटे के महाराव दुर्जनसाल से मुलाक़ात हुई। फिर बीमार पड़ जाने से जोरावरसिंह कुछ दिनों के लिए जयपुर चला गया। इसी बीच बीकानेर राज्य में सांईदासोतों के बखेड़ा करने पर उसने खाटू में जयसिंह के पास जाकर उनका दमन करने के लिए फ़ौज

सांईदासोतों का दमन करना

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में बीस लाख रुपया लिखा है (जि० २, पृ० १५२)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४-७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५०-५१।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०२-३) में भी इस घटना का लगभग ऐसा ही संक्षिप्त वर्णन है। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी कहीं-कहीं थोड़े अन्तर के साथ यह घटना दी है। इससे यह निश्चित है कि अभयसिंह की चढ़ाई जिस समय बीकानेर पर हुई थी, उस समय जयसिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई की और बख़्तसिंह भी उसका सहायक हो गया, जिससे अभयसिंह को फ़ौरन जोधपुर लौटना पड़ा।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५१।

भेजने को कहा, जिसपर दस हज़ार फ़ौज के साथ जयपुर के शेखावत शार्दूलसिंह (जगरामोत) आदि मेहता बख़्तावरसिंह के साथ उधर भेजे गये। उस समय लालसिंह बाय के क़िले में तथा संग्रामसिंह चूरू में था। रिणी से चलकर जब कछवाहों की सेना बाय में पहुंची तो लालसिंह रात्रि के समय वहां से भागकर भाद्रा चला गया। अभयसिंह की दी हुई दस तोपें उसके पास थीं, जिनपर विजेताओं का अधिकार हो गया। जब भाद्रा में भी लालसिंह का पीछा किया गया तो उसने शेखावत शार्दूलसिंह की मारफ़त बातचीत की और पेशकशी का एक लाख रुपया देना ठहराकर मेल कर लिया। तब शार्दूलसिंह लालसिंह को लेकर जयपुर गया, जहां वि० सं० १७९७ कार्तिक वदि ११ (ई० स० १७४० ता० ५ अक्टोबर) को वह (लालसिंह) नाहरगढ़ में क़ैद कर दिया गया। जोरावरसिंह जब बीकानेर लौट रहा था तो मार्ग में संग्रामसिंह भी उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और दंड के पचीस हज़ार रुपये देने का वचन दे विदा हुआ। इस प्रकार उस प्रदेश के विद्रोहियों का दमन होकर सुव्यवस्था का आविर्भाव हुआ[1]।

जोरावरसिंह का चूरू पर अधिकार करना।

संग्रामसिंह इतना हो जाने पर भी ठीक रास्ते पर न आया था। उसके रहते शांति भंग होने की आशंका सदा विद्यमान रहती थी। अतएव बख़्तावरसिंह जाकर उसको उसके भाई भोपतसिंह सहित सालू में ले आया, जहां वि० सं० १७९८ आषाढ वदि ४ (ई० स० १७३१ ता० २३ मई) को वे दोनों छल से मार डाले गये। अनन्तर जोरावरसिंह ने जाकर चूरू तथा वहां की सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया एवं उन समस्त बणीरोतों को बाहर निकाल दिया जो राजकीय सेवा में नहीं थे। लगभग छः महीने तक उस इलाके को अपने हाथ में रखने के बाद पुनः संग्रामसिंह के पुत्र

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ९७। पाउलेट-कृत 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' में केवल इतना लिखा है कि बीकानेर में उपद्रवी ठाकुरों का दमन करने में जयसिंह ने जोरावरसिंह की सहायता की (पृ० ४१)।

बीरतसिंह को ही उसने वहां का स्वामी बना दिया[1]।

जयसिंह पर बख़्तसिंह की चढ़ाई

महाराजा जयसिंह की जोधपुर पर की विगत चढ़ाई में बख़्तसिंह को आशा हो गई थी कि इससे उसका जोधपुर की गद्दी पर अधिकार करने का अपना स्वार्थ भी सिद्ध होगा, परन्तु जब जयसिंह के केवल कुछ धन प्राप्तकर लौट आने से उसकी यह आशा धूल में मिल गई, तो वह जयसिंह का विरोधी हो गया और उसने अपने भाई अभयसिंह से मेल कर लिया। अनन्तर उसने ससैन्य ढूंढाड़ पर चढ़ाई की। यह खबर जयसिंह को मिलने पर वह भी फ़ौज के साथ उसका सामना करने को गया और कुछ देर की लड़ाई के बाद उसने उस (बख़्तसिंह) को भगा दिया। अभयसिंह उस समय आलणियावास में था, जहां बख़्तसिंह चला गया। जयसिंह ने अजमेर पहुंचकर अभयसिंह को युद्ध की चुनौती दी तथा मेहता आनंदरूप से कहा कि तुम अपने स्वामी (जोरावरसिंह) को लिखो कि नागोर पर चढ़ाई करे और शीघ्रतापूर्वक मुझ से आकर मिले। जोरावरसिंह तबतक चूरू में ही था, यह समाचार वहां पहुंचने पर उसने आगे बढ़कर नागोर का बड़ा बिगाड़ किया, परन्तु जब कुछ दिन बीत जाने पर भी वह जयसिंह के शामिल नहीं हुआ, तो उस (जयसिंह) ने आनंदरूप से इसके बारे में कहा। तब आनंदरूप स्वयं जोरावरसिंह के पास गया, पर जब उसके प्रस्थान करने का विचार न देखा, तो वह लौटकर जयसिंह की सेना में गया, परन्तु मार्ग में ही तबियत खराब हो जाने से पुष्कर के पास गांव बसी में उसका देहांत हो गया[2]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५३।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०३) में भी संग्रामसिंह और भूपाल (भोपत) सिंह के मरवाये जाने का हाल है, पर उसमें यह घटना ता० ३ जून को होना लिखा है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६७-८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५३।

बीकानेर का समुचित प्रबन्ध करके जोरावरसिंह जयपुर गया और ६ मास तक जयसिंह का मेहमान रहने के अनंतर वहां से लौटा[1]।

जोरावरसिंह का जयपुर जाना

भट्टियों और जोहियों का उत्पात फिर बढ़ रहा था, अतएव यह निश्चय हुआ कि तुर्कों के इन दोनों दलों को निकालकर हिसार पर अधिकार कर लेना चाहिये। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के पूर्व कुंवर गजसिंह, शेखावत नाहरसिंह तथा मेहता बख़्तावरसिंह को नोहर में छोड़कर जोरावरसिंह सकुटुम्ब करणीजी का दर्शन करने गया। ठाकुर कुशलसिंह सात हज़ार फ़ौज के साथ कर्णपुरा के जोहियों पर गया हुआ था, उसे जोरावरसिंह ने वापस बुला लिया[2]।

जोरावरसिंह का हिसार पर अधिकार करने का विचार करना

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि अभयसिंह से मेलकर ५००० सेना के साथ बख़्तसिंह जयसिंह पर गया। उधर ५०००० सेना के साथ जयसिंह भी गंगवाणे आया, जहां दोनों में युद्ध हुआ। इतनी थोड़ी सेना रहने पर भी बख़्तसिंह अभूतपूर्व वीरता के साथ लड़ा और दो-तीन बार कछवाहों की सेना के एक छोर से दूसरे छोर तक निकल गया (जि० २, पृ० १५२-३)। अन्यत्र इस सम्बन्ध में यह लिखा मिलता है कि बख़्तसिंह के पास ५-६ हज़ार सेना थी और जयसिंह के पास ३००००; जब बख़्तसिंह के पांच हज़ार आदमी कट गये तो उसने अपने बचे हुए साथियों के साथ इतने प्रबल वेग से शत्रु-पक्ष पर आक्रमण किया कि जयसिंह को जयपुर की तरफ़ भागना पड़ा, परन्तु यह केवल कल्पना-मूलक बात ही प्रतीत होती है। अपने से छः गुना या उससे भी अधिक सैन्य का सामना करना तो माना जा सकता है, पर उसे परास्त कर सकना कल्पना से दूर की बात है। वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०२-३) में भी दयालदास की ख्यात जैसा ही वर्णन है, अतएव उसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि भंडारी रघुनाथ के उद्योग से जोधपुर और जयपुर में सन्धि हुई (जि० २, पृ० १५४)।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५३-४।

अनन्तर जब राजमाता सीसोदिणी ने बीकानेर में चतुर्भुज का का मंदिर बनवाया तो जोरावरसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा की। वि० सं० १८०१ (ई० स० १७४४) में महाराजा जोरावरसिंह ने कोलायत जाकर कार्तिक सुदि १५ (ता० ६ नवंबर) को चांदी की तुला की। फिर वहां से उसने मेहता रघुनाथ को फ़ौज देकर सिरड भेजा, जहां थोड़ी सी लड़ाई के बाद उसका अधिकार हो गया[1]।

जोरावरसिंह का चांदी की तुला करना तथा सिरड पर अधिकार करना

कुछ समय पश्चात् रेवाड़ी के राव गूजरमल ने कहलाया कि हम और आप हिसार ले लें अतएव आप सेना भेजें। इसपर जोरावरसिंह ने वहां सेना भेजी। दौलतसिंह पृथ्वीराजोत (बाय) और मेहता बख़्तावरसिंह फ़ौज के साथ रिणी भेजे गये और जुझारसिंह आदि वणीरोतों की फ़ौज लेकर मेहता साहबसिंह चंगोई गया, जिसने तारासिंह (आनंदसिंहोत) से, जो बिना आज्ञा के चंगोई पर अधिकार कर बैठा था, उस स्थान को फिर छीन लिया। इस बात से नाराज़ होकर आनंदसिंह के चारों पुत्र मलसीसर गये, जहां से गजसिंह जयपुर में ईश्वरीसिंह के पास होता हुआ नागोर में बख़्तसिंह के पास गया। अनन्तर उपर्युक्त दोनों फ़ौजें मिलकर राव गूजरमल के पास हांसी हिसार में गईं, जहां उसका अमल हुआ। जोरावरसिंह स्वयं भी वहां गया और वहां से ही कुछ फ़ौज फतेहाबाद के भट्टियों पर भेजी गई, जिनका दमन किया जाकर वहां जोरावरसिंह का अधिकार हो गया[2]।

गूजरमल की सहायता तथा चंगोई, हिसार, फतेहाबाद पर अधिकार करना

वहां से लौटते समय मार्ग में जोरावरसिंह हसनखां भट्टी (भटनेर का) के पुत्र मुहम्मद से मिला और उससे पेशकशी ठहराई[3]। जिन दिनों

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६८।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५४।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६६।

मृत्यु

वह अनूपपुर में ठहरा हुआ था, उसका शरीर अस्वस्थ हो गया और चार दिन की बीमारी के बाद वहीं उसका वि० सं० १८०३ ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १७४६ ता० १४ मई) को निस्सन्तान देहांत हो गया[1]। यह भी कहा जाता है कि उसकी मृत्यु विष प्रयोग से हुई। उसके साथ उसकी देरावरी और तंवर राणियां सती हुईं[2]।

महाराजा जोरावरसिंह का व्यक्तित्व

जोरावरसिंह वीर, राजनीतिज्ञ और काव्यमर्मज्ञ था। वह युद्ध से बढ़कर मेल का महत्व समझता था। इसी से अवसर प्राप्त होने पर उसने जोधपुर और जयपुर से मेल करने में मुंह न मोड़ा। इसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ। कुछ सरदार उसके विरोधी अवश्य थे, परन्तु शेष के साथ उसका सम्बन्ध बड़ा अच्छा था। वह समझता था कि सरदारों

(१) अथास्मिन् शुभसम्वत्सरे श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १८०३ वर्षे शाके १६६८ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमेमासे ज्येष्ठमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ षष्ठयां गुरुवासरे ··············· महाराजाधिराज-महाराजश्रीजोरावरसिंहजीवर्मा देरावरीजीश्रीअखैकुंवर तंवरजी श्रीउमेद-कुंवरजी एवं द्वाभ्यां धर्मपत्नीभ्यां ············ सह श्रीनारायणपरमभक्ति-संसक्तचित्तः परमधाममुक्तिपदं प्राप्तः ················

(जोरावरसिंह की बीकानेर की स्मारक छत्री से)।

स्मारक छत्री के उपर्युक्त लेख के तिथि, वार आदि का मिलान करने से वे वि० सं० १८०३ में ही पड़ते हैं, अतएव जोरावरसिंह की मृत्यु का यह संवत् ठीक होना चाहिये। इसके विपरीत ख्यातों में संवत् १८०२ ज्येष्ठ सुदि ६ दिया है जो आषाढादि अथवा श्रावणादि संवत् होने से तो स्मारक छत्री के लेख से मेल खा जाता है, परन्तु आगे चलकर ख्यात में गजसिंह की मृत्यु का समय वि० सं० १८४४ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १७८७ ता० २५ मार्च) दिया है और यही उसकी स्मारक छत्री में भी है, जिससे यह निश्चित है कि ख्यात में दिये हुए संवत् भी चैत्रादि ही हैं। इस दृष्टि से ख्यात का दिया हुआ वि० सं० १८०२ (ई० स० १७४५) ठीक नहीं माना जा सकता।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६६ तथा जोरावरसिंह की स्मारक छत्री का लेख।

पर ही राज्य का अस्तित्व निर्भर है और इसी कारण उन्हें विरोधी होने का मौक़ा कम देता था।

मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार ज़ोरावरसिंह संस्कृत और भाषा का अच्छा कवि था। उसके बनाये दो संस्कृत ग्रन्थ—'वैद्यकसार' और 'पूजा-पद्धति'—बीकानेर के पुस्तकालय में हैं। भाषा में उसने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' की टीकायें बनाई थीं[1]। महाराजा अभयसिंह के द्वारा बीकानेर के घेरे जाने पर एक सफ़ेद चील को देखकर उसने यह दोहा कहा था—

डाढ़ाली डोकर थई, का तूं गई विदेस।
खून बिना क्यों खोसजे, निज बीका रो देस[2] ॥

महाराजा गजसिंह

दयालदास लिखता है—'ज़ोरावरसिंह के निःसन्तान मरने के कारण गढ़ तथा नगर का सारा प्रबन्ध अविलम्ब ठाकुर कुशलसिंह (भूकरका) और मेहता बख़्तावरसिंह ने अपने हाथ में ले लिया। उसके किसी सुयोग्य सम्बन्धी को सिंहासनारूढ़ करने का विचार हो ही रहा था कि इतने में अमरसिंह, तारासिंह तथा गूदड़सिंह[3] नागोर से सेना लेकर लाडणूं में बीकानेर का बिगाड़ करने के लिए आ पहुंचे। ठाकुर कुशलसिंह ने बीका बलरामसिंह को भेजकर उन्हें बुलवाया, जिसपर वे गांव गाढ़वाला में एक शमी-वृक्ष के नीचे आ ठहरे। यह समाचार अमरसिंह के छोटे भाई गजसिंह को विदित होने पर उसने भी तुरन्त बीकानेर आकर भोमियादेव के शमी वृक्ष के नीचे डेरा किया। शकुन विचारनेवालों से जब राज्य के भावी स्वामी के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया तो उन्होंने बतलाया कि भोमियादेव के वृक्ष के नीचे आकर ठहरनेवाला व्यक्ति ही राज्य का अधिकारी होगा। गजसिंह ही सभों में अधिक बुद्धिमान

गजसिंह को गद्दी मिलना

(१) राजरसनामृत; पृ० ४९-५०।

(२) नरोत्तमदास स्वामी; राजस्थान रा दूहा; भाग १, पृ० ६६ तथा २३७।

(३) ज़ोरावरसिंह के चाचा आनन्दसिंह के पुत्र।
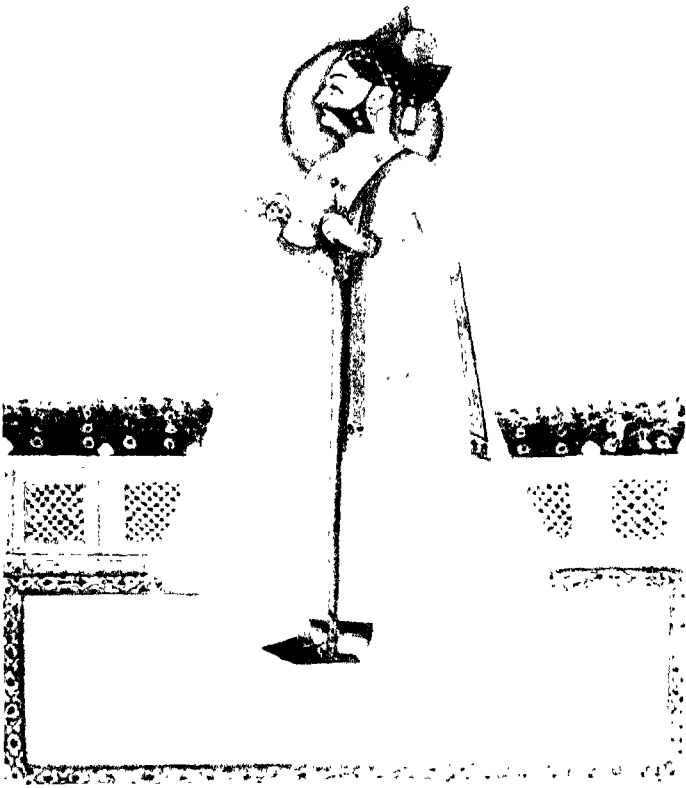
महाराजा गजसिंह

था, अतएव ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के होते हुए भी, ठाकुर कुशलसिंह तथा मेहता बख्तावरसिंह एवं अन्य सरदारों आदि ने सलाह कर उस(गजसिंह)को ही गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया और उसे बुलाकर उस समय तक के राज्यकोष का हिसाब न मांगने का वचन लेकर वि० सं० १८०२ आषाढ वदि १४ (ई० स० १७४५ ता० १७ जून) को उसे बीकानेर के राज्यसिंहासन पर बिठलाया। अमरसिंह ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण निश्चिन्त था, परन्तु गजसिंह की गद्दीनशीनी का हाल मालूम होते ही वह वहां से चला गया[1]।'

दयालदास का दिया हुआ गद्दीनशीनी का उपर्युक्त संवत् ठीक नहीं है, क्योंकि महाराजा जोरावरसिंह के स्मारक लेख से वि० सं० १८०३ ज्येष्ठ सुदि ६ को उसकी मृत्यु होना निश्चित है[2]। संभव है उसमें दी हुई गजसिंह की गद्दीनशीनी की तिथि ठीक हो[3]।

जोधपुर की सहायता से अमरसिंह की बीकानेर पर चढ़ाई

अभयसिंह उन दिनों अजमेर में था, जहां महाजन का ठाकुर भीमसिंह तथा अन्य बीकानेर के विरोधी उसके पास थे। लालसिंह(भाद्रा)को भी सवाई जयसिंह के मरने पर अभयसिंह ने छुड़वाकर अपने पास रख लिया था। अमरसिंह भी भागकर उस(अभयसिंह)के पास चला गया तथा अभयसिंह के साथ रहे हुए बीकानेर के विरोधी सरदारों ने उसे ही बीकानेर की गद्दी दिलाने का निश्चय किया। अनन्तर अभयसिंह ने अपने बहुत से सरदारों एवं भीमसिंह, लालसिंह अमरसिंह आदि के साथ एक विशाल सेना बीकानेर पर भेजी, जो मार्ग में लूटमार करती हुई सरूपदेसर के पास ठहरी। बीकानेरवाले जोधपुर के विगत हमलों से सतर्क रहने लगे थे। इस अवसर पर बीकों,

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५४-५।

(२) देखो ऊपर पृ० ३२१, टि० १।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात के पीछे से बढ़ाये हुए अंश में गजसिंह की गद्दीनशीनी का समय वि० सं० १८०३ आश्विन वदि १३ (ई० स० १७४६ ता० २ सितम्बर) दिया है (जि० २, पृ० २०१), जो ठीक प्रतीत नहीं होता।

बीदावतों, रावतोतों, बणीरोतों, भाटियों, रूपावतों, कर्मसोतों आदि की सेनाएं एकत्र होकर शत्रुपक्ष का सामना करने के लिए रामसर कुएं पर जाकर डटीं, परन्तु कई मास तक एक दूसरे के सम्मुख पड़े रहने पर भी केवल मुठभेड़ होने के अतिरिक्त कोई बड़ा युद्ध न हुआ। तब जोधपुर के सरदारों ने कहलाया कि यदि भूमि के दो भाग कर दिये जावें तो हम वापस लौट आवें, परन्तु गजसिंह ने यही उत्तर दिया कि हम इस तरह सुई की नोक के बराबर भूमि भी न देंगे और कल प्रातः तलवार से हमारी शान्ति की शर्तें तय होंगी। दूसरे दिन अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त कर गजसिंह शत्रुओं के सामने जा पहुंचा। बीदावतों, रावतोतों और बीका राठोड़ों की बीच की अनी में महाराजा स्वयं हाथी पर विद्यमान था। दाहिनी अनी में भाटी, रूपावत और मंडलावत थे तथा बांई अनी में तारासिंह, चूरू का ठाकुर धीरजसिंह और मेहता बख़्तावरसिंह आदि थे। हरावल में कुशलसिंह (भूकरका), मेहता रघुनाथसिंह तथा दौलतसिंह (बाय) थे और चंदावल में प्रेमसिंह बाघसिंहोत बीका, महाराजा के अंगरक्षकों-सहित था। सुजानदेसर कुएं के पास शत्रुपक्ष में से कुछ ने एक बुर्ज बना ली थी, परन्तु बीकानेर की दाहिनी अनी ने हल्ला कर उन्हें वहां से भगा दिया और वहां अधिकार कर लिया। इसपर जोधपुर की सेना में से भंडारी रतनचन्द अपनी सारी फ़ौज के साथ चढ़ गया। गजसिंह उस समय घोड़े पर सवार होकर लड़ रहा था; उस घोड़े के एक गोली लग जाने से वह मर गया, तब वह दूसरे घोड़े पर बैठकर लड़ने लगा। अमरसिंह उस समय तक यही समझ रहा था कि गजसिंह हाथी पर चढ़कर लड़ रहा है, अतएव उसने उधर ही आक्रमण किया। तारासिंह ने उधर घूमकर अमरसिंह पर वार किया। इसी बीच गजसिंह का दूसरा घोड़ा भी मर गया, जिससे वह फिर हाथी पर ही आरूढ़ हो गया। इतनी देर की लड़ाई में भंडारी (रतनचन्द), भीमसिंह तथा अमरसिंह इतने घायल हो गये कि उनके लिए अधिक लड़ना असम्भव हो गया। फिर महाराजा गजसिंह के हाथ से भंडारी रतनचन्द की आंख में तीर लगते ही शत्रु, बची हुई सेना के साथ रणक्षेत्र छोड़कर भाग

गये[1], परन्तु बीकानेर के जैतपुर के ठाकुर स्वरूपसिंह ने आगे बढ़कर बरछी के एक वार से भंडारी का काम तमाम कर दिया। इस युद्ध में जोधपुर की बड़ी हानि हुई। बीकानेर के भी कितने ही सरदार काम आये। जब इस पराजय का समाचार अभयसिंह के पास पहुंचा तो उसे बड़ा खेद हुआ और उसने एक दूसरी सेना भंडारी मनरूप की अध्यक्षता में भेजी, जो डीडवाणे तक आई, परन्तु इसी समय बीकानेर से सेना आ जाने के कारण वह वहां से लौट गई। यह घटना वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में हुई[2]।

---

(१) यह घटना वि० सं० १८०४ के श्रावण मास में हुई, जैसा कि बीकानेर के भांडासर नामक जैनमन्दिर के पास से मिले हुए नीचे लिखे स्मारक लेख से पाया जाता है—

....

स्वस्ति श्रीमत्शुभसंवत्सरे संवत् १८
०४ वर्षे शाके १६६९ प्रवर्त्तमाने
महामांगल्यप्रदमासोत्तममासे
श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ
तृतीयायां ३ सोमवासरे श्री-
बीकानेयर मध्ये महाराजा-
धिराजमहाराजाश्रीगज-
[सिं]घजीविजयराज्ये काश्यप-
गोत्रे राठोड़कांधलवंशे वणीरो-
त राजश्रीअजबसंघजीतत्पु-
त्रमोहकमसंघजीतस्यात्मज
[स]वाईसंघजी जोधपुर री फो-
ज भागी ताहीरा काम आया

(मूल लेख से)।

(२) दयालदास की ख्यात जि० २, पत्र ६६-७१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ५५-६।

उन्हीं दिनों कतिपय बीदावतों का उत्पात बहुत ज्यादा बढ़ गया था इसलिए महाराजा गजसिंह ने छापर में निवास करते समय मुहब्बतसिंह बिहारीदासोत बीदावत (भागचन्दोत), देवीसिंह हिन्दूसिंहोत बीदावत तथा संग्रामसिंह दुर्जनसिंहोत बीदावत को अपने पास बुलवाकर मरवा डाला, जिससे देश में शान्ति हुई[1]।

उपद्रवी बीदावतों को मरवाना

इसी बीच अभयसिंह और बख़्तसिंह में वैमनस्य बढ़ गया, जिससे बख़्तसिंह ने पड़िहार शिवदान आदि को बीकानेर भेजकर बख़्तावरसिंह की मारफ़त गजसिंह से मेल कर लिया। अनन्तर जोधपुर पर चढ़ाई करने का निश्चयकर वह दिल्ली में बादशाह मुहम्मदशाह[2] की सेवा में गया और

गजसिंह का बख़्तसिंह की सहायता को जाना

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १४८-६) से भी पाया जाता है कि जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसके भाई आनन्दसिंह के छोटे पुत्र गजसिंह को बीकानेर की गद्दी मिली। इसपर जोधपुर की सेना ने बीकानेर पर चढ़ाई की, जिसमें गजसिंह का बड़ा भाई अमरसिंह भी साथ था। इस लड़ाई का परिणाम तो उक्त ख्यात में नहीं दिया है, परन्तु आगे चलकर भंडारी मनरूप को चांपावत देवीसिंह (पोहकरण), ऊदावत कल्याणसिंह (नीवाज), मेड़तिया शेरसिंह (रीयां) आदि सहित फिर बीकानेर पर भेजना लिखा है, जिससे यह निश्चित है कि पहले भेजी हुई सेना की पराजय हुई होगी। जोधपुर राज्य की ख्यात में भंडारी मनरूप की सेना में भी अमरसिंह का होना लिखा है। उसी ख्यात से पाया जाता है कि उन्हीं दिनों मल्हारराव होल्कर ने जयपुर पर चढ़ाई कर अभयसिंह से सैनिक सहायता मंगवाई, जिसपर मनरूप उधर भेज दिया गया।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५६।

(२) दयालदास की ख्यात में अहमदशाह नाम दिया है, जो ठीक नहीं है। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी बख़्तसिंह का मुहम्मदशाह के समय दिल्ली जाना तथा वहां से अहमदशाह के समय में लौटना लिखा है (जि० २, पृ० १६०)। वीरविनोद; (भाग २, पृ० ५०४) में भी अहमदशाह ही दिया है। ख्यातों में 'म' के स्थान पर 'अ' हो जाना असम्भव नहीं है।

पठानों के साथ के युद्ध में भाग लेने के पश्चात् वहां से एक बड़ी सेना सहायतार्थ प्राप्तकर सांभर में आकर ठहरा, जहां उसने गजसिंह को भी बुलाया। अभयसिंह को इसकी खबर मिलने पर उसने मल्हारराव होल्कर को अपनी सहायता के लिए बुलाया। गजसिंह के आ जाने से बख़्तसिंह की सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई। इस सम्बन्ध में उसने गजसिंह से कहा भी था कि आपके मिल जाने से हम एक और एक दो नहीं वरन् ग्यारह हो गये हैं।

अभयसिंह ने मरहटों की सहायता के बल पर भाई पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया, परन्तु इसी समय जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के भेजे हुए एक मनुष्य के आ जाने से बख़्तसिंह और मल्हारराव होल्कर की बातचीत हो गई और उस (मल्हारराव) ने दोनों भाइयों में मेल करा दिया, पर इससे आन्तरिक मनोमालिन्य दूर न हुआ[1]।

तदनन्तर गजसिंह स्वदेश को लौटता हुआ डीडवाणे पहुंचा जहां मेहता भीमसिंह-द्वारा उसे अपने पिता (आनन्दसिंह) के रिणी में रोगशय्या पर पड़े रहने का समाचार मिला, परन्तु बीकानेर पहुंचने पर भी वह उधर नहीं गया, क्योंकि बीकमपुर के भाटियों का उपद्रव उन दिनों बहुत बढ़

बीकमपुर पर गजसिंह का अधिकार होना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५६-७।

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १६०) में भी लिखा है कि भाई की इच्छा के विरुद्ध बख़्तसिंह दिल्ली जाकर बादशाह की तरफ़ से पठानों से लड़ा तथा अहमदशाह के सिंहासनारूढ होने पर फ़ौज खर्च तथा सांभर, डीडवाणा, नारनोल और गुजरात का सूबा प्राप्तकर देश को लौटा। इसपर अभयसिंह मल्हारराव को सहायतार्थ बुलवाकर सांभर में, जहां बख़्तसिंह के होने का समाचार मिला था, गया। अभयसिंह का इरादा जालोर छुड़ा लेने का था, परन्तु बाद में दोनों भाइयों के मिल जाने पर अभयसिंह अजमेर चला गया और बख़्तसिंह नागोर, परन्तु उसने जालोर नहीं छोड़ा। उक्त ख्यात में बख़्तसिंह के सहायकों में गजसिंह का होना नहीं लिखा है, परन्तु अधिक संभव तो यही है कि वह उस (बख़्तसिंह) की सहायतार्थ गया हो, क्योंकि इससे पहले भी कई बार बीकानेर से उसे सहायता मिल चुकी थी।

रहा था, जिसे रोकना बहुत आवश्यक था। कोलायत पहुंचकर उसने मेहता भीमसिंह को फ़ौज देकर इस कार्य पर भेजा, जिसने मांडाल में डेरा किया। अनन्तर भाटी कुंभकर्ण की मारफ़त दस हज़ार रुपये पेशकशी के ठहराकर बीकमपुर के प्रधान ने गजसिंह से संधि कर ली, जिसपर गजसिंह बीकानेर लौट गया। इसी बीच वि० सं० १८०५ फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० १७४६ ता० १६ फ़रवरी) को[1] आनन्दसिंह के स्वर्गवास होने का समाचार उसके पास पहुंचा, जिसे सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ। द्वादशाह करने के उपरान्त वह रणिया गया। बीकमपुर के पेशकशी के रुपये न दिये जाने के कारण कुंभकर्ण ने महाराजा से बीकमपुर पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त की। कुछ ही समय के बाद वहां के राव स्वरूपसिंह को मारकर उसने वहां अधिकार कर लिया और इसकी सूचना गजसिंह को दी। तब गजसिंह ने एक सोने की मूठ की तलवार तथा सिरोपाव देकर मेहता भीमसिंह और पड़िहार धीरजसिंह को वहां भेजा[2]।

भीमसिंह का आकर क्षमा-प्रार्थी होना

गजसिंह जब गारबदेसर में था, उस समय वाय के दौलतसिंह आदि के प्रयत्न से महाजन का विद्रोही ठाकुर भीमसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हो गया। गजसिंह ने उसका अपराध क्षमा कर उसकी जागीर उसे सौंप दी। भीमसिंह ने अभयसिंह से मिला हुआ 'गोकुलगज' नाम का हाथी इस अवसर पर महाराजा को भेंट किया[3]।

जिन दिनों गजसिंह कुछ ठाकुरों के झगड़े निपटाने में व्यस्त था, उसके पास बीकमपुर से समाचार आया कि जैसलमेर के रावल ने चढ़ाई

(१) 'वीरविनोद' में भी आनन्दसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है (भाग २, पृ० ५०४)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७१। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५७।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५७।

बीकमपुर पर रावल अखैसिंह का अधिकार होना

कर दी है, अतएव आप शीघ्र सहायता को आवें। इसपर वह स्वयं सहायता के लिए चला, परन्तु मार्ग में श्रावणादि वि० सं० १८०५ (चैत्रादि १८०६) आषाढ सुदि १५ (ई० स० १७४९ ता० १९ जून) सोमवार[1] को अजमेर में अभयसिंह का देहांत होने की खबर मिलते ही वह फिर बीकानेर लौट गया। श्रावण सुदि १०[2] को रामसिंह के जोधपुर की गद्दी पर बैठने पर जब बख़्तसिंह ने उसके पास टीका भेजा तो उसने उसे यह कहकर लौटा दिया कि पहले जालोर छोड़ो तो वह स्वीकार किया जायगा। बख़्तसिंह के इस बात को अस्वीकार करने पर उसने मेड़तियों की सहायता से उस(बख़्तसिंह)-पर चढ़ाई कर दी[3]। तब बख़्तसिंह ने आदमी भेजकर बीकानेर से सहायता मंगवाई। इसपर गजसिंह १८००० सेना लेकर उसकी सहायता के लिए गया। एक साथ दो स्थानों पर लड़ना कठिन कार्य था अतएव उसने बीकमपुर में रक्खी हुई सेना भी अपने पास बुला ली। ऐसा अच्छा अवसर देख जैसलमेर के रावल अखैराज ने बीकमपुर पर चढ़ाई कर कुंभकर्ण को छल से मार वहां अधिकार कर लिया। तब से बीकमपुर जैसलमेर राज्य में है[4]।

बख़्तसिंह की सहायता को जाना

फिर गांव सरणवास में जाकर महाराजा गजसिंह बख़्तसिंह से मिला। अनन्तर बख़्तसागर होते हुए हीलोड़ी गांव में दोनों के डेरे हुए, जहां रूण में महाराजा रामसिंह के होने का समाचार आने पर बख़्तसिंह ने वहां पहुंच-

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी अभयसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है (जि० २, पृ० १६१)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १६३। दयालदास की ख्यात में वि० सं० १८०५ श्रावण वदि १२ दिया है, जो ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी ऐसा ही उल्लेख है (जि० २, पृ० १६३-५)।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५७ (जालोर के स्थान पर नागोर दिया है, जो ठीक नहीं है)।

कर भंडारी मनरूप को दग़ा से मार डाला, परन्तु कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई। जब बख़्तसिंह तथा गजसिंह मोड़ी में पहुंचे तो उन्हें पता लगा कि अमरसिंह तथा भाद्रा के लालसिंह ने सवाई आदि गांवों को लूटा और झगड़ा किया है। इसपर तारासिंह सेना सहित उनपर चढ़ा। रिणी पहुंचने पर उसने बड़ी वीरतापूर्वक विद्रोहियों का सामना किया, परन्तु अंत में अपने कितने ही साथियों सहित वह मारा गया, जिससे रिणी में अमरसिंह का अधिकार हो गया। इतना होने पर भी गजसिंह ने बख़्तसिंह का साथ न छोड़ा, पर अपने कई सरदारों को सेना देकर उधर भेज दिया। पीछे से ऊंट सवारों के साथ मेहता मनरूप को भी बख़्तसिंह ने उनकी सहायतार्थ रवाना कर दिया। रामसिंह की सेना में जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह का भेजा हुआ राजावत दलेलसिंह निर्भयसिंहोत ४००० सवारों के साथ था, उसने बख़्तावरसिंह से बात कर बख़्तसिंह के जालोर छोड़ देने एवं बदले में तीन लाख रुपये तथा अजमेर लेने की शर्त पर दोनों में सन्धि करा दी[1]। रुपया चुकाने की अवधि छः मास निश्चित हुई। अनन्तर रामसिंह वहां से लौट गया तथा गजसिंह भी दलेलसिंह से बातचीत कर बीकानेर चला गया[2]।

रिणी पर तब तक अमरसिंह का ही अधिकार था। बीकानेर लौटने पर गजसिंह ने रिणी की ओर प्रस्थान किया, जिसकी ख़बर लगते ही अमरसिंह डरकर रिणी

अमरसिंह से रिणी छुड़ाना

---

(१) इसके विपरीत जोधपुर-राज्य की ख्यात में लिखा है कि ईश्वरीसिंह के पास से राजावत दलेलसिंह उसकी पुत्री के विवाह के नारियल लेकर रामसिंह के पास आया हुआ था। उसका इस सन्धि में कोई हाथ नहीं रहा। थोड़ी लड़ाई के बाद बख़्तसिंह ने जालोर देने की शर्त कर संधि कर ली थी, परन्तु उसने जालोर से अपना अधिकार लड़ाई बंद होने पर भी नहीं हटाया (जि० २, पृ० १६६)। उक्त ख्यात से इस लड़ाई में गजसिंह का बख़्तसिंह के पक्ष में होना नहीं पाया जाता, परन्तु उसका बख़्तसिंह के शामिल होना अविश्वसनीय कल्पना नहीं है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० ७२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५७-८।

छोड़कर फतहपुर होता हुआ जोधपुर भाग गया[1]।

जिन दिनों गजसिंह रिणी इलाक़े के गांव जोड़ी में ठहरा हुआ था, उसके पास बख़्तसिंह ने कहलाया कि मैं बादशाह के बख़्शी (सलाबतख़ां) को सहायतार्थ लाने जा रहा हूं, आप भी शीघ्र आजावें। उधर जोधपुर के शासक रामसिंह के कुछ ज़िद्दी होने के कारण और उसके अपमानपूर्ण व्यवहारों से तंग आकर कितने ही प्रमुख सरदार नागोर में बख़्तसिंह से जा मिले। बादशाही सेना के पहुंचने के बाद ही गजसिंह भी अपने राज्य का समुचित प्रबन्ध कर सेना सहित बख़्तसिंह से मिल गया। इस विशाल सैन्य का आगमन सुन रामसिंह ने जयपुर से महाराजा ईश्वरीसिंह के पास से सहायता मंगवाई। गांव सूरियावास में विपक्षी दलों में तोपों का भीषण युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर के बहुसंख्यक लोग मारे गये। अनन्तर पीपाड़ में भी बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें अमरसिंह (पीसांगण) आदि रामसिंह के कई सहायक सरदार मारे गये, परन्तु कुछ निर्णय न हुआ। युद्ध से होनेवाली भीषण हानि देखकर ईश्वरीसिंह मुसलमान सेनाधिपति से मिल गया और वे दोनों युद्धक्षेत्र छोड़कर अपने-अपने स्थानों को चले गये। प्रधान सहायकों के चले जाने पर युद्ध का जारी रखना हानिप्रद ही सिद्ध होता अतएव गजसिंह, बख़्तसिंह तथा रामसिंह भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये[2]।

बख़्तसिंह की सहायतार्थ जाना

वि० सं० १८०७ (ई० स० १७५०) में ईश्वरीसिंह ज़हर खाकर मर गया और जयपुर की गद्दी पर उसका भाई माधोसिंह बैठा। ईश्वरीसिंह के मरने से रामसिंह का एक प्रधान सहायक जाता रहा। तब मारवाड़ के प्रमुख सरदारों ने, जो पहले

दूसरी बार बख़्तसिंह की सहायता करना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ४८। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है (जि० २, पृ० १७१)। उक्त ख्यात में भी नवाब का नाम सलाबतख़ां दिया है।

से ही रामसिंह के विरुद्ध थे, बख़्तसिंह से जाकर निवेदन किया कि रामसिंह इस समय केवल थोड़े से साथियों सहित मेड़ते में है, अतएव चढ़ाई करने का उपयुक्त अवसर है। बख़्तसिंह के मन में भी यह बात जम गई। बीकानेर से गजसिंह को इससे पूर्व ही उसने अपने पास बुला लिया था। दोनों की सम्मिलित सेना ने खेढली होते हुए डूदासर तालाब पर पहुंचकर वि० सं० १८०७ मार्गशीर्ष वदि ६ (ई० स० १७५० ता० ११ नवम्बर) को मेड़तियों को हराकर रामसिंह का डेरा इत्यादि लूट लिया। वहां से गजसिंह तथा बख़्तसिंह ने बीलाड़े जाकर एक लाख रुपये पेशकशी के वसूल किये। पीछे जब वे सोजत में थे, तब रामसिंह ने सैन्य एकत्र कर उनपर फिर आक्रमण किया, परन्तु उसे पराजित होकर भागना पड़ा। विजयी सेना ने उसके खेमे लूटकर उनमें आग लगा दी। इस अवसर पर ज़ालिमसिंह किशोरसिंहोत मेड़तिया ने उनको रोकने का प्रयत्न किया, पर विपक्षी सेना के अधिक होने से उसे अपने प्राण गंवाने पड़े। अनन्तर युद्ध करने में कोई लाभ न देख सन्धि कर रामसिंह जोधपुर चला गया और गजसिंह तथा बख़्तसिंह नागोर लौट गये[1]।

बख़्तसिंह को जोधपुर का राज्य दिलाना

उनके उधर प्रस्थान करते ही रामसिंह पुनः मेड़ते जा रहा, जिसकी खबर लगते ही गजसिंह तथा बख़्तसिंह ने वि० सं० १८०८ आषाढ सुदि ६ (ई० स० १७५१ ता० २१ जून) को सीधे जोधपुर जाकर वहां चार प्रहर तक खूब लूट मचाई। गढ़ के भीतर भाटी सुजानसिंह तथा पोकरण के ठाकुर देवीसिंह के श्वसुर थे, जो उनकी सेवा में उपस्थित हो गये और गढ़ उनके सुपुर्द कर दिया। तब क़िले में प्रवेश कर गजसिंह ने बख़्तसिंह को गद्दी पर बैठाया और इसकी बधाई दी। बख़्तसिंह ने इसके उत्तर में निवेदन किया कि यह आपकी समयोचित सहायता के बल पर ही संभव हो

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७४-५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५८-६। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का प्रायः ऐसा ही वर्णन है (जि० २, पृ० १७३-८)।

सका है। अनन्तर वहां से विदा हो गजसिंह बीकानेर लौट गया[1]।

इसी समय जैसलमेर से रावल अखैराज के पास से उसके विवाह का सन्देश आया। गजसिंह ने इस खुशी के अवसर पर बख़्तसिंह को भी निमन्त्रित किया। युद्ध होने की आशंका से वह स्वयं तो न गया, परन्तु अपने पुत्र विजयसिंह को उसने भेज दिया, जो मार्ग में गांव ओढांणी में बरात के शामिल हो गया। वि० सं० १८०८ माघ सुदि ५ (ई० स० १७५२ ता० १० जनवरी) को गजसिंह ने जैसलमेर पहुंचकर रावल अखैराज की पुत्री चंद्रकुंवरी से विवाह किया। इस अवसर पर उसके साथ के बहुतसे सरदारों की शादियां भी वहां हुईं[2]।

गजसिंह का जैसलमेर में विवाह

बीकानेर लौटने पर गजसिंह ने मेहताओं को पदच्युत कर उनके स्थान पर मूंधड़ों को नियुक्त किया। अनन्तर वि० सं० १८०९ (ई० स० १७५२) में उसने मूंधड़ा अमरसिंह को शेखावतों के गांव शिवदड़ा पर भेजा, क्योंकि वहां उपद्रव बढ़ रहा था। वहां बख़्तसिंह की आज्ञा से दौलतपुर (शेखावाटी) का नवाब भी आकर शामिल हो गया। इस सम्मिलित सैन्य ने गांव को लूटकर गढ़ी को गिरा दिया और उपद्रवियों को पकड़कर वहां शान्ति

शेखावतों का दमन करना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०४। जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १८०८ श्रावण वदि २ (ई० स० १७५१ ता० २९ जून) को जोधपुर पर बख़्तसिंह का अधिकार होना लिखा है। इस अवसर पर उसने अभयसिंह-द्वारा छीनी हुई बीकानेर की खरबूजी की पट्टी पीछी गजसिंह को दे दी (जि० २, पृ० १८०)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ५९-६०।

इस विवाह का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १८१) में भी है। लक्ष्मीचन्द्र लिखित *'जैसलमेर की तवारीख़'* में भी चन्द्रकुंवरी का विवाह महाराजा गजसिंह के साथ होना लिखा है (पृ० ६७)।

स्थापित की[1]।

कुछ दिनों बाद गजसिंह का डेरा रिणी में हुआ, जहां रहते समय बख़्तसिंह के पास से समाचार आया कि रामसिंह दक्खिनियों की फ़ौज लेकर अजमेर तक आ गया है, अतएव आप सहायतार्थ आइये। इसपर गजसिंह ने नागोर की ओर प्रस्थान किया। बख़्तसिंह पहले ही अजमेर की ओर रवाना हो चुका था। लाडपुरा में दोनों एकत्र हो गये। वहां से चलकर दोनों पुष्कर में ठहरे। उनका आगमन सुनते ही रामसिंह और मरहटे बिना लड़े वापस चले गये। तब गजसिंह बिदा ले बीकानेर लौट गया[2]।

बख़्तसिंह की सहायता को जाना

हिसार का परगना बहुत दूर होने के कारण, बादशाह (अहमदशाह) वहां का सुचारु प्रबन्ध नहीं कर सकता था और वहां के लोग सदा उपद्रव किया करते थे, अतएव वह परगना गजसिंह के नाम कर दिया गया। उसने मेहता बख़्तावरसिंह को ससैन्य भेज वि० सं० १८०९ ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १७५२ ता० १९ मई) को वहां अपना अधिकार स्थापित किया[3]।

बादशाह की तरफ़ से गजसिंह को हिसार का परगना मिलना

वि० सं० १८०९ भाद्रपद वदि १३ (ई० स० १७५२ ता० २६ अगस्त) को अजमेर इलाक़े के सोनौली गांव में बख़्तसिंह का स्वर्गवास हो गया और उसका पुत्र विजयसिंह

बख़्तसिंह की मृत्यु

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६०।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६०। रामसिंह का मरहटों से भाई-चारा स्थापित करने एवं अजमेर आने का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में भी है (जि० २, पृ० १८३-४)।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१।

जोधपुर की गद्दी पर बैठा[1]।

उन्हीं दिनों बादशाह अहमदशाह के पास से आज्ञापत्र आया कि वज़ीर मन्सूरअलीखां (? सफ़दरजंग) विद्रोही हो गया है, इसलिए शीघ्र सेना लेकर आओ। इसपर गजसिंह ने बादशाह की सेवा में सेना भेजी, जो हिसार में मेहता बख्तावरसिंह के शामिल होकर दिल्ली पहुंची[2]। बख्तावरसिंह ने बादशाह की सेवा में उपस्थित हो महाराजा की ओर से मोहरें आदि भेंट कीं। समय पर सहायता लेकर पहुंच जाने से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गजसिंह का मनसब सात हज़ारी करके सिरोपाव के साथ 'श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि श्री गजसिंह' का खिताब प्रदान किया, जो बाद में उसके नाम की मुद्रा[3]

बादशाह की तरफ़ से गजसिंह को मनसब मिलना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० २, पृ० १८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१।

(२) सर यदुनाथ सरकार ने इस अवसर पर बीकानेर (महाराजा गजसिंह) से ७५०० सेना आना लिखा है (फ़ॉल ऑव् दि मुग़ल एम्पायर; जि० १, पृ० ४१२ का टिप्पण)।

(३) वि० सं० १८२६ वैशाख वदि २ (ई० स० १७६९ ता० २३ अप्रेल) के नौहर क़स्बे से महाराजा गजसिंह और महाराजकुमार राजसिंह के लिखे हुए जोधपुर के ओझा रामदत्त के नाम के परवाने के ऊपर छः पंक्तियों की नीचे लिखी हुई मुद्रा लगी है—

श्रीलक्ष्मीनारायणजी-
भक्त राजराजेश्वर म-
हाराजाधिराज महारा-
जशिरोमणि महारा-
ज श्री गजसिंहानां मु-
द्रेयं विजयते ॥ १ ॥

और शिलालेखों[1] में लिखा जाने लगा[2]। इस अवसर पर उसे माही मरातिब का श्रेष्ठ सम्मान भी प्राप्त हुआ और उसके कुंवर राजसिंह को चार हज़ारी मनसब[3] तथा मेहता बख़्तावरसिंह को राव का ख़िताब दिया गया[4]। कितने ही दूसरे सरदारों आदि को भी सिरोपाव मिले[5], जिनमें से प्रमुख के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—भोपतसिंह	ठिकाना	धाय
२—ज़ोरावरसिंह	,,	कुंभाणा
३—पेमसिंह	,,	नीमा
४—सरदारसिंह	,,	पारवा
५—सुखरूप	,,	परावा
६—ज़ालिमसिंह	,,	बीदासर
७—दीपसिंह	,,	कणवारी

---

(१) अथास्मिन् शुभसंवत्सरे श्रीविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १८३६ वर्षे शाके १७०१ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमे माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ द्वादश्यां ....पुनर्वसुनक्षत्रे............श्रीराजराजेश्वरमहाराजाधिराज-महाराजशिरोमणिमहाराजश्री १०८ श्रीगजसिंहदेवैः चूंडासागरस्य जीर्णोद्धारः कृतः.........

(चूंडासागर के लेख की छाप से)।

(२) बादशाह अहमदशाह के सन् जुलूस ६ ता० २ शव्वाल (हि० स० ११६६ = वि० सं० १८१० श्रावण सुदि ४ = ई० स० १७५३ ता० ३ अगस्त) के फ़रमान में भी गजसिंह को सात हज़ार ज़ात और पांच हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(३) उपर्युक्त टिप्पण २ की तारीख़ के एक दूसरे फ़रमान में गजसिंह के पुत्र राजसिंह को चार हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है।

(४) उपर्युक्त टिप्पण २ में आई हुई तारीख़ के एक दूसरे फ़रमान में बख़्तावरसिंह को चार हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार का मनसब तथा 'राव' का ख़िताब मिलना लिखा है।

(५) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१।

८—बीरतसिंह ठिकाना सांडवा
९—देवीसिंह ,, हरासर
१०—विजयसिंह ,, चाहड़वास
११—धीरतसिंह ,, चूरू
१२—शेखावत चांदसिंह
१३—पुरोहित रणछोड़दास

जिन दिनों महाराजा हिसार में था बीकानेर और जोधपुर की मिला-कर ५०००० फ़ौज उसके साथ थी। दिल्ली में मनसूरअलीखां (? सफ़दरजंग) का विद्रोह भी समाप्त हो चुका था। इसी समय गजसिंह से विजयसिंह ने यह कहलाया कि दक्खिनियों की सहायता से रामसिंह राज्य पर आक्रमण करनेवाला है, आप शीघ्र सहायता को आवें। इसपर उस(गजसिंह)ने खींवसर के ठाकुर जोरावरसिंह उदयसिंहोत आदि कई सरदारों को ४००० सेना के साथ उधर रवाना किया। अनन्तर हिसार का प्रबन्ध मेहता रघुनाथ एवं द्वारकाणी (महाजन) के हाथों में देकर वह स्वयं रिणी गया। वहां जैसलमेरी राणी से कुंवर सबलसिंह का जन्म हुआ, जिसका उत्सव मनाने के बाद मेहता भीमसिंह तथा पुरोहित को भी ससैन्य पीछे आने का आदेश कर वह नागोर पहुंचा। पीछे चली हुई भीमसिंह की सेना के भी शामिल हो जाने पर वह खजवाणा होता हुआ मेड़ता पहुंचा। इसी बीच मरहटों की सेना के व्रज की ओर चले जाने का समाचार मिला। तब गजसिंह ने अपनी अनुपस्थिति में हिसार के परगने में उपद्रव होने की आशंका देख उधर जाने की अनुमति मांगी, परन्तु जोधपुर का उपद्रव शांत हो जाने तक विजयसिंह ने उससे वहीं रहने का आग्रह किया और कहा कि इधर से निवृत्त होने पर हिसार पर फिर अधिकार कर लेंगे। इसपर गजसिंह वहीं ठहर गया और हिसार से थाना उठा लिया गया। अनन्तर उसने पूनियांण का प्रबन्ध कर सादाऊ में अपना थाना स्थापित किया तथा सिवरांण से पेशकशी वसूल की और मंडोली के विद्रोही जाटों को मारकर

विजयसिंह की सहायतार्थ जाना।

उस प्रदेश में सुप्रबन्ध का आविर्भाव किया[1]।

इसके थोड़े दिनों बाद ही जयआपा सिन्धिया ने मारवाड़ पर आक्रमण किया। गजसिंह ने इस अवसर पर स्वदेश से और सेना बुलवाई। अब सब मिलाकर उसकी सेना ४०००० हो गई; इसके अतिरिक्त ७०००० फ़ौज विजयसिंह की थी तथा ५००० सेना के साथ किशनगढ़ का राजा बहादुरसिंह भी सहायतार्थ आया हुआ था। रामसिंह के पास इसके दूने से भी अधिक सेना थी और उसका डेरा गंगारड़ा में था। उस-(रामसिंह)पर गजसिंह, विजयसिंह तथा बहादुरसिंह ने तीन बार चढ़ाईकर तोपों के गोलों की वर्षा की, जिससे शत्रु हटकर सात कोस दूर गांव चौरासण में चले गये। अपने सरदारों के परामर्शानुसार वि० सं० १८११ आश्विन सुदि १३ (ई० स० १७५४ ता० २९ सितम्बर) को फिर विजय-सिंह ने अपने सहायकों सहित शत्रुओं पर पहले से प्रबल आक्रमण किया। सदा की भांति ही इस बार भी राठोड़ों ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया, परन्तु शत्रु-सेना अधिक होने से उन्हें हारकर पीछा मेड़ते लौटना पड़ा[2]। इस आक्रमण में विजयसिंह के सरदारों के अतिरिक्त, गजसिंह की तरफ़ के बीदावत इन्द्रभाण मोहकमसिंहोत (गांव ककू का), बीका कीरतसिंह (किशनसिंहोत), नींबावत अखैसिंह नारायणदासोत, फ़तहपुर का नवाब एवं कई अन्य सरदार काम आये। बहादुरसिंह तो अपनी सारी सेना के कट जाने से किशनगढ़ लौट गया। सैन्य बहुत कम हो जाने से उस स्थल पर लड़ाई जारी रखना उचित न समझ गजसिंह तथा विजयसिंह नागौर की ओर चले। वहां से विजयसिंह ने गजसिंह को बीकानेर से रसद आदि सामान भेजते रहने के लिए कहकर विदा कर दिया और स्वयं नागौर के गढ़ में जा रहा। तब रामसिंह तथा जयआपा सिन्धिया ने

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७७-८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१।

(२) टॉड-कृत 'राजस्थान' में जोधपुर के प्रसंग में इस लड़ाई का विशद विवरण दिया है (जि० २, पृ० ८७० तथा १०६१-४)।

मोरचाबन्दी कर नागौर को घेर लिया तथा ५०००० फ़ौज के साथ जयआपा के पुत्र जनकू ने जोधपुर पर आक्रमण किया। विजयसिंह ने मरहटों से लड़ने में कोई लाभ न देख महाराणा को लिखकर उदयपुर से चूंडावत जैतसिंह कुबेरसिंहोत (सलूंबर) को बुलवाया। जैतसिंह ने जयआपा से समझौते के सम्बन्ध में बातचीत की, परन्तु कोई परिणाम न निकला। ऐसे समय में महाराजा विजयसिंह की इच्छानुसार उसके दो राजपूतों ने जयआपा को छल से मार डाला। इसपर मरहटी सेना ने क्रुद्ध होकर राजपूतों पर हमला कर दिया, जिसमें जैतसिंह अपनी सेना सहित वीरता के साथ लड़ता हुआ निरर्थक मारा गया।

उधर जयपुर का महाराजा माधोसिंह भी इस उद्योग में था कि जोधपुर का राज्य रामसिंह को मिले तो अपने यश में वृद्धि हो, परन्तु इसी बीच विजयसिंह का आदमी आ जाने से उसने उसकी सहायता करने का निश्चय कर बीकानेर से भी सेना मंगवाई, जो बख़्तावरसिंह की अध्यक्षता में डीडवाणे में जयपुर की सेना के शामिल हो गई। मरहटों ने इसकी सूचना पाते ही इस फ़ौज को घेरकर इसका आगे बढ़ना रोक दिया। चौदह मास तक जब घेरा न उठा, तब अपने सरदारों से सलाह कर विजयसिंह एक रात्रि को एक हज़ार सवारों के साथ गढ़ छोड़कर बीकानेर की ओर चला गया और ३६ घंटे में देशणोक जा पहुंचा[1]।

विजयसिंह का बीकानेर पहुंचना तथा वहां से गजसिंह के साथ जयपुर जाना

उसके आगमन का समाचार बीकानेर पहुंचने पर गजसिंह ने उसके आदर-सत्कार का समुचित प्रबन्ध किया और मेहता रघुनाथसिंह आदि को उसका स्वागत करने के लिए भेजा। अनन्तर परस्पर मिलकर शत्रुओं पर आक्रमण करने से पूर्व माधोसिंह की सहायता पाना आवश्यक समझ

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७८-९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०५-६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६२।

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १८८-९५) में भी इस घटना का लगभग ऊपर जैसा ही उल्लेख है।

गजसिंह तथा विजयसिंह जयपुर गये[1], जहां क्रमशः करौली के महाराजा गोपालसिंह तथा बूंदी के रावराजा कृष्णसिंह से उनकी भेंट हुई। कुछ ही दिनों बाद माधोसिंह के पुत्र उत्पन्न होने से उत्सव आदि के कारण उनके रहने की अवधि बढ़ती गई और जिस काम के लिए वे आये थे उसके सम्बन्ध में कुछ भी बात न हुई। एक दिन गजसिंह ने उपयुक्त अवसर देख विजयसिंह की सहायता की चर्चा माधोसिंह के आगे छेड़ी, परन्तु उसने कोई ध्यान न दिया। जब गजसिंह ने मेहता भीमसिंह आदि को इस सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर मांगने के लिए भेजा तो माधोसिंह की इच्छानुसार हरिहर बंगाली ने कहा कि यदि विजयसिंह को सहायता दी गई तो जयपुर को मरहटों से लोहा लेना पड़ेगा, जिसमें एक करोड़ रुपया खर्च होगा। इतना रुपया विजयसिंह दे तो उसे सहायता दी जा सकती है। इस उत्तर को पाकर गजसिंह तथा विजयसिंह ने वहां समय व्यर्थ गंवाना ठीक न समझा और वे माधोसिंह से विदा होने गये। इस अवसर पर माधो-सिंह ने गजसिंह को एकान्त में ले जाकर दोनों राज्यों की परस्पर मैत्री का स्मरण दिलाते हुए कहा कि आपके राज्य के फलोधी आदि जो ८४ गांव अजीतसिंह ने जोधपुर में मिला लिये थे, वे सब मैं रामसिंह से कहकर वापस दिला दूंगा। रहा विजयसिंह, सो उसका प्रबन्ध यहां कर दिया जायगा (मरवाया या क़ैद किया जायगा), परन्तु गजसिंह ने यह घृणित बात मानने से इनकार कर दिया। माधोसिंह ने बहुत ज़ोर दिया, पर वह (गज-सिंह) अपने निश्चय पर स्थिर रहा। तब माधोसिंह ने उसका विवाह करने के बहाने उसे वहां रोकना चाहा, परन्तु उसने यही उत्तर दिया कि पहले विजयसिंह को सकुशल अपने राज्य की सीमा तक पहुंचा दूं तब लौट सकता हूं। फिर माधोसिंह ने गजसिंह से कहा कि आप पधारें, मैं विजयसिंह से बात कर लूं। गजसिंह के मन में शंका ने घर तो कर ही लिया था, उसने तुरन्त प्रेमसिंह किशनसिंहोत बीका तथा हठीसिंह वणीरोत को विजयसिंह की

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १६६) में भी विजयसिंह का बीकानेर तथा वहां से गजसिंह को साथ ले जयपुर जाना लिखा है।

रक्षा पर नियुक्त कर दिया[1]।

विजयसिंह के पक्ष का रीयां का ठाकुर जवानसिंह सूरजमलोत जयपुर के नाथावत ठाकुरों के यहां ब्याहा था। उसकी नाथावत स्त्री ने जवानसिंह को उसके स्वामी पर चूक होने की सूचना दे दी। इसपर जवानसिंह अपने स्वामी को, जो माधोसिंह से बातें कर रहा था, सावधान करने के लिए गया। माधोसिंह ने पेशाब करने के बहाने वहां से हटने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी समय बीकानेर के पूर्वोक्त ठाकुरों ने उसकी कमर में हाथ डाल उसे यह कहकर बैठा दिया कि महाराज हमें आशंका है अतएव आप न जावें। इसपर जयपुर के ठाकुर उनपर आक्रमण करने को उद्यत हुए, परन्तु माधोसिंह के मना करने से वे रुक गये। विजयसिंह भी पूर्वोक्त ठाकुरों के कहने से गजसिंह के पास चला गया। अनन्तर उन ठाकुरों ने माधोसिंह से क्षमा मांग ली। गजसिंह ने भी मेहता बख्तावरसिंह को उसके पास भेज उसे प्रसन्न कर लिया। फिर अपने जयपुर लौट आने तक के लिए मेहता भीमसिंह आदि को वहां छोड़कर गजसिंह तथा विजयसिंह ने प्रस्थान किया[2]।

जयपुर के माधोसिंह का विजयसिंह पर चूक करने का निष्फल प्रयत्न

पाटण, पंचेरी और लोहारु होते हुए वे दोनों रिणी पहुंचे। जहां नागोर से समाचार आया कि वि० सं० १८१२ माघ सुदि २ (ई० स० १७५६ ता० २ फ़रवरी) को बीस लाख रुपया लेना ठहराकर मरहटों ने वहां से घेरा उठा लिया है और जोधपुर भी विजयसिंह के बहाल हो गया

विजयसिंह को जोधपुर वापस मिलना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ७६-८१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६२-३।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६३-४। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी लिखा है कि पहले तो माधोसिंह विजयसिंह को सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो गया था, परन्तु पीछे से बदल गया (जि० २, पृ० ११७)।

है[1]। इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई तथा गजसिंह ने बहुतसा सामान भेंट में देकर विजयसिंह को जोधपुर भेजा, जहां पहुंचने पर उसने बख़्तसिंह-द्वारा तागीर किये हुए ५२ गांवों की सनद तथा सवा लाख रुपया नक़द भेजा, जैसी कि उसने बीकानेर में रहते समय प्रतिज्ञा की थी[2]।

सांखू के ठाकुर को क़ैद करना

उधर गजसिंह ने माधोसिंह से की हुई अपनी प्रतिज्ञा पालनार्थ जयपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उसने सांखू के विद्रोही ठाकुर शिवदानसिंह बहादुरसिंहोत को क़ैद कर उसकी जागीर प्रेमसिंह बाघसिंहोत को दे दी[3]।

विद्रोही सरदारों का दमन करना

अनन्तर माधोसिंह से मिल और वहां अपना विवाह कर, गजसिंह ने बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। पूनियांण के दो गांव शेखावत हाथीराम भूपालसिंहोत ने दबा लिये थे तथा शेखावत नवलसिंह (जोरावरसिंहोत) और भूपालसिंह किशनसिंहोत में सिंघाणे आदि की सीमा के सम्बन्ध में झगड़ा चल रहा था। सांखू में डेरा रहते समय गजसिंह ने राव बख़्तावरसिंह को इसका निबटारा करने के लिए भेजा, जो जाकर नवलसिंह के शामिल हो गया। इस झगड़े की खबर जयपुर पहुंचने पर वहां से कछवाहा रघुनाथसिंह ने आकर विद्रोही सरदारों को दबाया और उनके वे गांव बीकानेर के अधीन करा दिये[4]।

महाराजा गजसिंह के जयपुर निवास के समय वि० सं० १८१२ (ई० स०

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० २, पृ० १६८) में लिखा है कि २१ लाख रुपये और अजमेर पाने की शर्त पर मरहटों ने घेरा उठा लिया।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६४ (इस पुस्तक में केवल ४२ गांवों की सनद भेजना लिखा है)।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६४।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५।

१७५५) में बीकानेर में बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय उसने मेहता भीमसिंह आदि को प्रजा का कष्ट-निवारण करने के लिए भेजा। उन्होंने सदाव्रत खुलवाये और राज्य में नई इमारतें बनवाना आरम्भ किया, जिससे क्षुधाग्रस्त मनुष्यों का बहुत भला हुआ। उन्हीं दिनों शहरपनाह का भी निर्माण हुआ[1]।

बीकानेर में दुर्भिक्ष पड़ना

जयपुर से लौटने पर नारणोतों तथा मंघरासर के ठाकुर का, जो विद्रोही हो रहे थे, दमन कर उन्हें गजसिंह ने अपने अधीन बनाया। उन दिनों मलसीसर का बीदावत (भागचन्दोत) बीकानेर राज्य की आज्ञाओं की उपेक्षा करते थे इसलिए बख़्तावरसिंह ने उसे भी राज्य के अधीन किया। इसके अतिरिक्त अन्य ठाकुरों से भी दंड के रुपये वसूल कर उन्हें महाराजा के अधीन बनाया[2]।

नारणोतों, बीदावतों आदि को अधीन करना

वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में मेहता बख़्तावरसिंह को पृथक् कर उसके स्थान में मेहता पृथ्वीसिंह को गजसिंह ने अपना दीवान नियुक्त किया। उन्हीं दिनों सिक्खों ने नोहर में उत्पात मचाना आरम्भ किया, जिसपर दौलतसिंह पृथ्वीराजोत और मेहता माधोराय उधर का प्रबन्ध करने के लिए भेजे गये। अनन्तर गजसिंह स्वयं रिणी गया, जहां से उसने पुरोहित जगरूप तथा चौहान रूपराम को भाद्रा के ठाकुर लालसिंह पर भेजा। पीछे शेखावत नवलसिंह आदि भी ४००० सेना के साथ उधर गये और उस (लालसिंह) को राजसेवा स्वीकार करने पर बाध्य किया। महाराजा के अनूपपुर पहुंचने पर लालसिंह महाराजा के प्रतिष्ठित सरदारों के साथ उसकी सेवा में आ रहा था, परन्तु मार्ग में अपशकुन हो जाने से

विद्रोही लालसिंह को अधीन करना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५।

वह वापस लौट गया। इसपर क्रुद्ध होकर महाराजा ने अपनी सारी सेना एकत्र कर स्वयं उसपर चढ़ाई की और डूंगराणा के गढ़ को तोपों के गोलों से नष्ट कर दिया। उक्त गढ़ में सांवतसिंह दौलतरामोत था, जिसके प्रायः सारे सैनिक काम आये और वह स्वयं भी मारा गया तथा उस गढ़ पर गजसिंह का अधिकार हो गया। सांवतसिंह के बचे हुए कुटुम्बियों को उसने आदर के साथ भाद्रा पहुंचवा दिया। कालाणां के स्वामी सांवतसिंह का बेटा हिन्दूसिंह भी भागकर भाद्रा चला गया, जिससे वहां का बहुतसा अन्न आदि सामान विजेताओं के हाथ लग गया। तब तो लालसिंह को भी चेत हुआ और उसने गजसिंह के डेरे रासलाणे में होने पर शेखावत नवलसिंह की मार्फ़त उसकी सेवा में उपस्थित हो उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। गजसिंह ने उसका अपराध क्षमाकर उसकी जागीर उसे सौंप दी[1]।

रावतसर पर चढ़ाई

वहां से प्रस्थान करने पर महाराजा गजसिंह ने रावतसर पर घेरा डाला, जहां के स्वामी रावत आनन्दसिंह के अधीनता स्वीकार करने पर उससे दंड के २५००० रुपये वसूल कर उसके अपराध क्षमा कर दिये[2]।

भट्टियों की सहायतार्थ सेना भेजना

फिर भट्टियों पर चढ़ाई की आज्ञा दी गई, जिसकी ख़बर मिलते ही भट्टी हुसेनमुहम्मद बीकों तथा कांधलोतों की मारफ़त गजसिंह की सेवा में उपस्थित हो गया। उसके निवेदन करने पर महाराजा ने बख़्तावरसिंह, ठाकुर सुरताणसिंह कुशलसिंहोत आदि को फ़ौज देकर उसके साथ कर दिया, जिन्होंने जाकर सोतर पर उसका अधिकार करा दिया[3]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८५-६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६५-६।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६।

उन्हीं दिनों बादशाह (आलमगीर दूसरा) के सिरसा पहुंचने पर बाय का ठाकुर दौलतसिंह तथा भाद्रा का लालसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने गजसिंह को भी शाही सेवा में उपस्थित होने के लिए लिखा, परन्तु वह न गया[1]।

बादशाह का सिरसा में जाना

वि० सं० १८१४ (ई० स० १७५७) में गजसिंह ने नौहर के कोट की नींव रक्खी, जो वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) में बनकर सम्पूर्ण हुआ[2]।

नौहर के गढ का निर्माण

जोधपुर से विजयसिंह के पास से आदमियों ने आकर निवेदन किया कि मरहटों के साथ की पिछली लड़ाई में अत्यधिक धन खर्च हो जाने के कारण राज्य की दशा संकटापन्न हो रही है, अतएव हमारे महाराजा ने आपसे धन की सहायता मांगी है। गजसिंह ने तत्काल ५०००० रुपये देकर उन्हें विदा किया और कहा कि जोधपुर की सहायता के लिए मेरा प्राण तक हाज़िर है[3]।

जोधपुर को आर्थिक सहायता देना

वि० सं० १८१६ (ई० स० १७५६) में गजसिंह बीदासर गया, जहां पहुंचकर उसने बीदावतों पर 'भाछ' (एक प्रकार का कर) के छः हजार

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ ।

पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट, पृ० ६६) ने, गढ़ का निर्माणकाल वि० सं० १८४० से १८७० (ई० स० १७८३ से १८१३) दिया है जो ठीक नहीं हो सकता।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

बीदावतों पर कर लगाना

रुपये नियत किये[1], एवं बारबारा के ठाकुरों ने भाटियों का बहुतसा सामान लूट लिया था वह सेना भेजकर सब वापस दिलवाया[2]।

उधर जोधपुर से महाराजा विजयसिंह ने तीन हज़ार सेना खींवसर के विद्रोही जोरावरसिंह के ऊपर, जो मरहटों से मिला हुआ था, भेजी थी। जोरावरसिंह ने उस सेना का नाशकर जोधपुर और नागौर का भी बहुत बिगाड़ किया। तब विजयसिंह ने गजसिंह के पास से सहायता मंगवाई।

विजयसिंह की सहायतार्थ खींवसर जाना

गजसिंह के भेजने पर मेहता बख़्तावरसिंह ने समझा-बुझाकर जोरावर सिंह को जोधपुर राज्य का बिगाड़ करने से रोक दिया। कुछ ही दिनों बाद उस(जोरावरसिंह)के पुनः सिर उठाने पर विजयसिंह ने गजसिंह से स्वयं खींवसर आने का आग्रह कर कहलाया कि बिना आपके आये न तो पोकरण अधीन होगा और न जोरावरसिंह ही राह पर आवेगा। तब गजसिंह खींवसर पहुंचा, जहां विजयसिंह भी आकर उससे मिल गया। गजसिंह ने जोरावरसिंह को बुलाकर उसके चरणों में नमा दिया, तब वे दोनों (विजयसिंह और जोरावरसिंह) साथ-साथ जोधपुर लौटे[3]।

खींवसर से वापस लौटते समय गांव सवाई में महाजन के ठाकुर भगवानसिंह एवं शिवदानसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुए। वि० सं० १८१५ (ई० स० १७५८) में भीमसिंह की मृत्यु के बाद से अब तक वहां की भूमि का बंटवारा नहीं हुआ

महाजन की जागीर भीमसिंह के पुत्रों में बांटना

(१) ठाकुर बहादुरसिंह लिखित बीदावतों की ख्यात; (जि० १, पृ० २२७) में भी इसका उल्लेख है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८७-८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६६।

ठाकुर बहादुरसिंह की 'बीदावतों की ख्यात' (जि० १, पृ० २२७) में भी विजयसिंह की सहायतार्थ गजसिंह का खींवसर जाना लिखा है।

था। लवाई में रहते समय गजसिंह ने महाजन की जागीर के दो भाग कर दोनों भाइयों में बांट दिये[1]।

वि० सं० १८१६ और १८१७ (ई० स० १७५६-१७६०) के बीच में भट्टियों तथा जोहियों के उपद्रव में फिर वृद्धि हुई। हुसेन ने अमीमुहम्मद से भटनेर छीन लिया। इसकी खबर लगते ही महाराजा नौहर गया तथा मेहता बख्तावरसिंह ने सांईदासोतों की सेना के साथ उधर प्रस्थान किया। तब हुसेन उससे जा मिला और उसने दोनों का झगड़ा निबटा दिया[2]।

भट्टी हुसेन पर सेना भेजना

उन्हीं दिनों सूचना मिली कि दाउद-पुत्रों ने अनूपगढ़ पर अधिकार कर लिया है। इसपर महाराजा ने बीकानेर पहुंचकर उनपर आक्रमण करने की तैयारी की। जोधपुर एवं लट्टी के मीर गुलामशाह (मियां गुलाम) की सेनाएं भी आकर सम्मिलित हो गईं। महाराजा की आज्ञा ले भाटी हिन्दूसिंह खड्गसेनोत ने रात्रि के समय ससैन्य मौजगढ़ पर आक्रमण कर वहां के स्वामी मीर हमज़ा को क़ैद किया तथा गढ़ को लूटा। हमज़ा के बीकानेर लाये जाने पर महाराजा ने उसका उचित सत्कार किया और जैमलसर का पट्टा उसके नाम कर दिया। अनन्तर महाराजा ने सेना सहित सुजानसर होते हुए अनूपगढ़ पर चढ़ाई की और विद्रोहियों को मार वहां अपना अधिकार कर लिया। फिर वहां के थाने पर मेहता शिवदानसिंह को नियत कर वह बीकानेर लौट गया। अनन्तर उसने मेहता भीमसिंह को भेजकर पूनियांण का वीरान परगना आबाद कराया[3]।

अनूपगढ़ तथा मौजगढ़ पर चढ़ाई

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८। पाउलेट; गैज़ेटियर; ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

वि० सं० १८१८ (ई० स० १७६१) में पूगल के रावल ने अपने एक कामदार को मार डाला। इसपर उस(रावल)का पुत्र अमरसिंह उससे अप्रसन्न हो अपने साथ सहित बीकानेर चला गया। अमरसिंह से पेशकशी लेकर गजसिंह ने पूगल की जागीर उसके नाम कर दी। वि० सं० १८१६ (ई० स० १७६२) में रावत आनन्दसिंह (रावतसर) के देश में बहुत चोरी-चकारी करने पर गजसिंह ने उसके विरुद्ध मेहता बख्तावरसिंह को भेजकर उससे पेशकशी ठहराई[1]।

पूगल के रावल और रावतसर के रावत को दंड देना

वि० सं० १८२० (ई० स० १७६३) में मेहता बख्तावरसिंह, जो फिर दीवान बना दिया गया था, उस पद से हटा दिया गया और उसके स्थान में शाह मूलचंद बरडिया की नियुक्ति की। उन्हीं दिनों जैसलमेर के रावल मूलराज के भेजे हुए मेहता मानसिंह ने आकर निवेदन किया कि दाउदपुत्रों तथा इख्तियारखां ने नौहर के कोट पर छल से अधिकार कर लिया है, अतएव आप सहायता के लिए पधारिये। गजसिंह ने उसे आश्वासन देकर और चढ़ाई करने के लिए कहकर विदा किया। कुछ ही दिनों बाद समाचार आया कि दाउदपुत्रों तथा इख्तियारखां ने बल्लर में नगर बसाना आरम्भ कर दिया है। तब शाह मूलचंद, सांडवे के बीदावत धीरजसिंह[2], भालेरी के राजावत बदनसिंह आदि को बीदावतों की सेना और अपनी १०००० फ़ौज के साथ गजसिंह ने उधर भेजा। उनके अनूपगढ़ पहुंचने पर दाउदपुत्रों और जोहियों ने सन्धि की बातचीत की। उनका कहना था कि हम दरबार के चाकर हैं, हम पेशकशी तथा फ़ौज का खर्चा देने के लिए प्रस्तुत हैं, अतएव पट्टा हमारे नाम कर दिया जाय, परन्तु बीकानेर से गये हुए सरदारों ने

जोहियों और दाउद-पुत्रों से लड़ाई

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८८-९। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७।

(२) ठा० बहादुरसिंह लिखित 'बीदावतों की ख्यात' में धीरतसिंह नाम दिया है।

यह स्वीकार न किया। तब जोहिये निराश होकर लौट गये और उन्होंने युद्ध करने का निश्चय किया। बीकानेरवाले उनकी ओर से ग़ाफ़िल पड़े थे, इसलिए जब दूसरे दिन जोहियों ने तीन हजार फौज़ के साथ आक्रमण किया तो उन्हें जान बचाकर गढ़ में घुसना पड़ा। इस लड़ाई में धीरज-सिंह, बदनसिंह, सरदारसिंह तथा बहुत से दूसरे बीकानेर के सरदार और सैनिक काम आये और उनके खेमे भी जोहियों ने लूट लिये। ऐसी दशा में बाध्य होकर शाह मूलचन्द को उनसे मेल की बात करनी पड़ी। अनन्तर जोहिये गढ़ से हट गये और मूलचन्द वहां अधिकार कर बीकानेर लौट गया[1]।

वि० सं० १८२१ (ई० स० १७६४) में गजसिंह ने अपनी पौत्री के विवाह के नारियल महाराजा माधोसिंह के कुंवर पृथ्वीसिंह के लिए जयपुर भेजे।

कुछ सरदारों से नाराज़गी होना

उसी वर्ष गजसिंह ने बहुत से सरदारों को दरबार में बुला लिया। खुमाण (राव गणेशदास का पोता) तथा सूरसिंह (पूगल का भाटी) में वैर होने से खुमाण ने सूरसिंह को मार डाला और उपर्युक्त सरदारों के यहां जा रहा। बाद में गजसिंह के कहने से सरदारों को उसे दरबार को सौंप देना पड़ा, परन्तु उस कार्य से सरदार उससे अप्रसन्न हो गये। बल्लर के जोहियों ने इस बीच कोई उत्पात न किया और नौ हजार रुपये गजसिंह की सेवा में भेजे तथा अपने पिछले अपराधों के लिए क्षमा याचना करा ली[2]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६७-८। ठाकुर बहादुरसिंह; बीदावतों की ख्यात; जि० १, पृ० २२८।

बीदावतों की ख्यात से पाया जाता है कि अपने पदच्युत किये जाने एवं मूलचंद के अपने स्थान पर दीवान बनाये जाने से बख़्तावरसिंह मूलचंद का दुश्मन बन गया था और उसी की साजिश से बीकानेर की इस विशाल सेना की केवल तीन हज़ार सेना के हाथों पराजय हुई।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८९। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।

वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६५) में पड़िहार दौलतराम तथा पुरोहित जग्गू के बीच में पड़ने से गजसिंह ने बख़्तावरसिंह को पुनः दीवान के पद पर नियुक्त कर दिया[1]।

बख़्तावरसिंह को पुनः दीवान बनाना

जिन दिनों गजसिंह बड़ी लुद्दी में ठहरा हुआ था, उसने अपने महाराजकुमार राजसिंह के नाम पर एक नगर 'राजगढ़' बसाने का विचार किया। इस काम के लिए उसने स्वयं स्थान का निर्वाचन किया। उन्हीं दिनों छानी और अजीतपुरा आदि के झुरड (जाट) चोरी आदि कर वहां का बहुत नुक़सान करते थे। अनूपपुर में डेरे होने पर गजसिंह ने उन्हें अलग-अलग अपने पास बुलाकर उनमें फूट पैदा कर दी, जिससे वे रातोंरात उस स्थान को छोड़कर चले गये। उन्हें आश्रय देने का सन्देह ठाकुर दीपसिंह पर था, जिससे गजसिंह ने दंड का २००० रुपया वसूल किया[2]।

राजगढ़ बसाने का निश्चय तथा अजीतपुर के ठाकुर को दंड देना

वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में जब गजसिंह बीकानेर में था, महाराजा माधोसिंह (जयपुर) के पास से किशनदत्त ने आकर निवेदन किया कि महाराजा विजयसिंह (जोधपुर) ने पुष्कर में भरतपुर के राजा जवाहरमल जाट से मेल स्थापित कर लिया है; यदि वह (जवाहरमल) जयपुर की सीमा से गुजरा तो हमारे महाराजा उसे बढ़ने से रोकेंगे। इसी समय विजयसिंह के पास से व्यास गुलाबराय ने आकर निवेदन किया कि जोधपुर की भरतपुर के साथ की सन्धि के कारण आमेर(आंबेर)वाले लड़ाई करना चाहते हैं, अतएव आप सहायता करें। इसपर गजसिंह ने यह उत्तर देकर उसे विदा किया कि इतना बड़ा कार्य करते समय मुझ से

विजयसिंह के जाटों से मिल जाने के कारण माधोसिंह का पक्ष ग्रहण करने का निश्चय

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८९। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८९-९०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।

राय न लेने के कारण मैं माधोसिंह का पक्ष लूंगा, परन्तु मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा, जिससे जोधपुर का भी बिगाड़ न हो। विजयसिंह ने दूसरी बार फिर आदमी भेजकर आग्रह करवाया, परन्तु गजसिंह ने कुछ ध्यान न दिया[1]।

माधोसिंह की सहायतार्थ सेना भेजना एवं उसके स्वर्गवास होने पर मेड़ते जाना

वि० सं० १८२३ (ई० स० १७६६) में राजगढ़ की नींव रखने के पश्चात् जब गजसिंह चूरू में ठहरा हुआ था तो महाराजा माधोसिंह की तरफ़ से सहायता की प्रार्थना आई। इसपर उसने फ़तहपुरी गिरधारीलाल को जयपुर भेजा। फिर भरतपुर के राजा जवाहरमल तथा महाराजा माधोसिंह की मावड़े में बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें भरतपुरवालों को रणक्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा। तब विजयसिंह के पास से आदमी पुनः सहायता मांगने के लिए आये, परंतु गजसिंह, उनसे यह कहकर कि बीकानेर जाकर इसपर विचार करेंगे, अपने देश लौट गया। वहां माधोसिंह के आदमी २५००० रुपये मार्ग-व्यय का लेकर उसकी सेवा में उपस्थित हुए। दोनों में से किसका साथ देना और किसका न देना यह एक जटिल प्रश्न था, इसलिए गजसिंह कुछ दिनों तक टालम-टूल करता रहा। इसी बीच फाल्गुन मास में माधोसिंह के स्वर्गवास हो जाने का समाचार उसके पास पहुंचा। तब सान्त्वना सूचक बातें जयपुर में आदमी भेजकर कहलाने के अनन्तर, गजसिंह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया, परन्तु मेड़ते में विजयसिंह से मिलकर वह शीघ्र ही वि० सं० १८२५ आषाढ सुदि ९ (ई० स० १७६८ तारीख २३ जून) को बीकानेर लौट गया[2]।

उसी वर्ष उसने अमीरमुहम्मद के पुत्र कमरुद्दीन जोहिया को बख़्तावरसिंह की मारफ़त सिरसा और फ़तेहाबाद का परवाना देकर भेजा।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८०। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६८-९।

सिरसा और फतेहाबाद पर सेना भेजना तथा पौत्री का विवाह

उसके साथ मेहता जैतरूप भी गया था, जो वहां उसका अधिकार कराके लौट आया। वि० सं० १८२७ (ई० स० १७७०) में उस(गजसिंह)की एक पौत्री का विवाह जयपुर के महाराजा पृथ्वीसिंह के साथ बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। बरात के साथ अलवर राज्य का संस्थापक माचेड़ी का राव प्रतापसिंह भी था[1]।

उदयपुर के महाराणा राजसिंह (दूसरा) की निःसन्तान मृत्यु होने के समय उसकी झाली राणी गर्भवती थी, पर उसने अरिसिंह (महाराणा जगतसिंह द्वितीय का दूसरा पुत्र) के भय से सरदारों के पूछने पर कहला दिया कि उसके गर्भ नहीं है। इसपर सरदारों ने अरिसिंह को ही वि० सं० १८१७ चैत्र वदि १३ (ई० स० १७६१ ता० ३ अप्रेल) को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाया। महाराणा अरिसिंह स्वभाव का बहुत तेज़ और क्रोधी था। उसने गद्दी पर बैठते ही सरदारों का अपमान किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये। इसी बीच झाली राणी के गर्भवती होने का हाल कुछ-कुछ प्रकट हो गया था। कुछ समय बाद उसके रत्नसिंह नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी उसके मामा (गोगूंदे के स्वामी) जसवंतसिंह ने परवरिश की। सरदार महाराणा से अप्रसन्न तो थे ही, अब वे उसे पदच्युत कर रत्नसिंह को गद्दी बैठाने का उद्योग करने लगे। महाराणा ने यह अवस्था देखकर दमन नीति से काम किया, पर इसका परिणाम उलटा ही हुआ। बीच में और कई घटनायें ऐसी हुईं, जिनसे सरदारों का विरोध अधिक बढ़ गया और उन्होंने मरहटों से सहायता ली। माधवराव सिंधिया ने विद्रोही सरदारों की सहायता कर क्षिप्रा नदी के निकट महाराणा के सैन्य को पराजित किया। रत्नसिंह अधिक दिनों तक जीवित न रहा और सात वर्ष की अवस्था में उसका शीतला रोग से देहांत हो गया।

गोड़वाड़ के सम्बन्ध में गजसिंह का समझौते का प्रयत्न

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८०-१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०१-७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६१।

इसपर विद्रोही सरदारों ने उसी अवस्था के एक दूसरे बालक को रत्नसिंह घोषित कर महाराणा को पदच्युत करने का अपना प्रयत्न जारी रक्खा। उनके सहायक माधवराव ने उदयपुर को घेर लिया, परन्तु नगर का समुचित प्रबन्ध होने के कारण छः मास तक घेरा रहने पर भी वह वहां अधिकार न कर सका। इधर उदयपुर में भोजन सामग्री का अभाव होने लगा, जिससे उदयपुरवालों ने सन्धि की चर्चा छेड़ी। माधवराव भी यही चाहता था। अन्त में ६३½ लाख रुपये लेकर उसने घेरा उठा लिया। इस अवसर पर किये गये शर्तनामे के अनुसार रत्नसिंह का मन्दसोर में रहना निश्चित होकर महाराणा ने उसके लिए ७५००० रुपये आय की जागीर निकाल दी, पर वह (रत्नसिंह) मन्दसोर में जाकर न रहा। इसके विपरीत वह तथा विद्रोही सरदार महापुरुषों[1] की फ़ौज के साथ मेवाड़ में लूट मार करने लगे। महाराणा ने यह ख़बर पाकर विद्रोहियों को हराकर भगा दिया। एक साल तक शान्त रहने के अनन्तर वे (विद्रोही) पुनः उत्पात करने लगे। रत्नसिंह का कुंभलगढ़ पर अधिकार था और वहां रहकर वह मेवाड़ के गोड़वाड़ ज़िले पर भी अधिकार करने का प्रयत्न करने लगा। इसपर महाराणा ने अपने काका बाघसिंह को दूसरे कई सरदारों और सेना के साथ उधर भेजा। उन्होंने विद्रोहियों पर विजय तो प्राप्त की पर कुंभलगढ़ पर रत्नसिंह का ही अधिकार बना रहा।

महाराज बाघसिंह ने गोड़वाड़ से रत्नसिंह का अधिकार उठाकर लौटने पर महाराणा अरिसिंह से निवेदन किया कि गोड़वाड़ पर अधिकार रखने के लिए वहां सदा सेना रखना जरूरी है। इसपर महाराणा ने जोधपुर के राजा विजयसिंह को लिखा कि रत्नसिंह को दबाने के लिए तीन हज़ार सेना कुछ दिनों के लिए नाथद्वारे में रख लो और जब तक वह

---

(१) ये दादूपन्थी साधु थे, जो जयपुर की सेवा में बड़ी संख्या में रहते थे और वहीं से रत्नसिंह के पक्षवाले उन्हें मेवाड़ में लाये थे। इनको महापुरुष भी कहते हैं। अब तक ये जयपुर की सेना में किसी क़दर विद्यमान हैं। ये लोग विवाह नहीं करते।

सेना वहां रहे तब तक उसके वेतन के लिए गोड़वाड़ की आय लेते रहो, परन्तु वहां के सरदार हमारे ही अधीन रहेंगे। इसपर महाराजा ने लिखा कि आमतौर से २०० सवार तथा ५०० सिपाही रहेंगे और लड़ाई के समय ३००० सेना पूरी कर दी जायगी। अनन्तर विजयसिंह ने नाथद्वारे में सेना भेजकर गोड़वाड़ अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने का प्रयत्न न किया। महाराणा के कई बार लिखने पर भी जब उसने न माना तो उसने उसको गोड़वाड़ का परगना छोड़ देने के लिए लिखा, परन्तु विजयसिंह ने इसे भी टाल दिया। वि० सं० १८२८ माघ (ई० स० १७७२ फरवरी) में महाराजा विजयसिंह, बीकानेर का महाराजा गजसिंह और कृष्णगढ़ का राजा बहादुरसिंह तीनों नाथद्वारे गये तथा महाराणा भी वहां पहुंचा। गोड़वाड़ की चर्चा छिड़ने पर महाराजा गज-सिंह ने महाराजा विजयसिंह को गोड़वाड़ का परगना छोड़ देने के लिए समझाया, परन्तु उसने लालच में आकर अपने वचन के विरुद्ध छोड़ना स्वीकार न किया। तब अपना समय व्यर्थ गंवाना उचित न समझ गजसिंह ने वहां से प्रस्थान करने का निश्चय किया[1]। इस समय विजयसिंह के देश में रीयां का ज़ालिमसिंह बहुत बिगाड़ करता था। विजयसिंह के निवे-दन करने पर गजसिंह ने दोनों में समझौता करा दिया और वहां से बीका-नेर लौट गया[2]।

विद्रोही ठाकुरों पर सेना भेजना

बीकानेर पहुंचने पर उसे पता चला कि रावतसर का अमरसिंह उत्पात करने लगा है तब वह (अमरसिंह) क़ैद किया जाकर नेतासर भेज दिया गया, परन्तु थोड़े ही दिन बाद वह वहां से निकल भागा और रावतसर में बिगाड़ करने लगा। इसपर गजसिंह ने स्वयं उधर प्रस्थान किया, परन्तु थानसिंह के पुत्र देवीसिंह आदि बीदावतों के वह काम अपने हाथ में ले

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६७०।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८२-३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७०।

होने पर वह फिर लौट गया[1]। अनन्तर बीकमपुर के राव बांकीदास ने उसकी सेवा में उपस्थित हो निवेदन किया कि बारू तथा टेकरे के स्वामी देश में बड़े उपद्रव कर रहे हैं। इसपर बीदावतों आदि की सेना के साथ गजसिंह ने मेहता बख्तावरसिंह को उधर भेजा, जिसने टेकरे के गढ़ पर अधिकार कर उसमें निवास करनेवाले साठ लुटेरों को मार डाला[2]। इसी समय बारू के मालदोतों ने उसके पास उपस्थित हो पेशकशी देनी ठहराई[3]।

भट्टियों का फिर विद्रोह करना

वि० सं० १८३० (ई० स० १७७३) में भट्टी पुनः विद्रोही हो गये। गजसिंह ने उनका दमन करने के लिए सेना भेजी, तब भट्टी मुहम्मदहुसेनखां उसकी सेवा में उपस्थित हो गया और ४०००० रुपये पेशकशी एवं प्रतिवर्ष आधी पैदावार दरबार को देने की शर्त पर उसने संधि कर ली। इस सम्बन्ध में देख रेख करने के लिए राजपुरे में राज्य की ओर से एक चौकी स्थापित कर दी गई[4]।

राजसिंह के विद्रोह में बख्तावरसिंह की गुप्त सहायता

मेहता बख्तावरसिंह को अपनी स्त्री और पुत्रों से अनबन रहा करती थी, अतएव जब उसने एक कुआँ बनवाया तो उसकी प्रतिष्ठा के समय उसने अपनी स्त्री को साथ लेने से इनकार कर दिया। इसपर उसके पुत्रों ने गजसिंह से इस बात की शिकायत की, जिसके चेतावनी देने पर बाध्य होकर मेहता को अपनी स्त्री को भी इस पुण्यकार्य

---

(१) ठाकुर बहादुरसिंह लिखित बीदावतों की ख्यात; (पृ० २३६) में भी इसका उल्लेख है।

(२) ठा० बहादुरसिंह; बीदावतों की ख्यात; पृ० २३६-७।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

में सम्मिलित करना पड़ा, परन्तु गजसिंह के इस दबाव का परिणाम उलटा ही हुआ। बख़्तावरसिंह भीतर ही भीतर उसके विरुद्ध आचरण करने लगा और गुप्त रूप से महाराजकुमार राजसिंह का, जो उन दिनों विद्रोही हो रहा था[1], सहायक बन गया। राजसिंह के इस विद्रोह में नवलसिंह शेखावत (नवलगढ़, शेखावाटी का); चूरू का ठाकुर हरीसिंह, कुछ बीदावत तथा कुछ भाटी आदि उसके पक्ष में थे। इनमें से दूसरों ने तो क्रमशः उसका साथ छोड़ दिया, परन्तु हरीसिंह अन्त तक उसके साथ बना रहा। अंत में दोनों विद्रोही देशणोक करणीजी की शरण में जा रहे, जहां उन्होंने वि० सं० १८३२से १८३७ (ई० स० १७७५ से १७८०) तक निवास किया[2]।

वि० सं० १८३६ (ई० स० १७७९) में बख़्तावरसिंह का देहांत होने पर उसका पुत्र मेहता स्वरूपसिंह उसके स्थान में बीकानेर का दीवान हुआ। कोठारी सांवतसिंह से उसका कुछ बैर था, जिससे कोठारी ने गजसिंह के पास झूठी शिकायत की कि स्वरूपसिंह गुप्त रीति से महाराजकुमार राजसिंह की सहायता करता है और देशणोक में उसके पास पूरा-पूरा हाल पहुंचाता रहता है। स्वरूपसिंह को यह बात ज्ञात होने पर उसने राजसिंह को सूचित किया, जिसने इसका खंडन किया और साथ ही असत्य का आश्रय लेनेवाले कोठारी को मौत के घाट उतारने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उसने अपने चार राजपूतों को नियुक्त किया, जिन्होंने वि० सं० १८३७ (ई० स० १७८०) में एक दिन, जब वह दरबार से घर लौट रहा था, उसपर आक्रमण कर उसे मार डाला[3]।

बख़्तावरसिंह की मृत्यु पर उसके पुत्र का दीवान होना

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ८३-४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७१।

विo संo १८३८ (ईo सo १७८१) में कुंवर राजसिंह देशणोक से

कुंवर राजसिंह का जोधपुर जाकर रहना

जोधपुर चला गया, जहां विजयसिंह ने उसको बड़े सत्कार पूर्वक रक्खा[1]।

महाराजा सुजानसिंह के समय विo संo १७६१ (ईo सo १७३४) में अब नापा के वंशज एक सांखला ने बीकानेर का गढ़ बख़्तसिंह को दिला देने

पुरोहित गोवर्धनदास का नागौर दिलाने के लिए गजसिंह को लिखना

का षड्यंत्र रचा था, तब उसके साथ गोवर्धनदास नाम का पुरोहित भी था। षड्यंत्र विफल होने पर वह (गोवर्धनदास) भागकर नागौर चला गया था, जहां बख़्तसिंह ने उसे दो गांव निर्वाह के लिए दे दिये। अब महाराजा विजयसिंह के राज्यकाल में वह नागौर का हाकिम नियुक्त हो गया था। कुंवर राजसिंह के जोधपुर निवास के समय में उसने बीकानेर के महाराजा गजसिंह के पास इस आशय की एक अर्ज़ी लिख भेजी कि यदि मेरे पहले के अपराध क्षमा कर दिये जावें तो मैं ५५५ गांवों के साथ नागौर आपको दिला दूं। गजसिंह एक धर्मनिष्ठ एवं मैत्री को अन्त तक निबाहनेवाला व्यक्ति था, उसने तत्काल यह अर्ज़ी विजयसिंह के पास भेज दी, जिसने गोवर्धनदास को बुलाकर जवाब तलब किया और अन्ततः उसे पदच्युत कर दिया[2]।

विo संo १८४२ (ईo सo १७८५) में गजसिंह के पत्र लिखने पर विजयसिंह ने अपने बहुत से सैनिकों को साथ दे कुंवर राजसिंह को बीकानेर

गजसिंह का राजसिंह को बुलाकर कैद करवाना

बिदा किया। गजसिंह ने स्वयं तो उसका स्वागत न किया, परन्तु अपने दूसरे पुत्रों—सुलतानसिंह,

'बीदावतों की ख्यात' (पृo २३७) में इसका उल्लेख है, परन्तु समय (विo संo १८३२) ग़लत दिया है।

(१) दयालदास की ख्यात; जिo २, पत्र ६४। वीरविनोद; भाग २, पृo ५०७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृo ७२।

(२) दयालदास की ख्यात; जिo २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृo ७२।

अजबसिंह और मोहकमसिंह—को भेजकर सीढ़ियां चढ़ते समय उसे क़ैद करवा दिया। जोधपुर से साथ आये हुए सरदारों ने लड़ाई करनी चाही, परन्तु विजयसिंह ने यह कहलाकर उन्हें वापस बुला लिया कि वह गजसिंह का कुंवर है और वह जो चाहे सो उसके साथ करे[1]। इसी वर्ष महाराजा ने बीकानेर के दुर्ग का दक्षिण की तरफ़ का प्राकार (जलेबकोट) नवीन बनवाकर शत्रुओं से और भी उसे सुरक्षित किया।

विवाह और संतति

ख्यातों में गजसिंह के ६ राणियां होना लिखा है, जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर आ चुका है। उसके अट्ठारह पुत्र—राजसिंह, सूरतसिंह, छत्रसिंह, श्यामसिंह, अजबसिंह, मोहकमसिंह, रामसिंह, गुमानसिंह, सबलसिंह, भोपालसिंह, जगतसिंह, खुमाणसिंह, मोहनसिंह, उदयसिंह, ज़ालिमसिंह, सुलतानसिंह, देवीसिंह और खुशहालसिंह—हुए[2]।

मृत्यु

कुछ ही दिनों बाद महाराजा गजसिंह रोगग्रस्त हो गया। दिन-दिन बीमारी बढ़ने के कारण उसने कुंवर राजसिंह को क़ैद से मुक्तकर अपने समस्त बुलाया और कहा कि अपने भाइयों को दुःख मत देना तथा अपनी जीवितावस्था में ही अपने सारे सरदारों को बुलाकर राज्य-कार्य उसके सुपुर्द कर दिया[3]। इसके ४ दिन बाद वि० सं० १८४४ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १७८७ ता० २५ मार्च) रविवार को गजसिंह का देहावसान हो गया[4]।

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ५०७। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२।

(४) ············अथास्मिन् शुभसंवत्सरे श्रीविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १८४४ वर्षे शाके १७०६ प्रवर्त्तमाने मासोत्तममासे चैत्रमासे शुभे शुक्ले पक्षे षष्ठयां रविवासरे············भूमंडलाखंडलः श्रीमन्महा-

महाराजा गजसिंह की योग्यता और चतुरता देखकर ही सरदारों ने, बड़े भाइयों के रहते हुए भी महाराजा जोरावरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसे ही बीकानेर का शासक नियत किया। वह वीर, राजनीतिज्ञ, प्रजापालक, मैत्री को निबाहनेवाला, स्पष्टवक्ता, कवि और साहित्यानुरागी' था।

महाराजा गजसिंह का व्यक्तित्व

राजाधिराजः श्रीगजसिंहजीवर्मा·········वैकुंठ लोकं प्राप्तः·········।

[गजसिंह की स्मारक छत्री के लेख से]।

दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र ६४), वीरविनोद (भाग २, पृ० ५०७) आदि में भी गजसिंह की मृत्यु का यही समय दिया है।

(१) १—महाराजा गजसिंह के राज्यकाल में चारण गाडण गोपीनाथ ने 'ग्रन्थराज अथवा महाराजा गजसिंघजी रो रूपक' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ महाराजा गजसिंह की प्रशंसा में लिखा गया था। इसमें उक्त महाराजा तक उसके पूर्वजों की वंशावली दी है, जिनमें से कई नरेशों के राज्यकाल की घटनाओं का विशद विवरण है। महाराजा गजसिंह के समय की जोधपुर के साथ की वि० सं० १८०७ तक की लड़ाइयों का इसमें हाल है। इस ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के छन्दों का समावेश है, जो इसके रचयिता की योग्यता प्रकट करते हैं। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १८०३ में प्रारम्भ हुई थी (टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्; सेक्शन १, पार्ट २, पृ० ३४-४० बीकानेर स्टेट;)। दयालदास की ख्यात से पाया जाता है कि महाराजा गजसिंह के रिणी में रहते समय उक्त चारण ने यह ग्रन्थ उसे भेंट किया था, जिसने उस(चारण)को दो हज़ार रुपये, हाथी, घोड़ा, सिरोपाव आदि पुरस्कार में दिये (जि० २, पत्र ७७)।

२—उस(महाराजा गजसिंह)के समय में ही सिंढायच फ़तेराम ने भी 'महाराजा गजसिंघ रो रूपक' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की। इसमें राव सीहा से लगाकर महाराजा गजसिंह तक बीकानेर के नरेशों की वंशावली दी है। इसमें गजसिंह के राज्य समय की अन्य घटनाओं के अतिरिक्त वि० सं० १८०४ की भंडारी रत्नचंद्र की अध्यक्षता में जोधपुर की बीकानेर पर की चढ़ाई का वर्णन है (टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् दि बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्; सेक्शन २, पार्ट १; पृ० ८१ बीकानेर स्टेट)।

३—सिंढायच फ़तेराम ने एक दूसरा काव्यग्रन्थ 'महाराजा गजसिंघजी रा

उसका सम्बन्ध अपने राज्यभक्त सरदारों के साथ बड़ा अच्छा था। जहां वह वीरों का आदर करने में प्रयत्नशील रहता था, वहां राज्य-विरोधी आचरण करनेवाले लोगों के साथ वह बड़ी बुरी तरह से पेश आता था। उपद्रवी बीदावत सरदारों को उसने जान से मरवाने में ज़रा भी आनाकानी न की। स्वयं अपने ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह के विद्रोही हो जाने पर उसने सन्तान की ममता त्यागकर उसे बन्दीख़ाने में डलवा दिया। इसके साथ ही उसका हृदय आर्द्र भी कम न था। क्षमाप्रार्थी विद्रोही सरदारों को उसने सदैव क्षमा करके ही अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया। मित्र का क्या कर्तव्य होना चाहिये इससे वह सुपरिचित था और इस पवित्र शब्द को कलंकित करने का उसने कभी कोई कार्य नहीं किया। जोधपुर की उसने धन और जन दोनों से सहायता की। अवसर पड़ने पर जयपुर को भी उसने सहायता पहुंचाई, परन्तु जयपुर के स्वामी माधोसिंह की नीयत जब उसने जोधपुर के विजयसिंह की तरफ़ साफ़ न देखी तब वह उसके ख़िलाफ़ हो गया।

शाही दरबार में वह स्वयं कभी न गया, इतना होने पर भी बादशाह की नज़रों में उसका सम्मान ऊंचे दरजे का था। उसका मनसब सात हज़ारी था और उसे बादशाह की तरफ़ से सर्वप्रथम "श्रीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाशिरोमणि" का ख़िताब और 'माही मरातिब' का सम्मान भी मिला था।

प्रजा के कष्टों की ओर से वह कभी उदासीन नहीं रहता था। वि० सं० १८१२ (ई० स० १७५५) में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ने पर उसने क्षुधाग्रस्त लोगों को कार्य देकर सहारा दिया। इस अवसर पर इमारतों आदि के बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया, जिससे बहुतसे लोगों को कार्य मिला। बीकानेर की शहरपनाह भी इसी समय बनी थी।

गीत कवित्त दूहा' नामक भी लिखा था, जो बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है (टेसिटोरी; ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव् दि बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स; सेक्शन २, पार्ट १, पृ० ८३ बीकानेर स्टेट)।

उसने उचित करों के द्वारा राज्य की आमदनी बढ़ाने की चेष्टा की और जहां तक संभव हो सका प्रजा को सुख पहुंचाते हुए राज्य का शासन किया। राजपूताने के अन्य राज्यों में उसका बड़ा सम्मान था और जब कभी कोई झगड़ा होता तो उसको मध्यस्थ बनाकर झगड़ा मिटाने का उद्योग किया जाता था।

मुंशी देवीप्रसाद ने उसके सम्बन्ध में लिखा है—"महाराजा गजसिंह भी कवि थे। भजन खूब बनाते थे और कविता भी करते थे। इनकी कविता का एक गुटका बीकानेर के पुस्तकालय में है[1]।"

महाराजा राजसिंह

महाराजा राजसिंह का जन्म वि० सं० १८०१ कार्तिक वदि २ (ई० स० १७४४ ता० १२ अक्टोबर) को हुआ था और पिता की उत्तर क्रिया आदि समाप्त कर वि० सं० १८४४ वैशाख वदि २ (ई० स० १७८७ ता० ४ अप्रेल) को वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा[2]।

जन्म तथा गद्दीनशीनी

ख्यातों में केवल इतना ही लिखा मिलता है कि महाराजा गजसिंह की दग्ध क्रिया हो जाने के बाद देवीकुंड से ही उसके भाई सुलतानसिंह[3],

(१) राजरसनामृत; पृ० ४०।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४०७-८।

(३) दयालदास ने अपनी ख्यात में सुलतानसिंह को महाराजा गजसिंह का पन्द्रहवां पुत्र लिखा है, परन्तु पाउलेट के गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट में, ताज़ीमी राजवी ठाकुर और ख़वासवालों की पुस्तक में तथा अन्य जगह उसे गजसिंह का दूसरा पुत्र लिखा है। सुलतानसिंह बीकानेर से जोधपुर और वहां से उदयपुर गया था, जहां महाराणा भीमसिंह ने उसे जागीर देकर अपने यहां रक्खा। मेवाड़ में रहते समय उसने अपनी पुत्री पद्मकुंवरी का उक्त महाराणा से विवाह किया था, जिसने पीछोला तालाब के तट पर भीमपद्मेश्वर नामक शिवालय बनवाया। उक्त शिवालय की प्रशस्ति में उसके पितृपक्ष की महाराजा रायसिंह से लगाकर गजसिंह तक की वंशावली दी

महाराजा के भाई सुलतानसिंह आदि का बीकानेर छोड़कर जाना

मोहकमसिंह[1] और अजबसिंह[2] जोधपुर चले गये। स्वयं बीमार रहने के कारण महाराजा ने राज्य-कार्य मनसुख नाहटा को सौंप दिया था। उस(राजसिंह)के एक भाई सूरतसिंह ने उसकी गिरफ्तारी के समय कोई भाग नहीं लिया था, अतएव वह बीकानेर में ही बराबर राज्य-कार्य में भाग लेता रहा।

इक्कीस दिन राज्य करने के पश्चात् वि० सं० १८४४ वैशाख सुदि ८[3]

है, जिसमें उसको सूरतसिंह का कनिष्ठ भाई लिखा है—

तस्माच्छ्रीगजसिंहभूपतिमहाराजान्वयायोभ्यभू-
त्तस्मात्सूरतसिंहइन्द्रविभवो राठौडवंशैकभूः ।
तद्भ्राता सुरतानसिंह इति यः···कनिष्ठो भवत्
तज्जा पद्मकुमारिकेयमतुला श्रीभीमसिंहप्रिया ॥ २४ ॥

सुलतानसिंह के पुत्र गुमानसिंह और अखैसिंह के बीकानेर जाने पर महाराजा रतनसिंह ने गुमानसिंह को बग़ोसर और अखैसिंह को आलसर की जागीर दी, जिसके वंशज बीकानेर राज्य के दूसरे दर्जे के राजवियों में हैं और राजवी हवेलीवाले कहलाते हैं।

(१) मोहकमसिंह के वंशजों के पास सांईसर का ठिकाना है और राजवी हवेलीवाले कहलाते हैं। उनकी गणना दूसरे दर्जे के राजवियों में है।

(२) जोधपुर में अजबसिंह के लोहावट की जागीर थी। वहां से वह जयपुर गया, जहां उसे जागीर मिली। अजबसिंह का पुत्र फतेसिंह और उसका दुलहसिंह हुआ। देशदर्पण में लिखा है कि वि० सं० १६१७ में बग़ोसर के राजवी पन्नेसिंह के एक पुत्र को दुलहसिंह ने निःसंतान होने से दत्तक लिया था।

(३) ······अथास्मिन् शुभसंवत्सरे १८४४ वर्षे शाके १७०६ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमे मासे वैशाखमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ अष्टम्यां परतो नवम्यां बुधवासरे············महाराजाधिराजमहाराजश्रीराजसिंहजीवर्मा एकेन परिचारकेन सह दिवं प्राप्तः·········

महाराजा राजसिंह के स्मारक लेख से।

महाराजा का देहांत

(ई० स० १७८७ ता० २५ अप्रेल) को महाराजा राजसिंह का देहांत हो गया[1]।

---

(१) महाराजा राजसिंह की मृत्यु के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखा मिलता है—

कर्नल टॉड का कथन है कि उसके भाई सूरतसिंह की माता ने उसे विष दिया था (टॉड, राजस्थान; जि० २, पृ० ११३८)।

डा० जेम्स बर्जेस लिखता है—'उस(राजसिंह)की तेईस दिन पीछे ज़हर से मृत्यु हुई (क्रोनोलोजी ऑव् मॉडर्न इंडिया; पृ० २५६)।

मरहटों (सिंधिया) के जोधपुर के ख़बरनवीस कृष्णाजी ने अपने स्वामी के नाम के ता० ५ जून ई० स० १७८७ (आषाढ वदि ४ वि० सं० १८४४) के पत्र में लिखा है—

......राजसिंह के गद्दी बैठने के अनन्तर उसके छोटे भाइयों में से सुलतानसिंह उसे मरवा देने का उद्योग करने लगा। इस कार्य की पूर्ति के लिए उसने मूलचंद भडिया (वरड़िया) से मिलकर षड्यन्त्र रचा। मूलचंद ने रसोड़े के अफ़सर के नाम इस आशय का एक पत्र लिखा कि यदि वह विष देकर राजसिंह का अंत करने में सफल हुआ तो सुलतानसिंह गद्दी बैठने पर उसे पचीस हज़ार की जागीर देगा। इसका क़ौल-क़रार हो जाने पर वैशाख सुदि ८ को रसोड़े के दारोग़ा ने राजसिंह के भोजन में विष मिला दिया। एक पहर बाद विष का प्रभाव ज्ञात होने पर राजसिंह ने मूलचंद को क़ैद करने की आज्ञा दी। रसोड़े का दारोग़ा भी भागने के प्रयत्न में था, परन्तु वह पकड़ लिया गया। तब उसने मूलचंद के हाथ का पत्र महाराजा के पास पेश कर दिया। इस घटना की जांच हो ही रही थी कि इसी बीच में राजसिंह का देहांत हो गया। उसकी मृत्यु के बाद सुलतानसिंह प्रधान रामसिंह के पास गया, पर उसने यह कहकर उसे विदा कर दिया कि मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहता। तब सुलतानसिंह जोधपुर के स्वामी विजयसिंह के पास गया। राजसिंह को विष देने के अपराध में मूलचंद तो क़ैद कर क़िले में रख दिया गया तथा रसोड़े का दारोग़ा तोप से उड़वा दिया गया।

पार्सनिस; इतिहास संग्रह [मराठी]; जि० ६, पृ० ११३-४।

दयालदास, कर्नल पाउलेट, कविराजा श्यामलदास और मेघसिंह आदि महाराजा राजसिंह का देहावसान क्षय रोग से होना लिखते हैं।

ऐसी स्थिति में उपर्युक्त कथनों में कौनसा कथन ठीक है, इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महाराजा राजसिंह की विष प्रयोग से मृत्यु होना बीकानेर में लोक-प्रसिद्ध बात नहीं है।

अपनी अनन्य भक्ति के कारण उसके साथ उसके विश्वासपात्र-सेवक मंडलावत संग्रामसिंह ने उसकी चिता में प्रवेशकर अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया[1]।

महाराजा प्रतापसिंह

दयालदास की ख्यात में लिखा है कि राजसिंह के एक पुत्र प्रतापसिंह था, परन्तु वह छः वर्ष की अवस्था में शीतला निकलने से मर गया[2] (गद्दी पर नहीं बैठा)। इसके विपरीत अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से पाया जाता है कि वह राजसिंह की मृत्यु होने पर बीकानेर का स्वामी हुआ था। टॉड लिखता है—

टॉड और प्रतापसिंह

"राजसिंह के दो पुत्र प्रतापसिंह तथा जयसिंह[3] थे। उसकी मृत्यु होने पर सूरतसिंह की संरक्षकता में प्रतापसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठाया गया। राज्यकार्य संभालने के साथ-साथ जब सूरतसिंह का प्रभाव बीकानेर के सरदारों पर जम गया तो उसने राज्य दबा बैठने का अपना विचार उनके सामने प्रकट किया और उनमें से अधिकांश को जागीरें आदि देकर अपने पक्ष में कर लिया। कुछ सरदार उसके विपक्ष में भी रहे, परन्तु जब उसने नौहर, अजीतपुर, सांखू आदि पर आक्रमण किया उस समय वे सब के सब अपने-अपने स्थानों में शांत बैठे रहे। अनन्तर उसने बीकानेर के स्वामी प्रतापसिंह का भी अंत करने का निश्चय किया, परन्तु इस कार्य में उसकी बड़ी बहिन बाधक हुई। उसके रहते कृतकार्य होने की

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६५। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७३। महाराजा राजसिंह के स्मारक लेख (देखो ऊपर पृ० ३६२, टिप्पण संख्या ३) में भी एक सेवक के उसके साथ जल मरने का उल्लेख है। संग्रामसिंह के वंशजों के अधिकार में बीकानेर राज्य के अन्तर्गत सीलवे का ठिकाना है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६५।

(३) जयसिंह का क्या परिणाम हुआ यह पता नहीं चलता। यदि वास्तव में इस नाम का कोई पुत्र था तो यही कहना पड़ेगा कि सूरतसिंह की प्रबलता के कारण उसने कोई बाधा उपस्थित नहीं की।

संभावना न देख उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह नरवर के कछवाहे के साथ कर दिया। उसके विदा होने के बाद ही प्रतापसिंह महलों में मरा हुआ पाया गया। कहा जाता है कि सूरतसिंह ने अपने हाथों से उसका गला घोटा था[1]।"

टॉड ने प्रतापसिंह का एक वर्ष तक गद्दी पर रहना लिखा है, परन्तु यह समय अधिक जान पड़ता है। उसने गजसिंह की मृत्यु वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) के स्थान में वि० सं० १८४३ (ई० स० १७८६) में होना लिखा है। संभव है इसीसे यह ग़लती हुई हो, पर टॉड का कथन निर्मूल नहीं है, क्योंकि सूरतसिंह के समय में वह राजपूताने में विद्यमान था। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी उसके कथन की पुष्टि होती है[2]।

---

(१) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३८-४०।

(२) पाउलेट लिखता है कि ख्यात ने तो प्रतापसिंह के सम्बन्ध में मौन धारण किया है, परन्तु वह अपने पिता के पीछे जीवित था और सूरतसिंह के हाथों मारा गया (पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ७३)।

जोधपुर की ख्यात में लिखा है कि सूरतसिंह के गद्दी बैठने के कुछ दिनों बाद विजयसिंह ने उससे कहलाया कि तुम राजसिंह के पुत्र (प्रतापसिंह) को गद्दी से हटाकर बीकानेर के स्वामी बने हो, अतएव कुछ रुपये भरो नहीं तो सुख से राज्य करने न पाओगे। तब सूरतसिंह ने कहलाया कि मेरे लिए टीका भेजो (अर्थात् मुझे राजा स्वीकार करो) तो मैं तीन लाख रुपये दूं। अनन्तर जोधपुर से टीका आने पर सूरतसिंह ने रुपये भेज दिये (जि० २, पृ० २५६)। किन्तु दयालदास की ख्यात तथा अन्य किसी पुस्तक में बीकानेर से रुपये देने का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि प्रतापसिंह अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा था।

ठाकुर बहादुरसिंह लिखित 'बीदावतों की ख्यात' से भी पाया जाता है कि राजसिंह के बाद प्रतापसिंह बीकानेर के सिंहासन पर बैठा (पृ० २३९)।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त कृष्णाजी के उपर्युक्त मराठी पत्र (देखो ऊपर पृ० ३६३ का टिप्पण) में भी लिखा है कि राजसिंह का क्रिया-कर्म हो जाने पर प्रतिष्ठित सरदारों ने सूरतसिंह को राजा बनाना चाहा, परन्तु उसके यह कहने पर कि जिस राज्य के लिए मेरे बड़े भाई की ऐसी दशा हुई वह मुझे नहीं चाहिये, उन्होंने राजसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बिठा दिया और शासक की बाल्यावस्था होने के कारण सब राज्य-कार्य सूरतसिंह करने लगा।

अतएव यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि प्रतापसिंह राजसिंह के पश्चात् बीकानेर का स्वामी हुआ था और कम से कम पांच महीने उसका राज्य रहा।

कृष्णाजी का पत्र इस घटना के केवल डेढ़ मास बाद का लिखा हुआ होने से इसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। कृष्णाजी जोधपुर से अपने स्वामी के पास समय समय पर वहां का हाल लिखा करता था, उसी सिलसिले में उसने यह घटना भी अपने स्वामी को लिखी थी। संभव है कि पहले तो सूरतसिंह ने कुछ दिनों तक ठीक तौर से राज्य-कार्य चलाया हो, पर ऐसा जान पड़ता है कि बाद में उसकी नीयत बदल गई, जिससे प्रतापसिंह को मारकर वह स्वयं राज्य का अधिकारी बन बैठा, जैसा कि टॉड ने भी लिखा है।

उपर्युक्त प्रमाणों के बलपर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि प्रतापसिंह अपने पिता के बाद बीकानेर का स्वामी हुआ था, किन्तु दयालदास ने यह सारी की सारी घटना छिपा डाली है। सूरतसिंह के पुत्र का आश्रित होने के कारण उस(दयालदास)का ऐसा करना स्वाभाविक ही है। ऐसा ही राज्य के आश्रित व्यक्तियों के लिखे हुए इतिहास-ग्रन्थों में अब तक पाया जाता है। दयालदास राजसिंह की मृत्यु वि० संवत् १८४४ वैशाख सुदि ८ (ई० स० १७८७ ता० २५ अप्रेल) एवं सूरतसिंह की गद्दीनशीनी उसी संवत् के आश्विन मास में होना लिखता है। इन दोनों घटनाओं में लगभग पांच मास का अन्तर है। यदि दयालदास का कथन ठीक माना जाय तो यही कहना पड़ेगा कि इस अवधि में बीकानेर का सिंहासन शासक-विहीन पड़ा रहा, पर ऐसा होना संभव नहीं। इसलिए यह मानना पड़ता है कि इस बीच बीकानेर पर प्रतापसिंह का शासन रहा, जैसा कि टॉड और पाउलेट ने लिखा है। प्रतापसिंह के मृत्यु स्मारक के लेख में उसके मरने का संवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि नहीं है और न उसे महाराजा ही लिखा है। उसमें केवल इतना ही लिखा है—

...............प्रतापसिंघजी देवलोकं प्राप्तः। तस्येयं पादुका छत्रिका स्थापिता। सा चिरं तिष्ठतु॥

यह स्मारक सूरतसिंह के समय में ही लगाया गया होने से इसमें संवत्, मास, पक्ष आदि नहीं दिये हैं।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१४	कि	की
८	२७	ई० स० १८७६	ई० स० १९१३
९	१	वि० सं० १९३५	वि० सं० १९६९
१४	२५	के	की
२१	टि० १, पं० ३	ददेरा	दरेरा
२२	१०	यह	वृथा है
३८	२७	गद्दी	गद्दी
४२	२५	अन्य	नगर के भीतर
४४	८	तीन सौ	सात सौ
४५	३	रतनविवास	रतननिवास
६२	२२	की	के
६७	१०	गंगानहर	गंगनहर
७२	२	को	के लिए
,,	,,	लिये	लिखे
,,	५	उपाधी	उपाधि
११३	४	उदयकरण	उदयकरण का पुत्र
१२५	४	बैरसल	बैरसी
१२७	५	,,	,,
१३७	१४	उदयकरण	उदयकरण के पुत्र
१६६	टि० १, पं० ५	लिया और	कर
१६७	टि० १, पं० २	कामरां	हुमायूं
१७९	टि० १, पं० १५	पृ०	पत्र
१९०	१३	३८	६७

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	१०	आश्रय	समय
२११	१०	वंशज	पुत्र
२१२	१	का	को
,,	१७	डांडसर	डाडूसर
२३२	२	मुंगलों	मुग़लों
२५४	५	स्वामी	शासक
२६६	२२	भेजा	भेजा गया
२७५	६	दाराशिकोह	शुजा
२६५	१२	अधिकांश	कतिपय
३००	टि० ३, पं० ३	महाराणा	महाराजा
३०४	७	सरदार आदि	व्यक्ति
३११	टि० २, पं० २	पृ०	पत्र
३१६	टि० १, पं० २	१५२	१५१
३२२	२०	बीकानेर	वहीं
३३५	टि० १, पं० ३	६१	६०
३४३	६	करते थे	करता था
३४८	१	रावल	राव
,,	११	नियुक्ति की	नियुक्ति हुई
३५८	१	कद	क़ैद
३६५	टि० २, पं० ६	स्वामी	स्वामी